वेद प्रकाश

भगवान् कृष्ण

(विशेषांक)

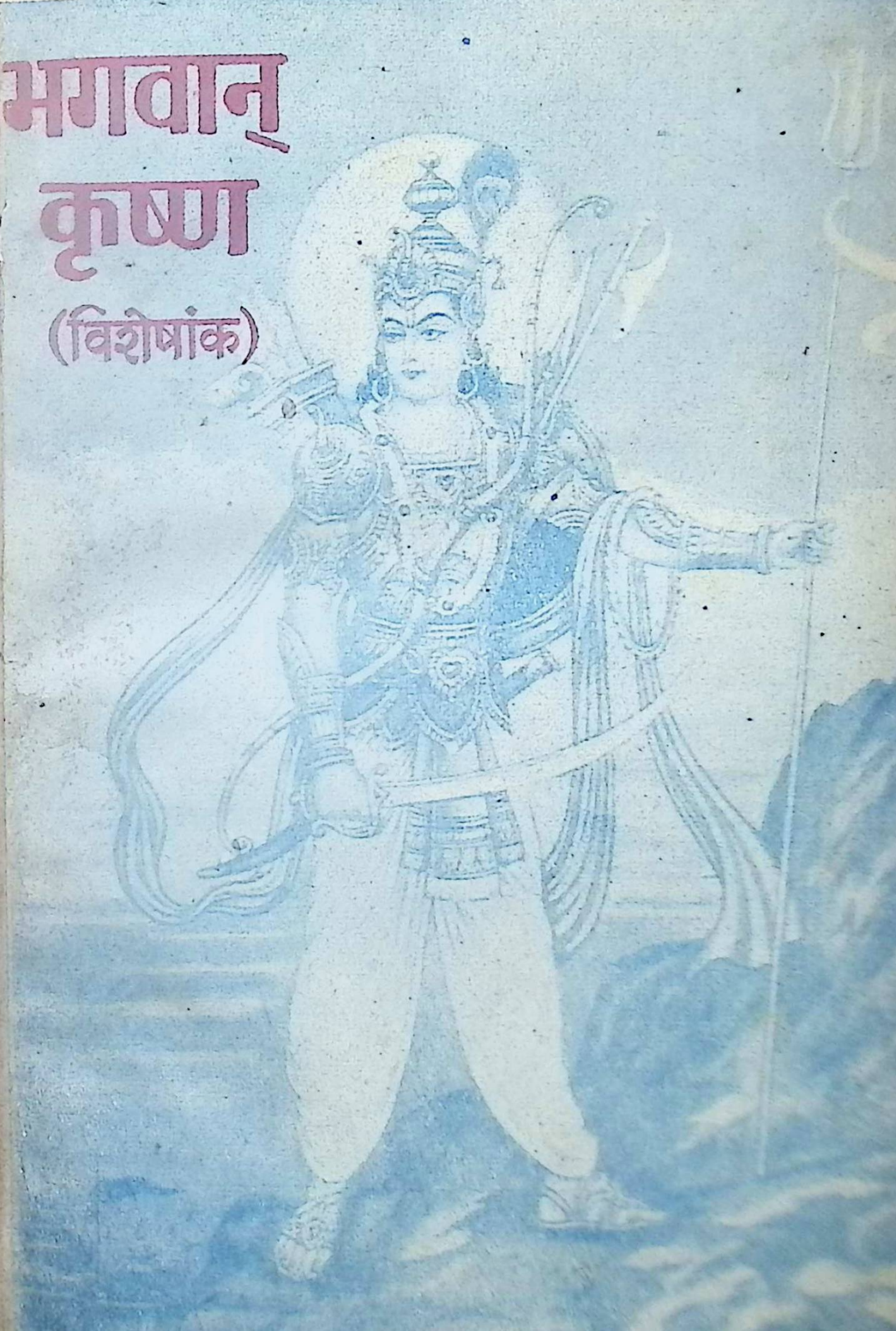

वेद प्रकाश (मासिक)

आर्य समाज के गौरव

वैदिक विद्वान

श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए०

की एक मात्र पुस्तक

गुरुदत्त लेखावली

अपने पाठकों को भेंट

कर रहा है।

मूल पुस्तक अंग्रेजी से

श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर

श्री पं० सन्तराम जी बी० ए०

अनुवाद किया है

यदि आप अभी तक वेद प्रकाश के ग्राहक नहीं बने हैं तो आज ही ३) भेज कर १५० पृष्ठ से अधिक का यह विशेषांक सुरक्षित करा लें। यह बहुत ही सीमित संख्या में प्रकाशित किया जा रहा है।

वेदप्रकाश के बारह अंकों के ५०० पृष्ठों में स्थाई मूल्य की संग्रहणीय सामग्री रहती है।

५ ग्राहक बनाकर १५) भेजने वालों को १ वर्ष तक वेद प्रकाश विशेषांक सहित बिना मूल्य दिया जावेगा।

वेद प्रकाश के प्रेमी पाठकों

पिछले अंकों में सूचना दी गई थी कि वेदप्रकाश का अगस्त का अंक "गुरुदत्त लेखावलि" के रूप में प्रकाशित होगा। परन्तु कुछ कारणों से हम उसे इस अवसर पर न प्रकाशित कर सके। प्रथम कारण तो सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल थी जिसके कारण प्रेमी पाठकों ने इसका वार्षिक मूल्य अभी तक नहीं भेजा। कृपया जिन ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक मूल्य न भेजा हो वह इस अंक के मिलते ही भिजवाने का कष्ट करें। दूसरा कारण प्रेस है। गुरुदत्त लेखावली का प्रकाशन कार्य चल रहा है, और निश्चित ही हम उसे सितम्बर के प्रथम सप्ताह में भेज देंगे।

अगस्त का कृष्ण जीवन अंक आपके हाथों में है। यह अंक जन्माष्टमी पर्व को देखते हुए कृष्ण जीवन के रूप में प्रस्तुत है। इस जीवनी में आप मौलिकता पायेंगे। इसके लेखक श्री जगदीश जी विद्यार्थी वर्षों से देहली की सभाओं में प्रचार करते रहे हैं अब वे देहली से बाहर भी जाया करते हैं जो सज्जन उन्हें प्रचारार्थ बुलाना चाहें वे वेदप्रकाश कार्यालय के पते से पत्र व्यवहार कर सकते हैं। —व्यवस्थापक

श्री पं० इन्द्रसेन विश्वप्रेमी ने वेदप्रकाश के २० ग्राहक बनाये हैं हम उनका धन्यवाद करते हैं।

व्यवस्थापक वेद प्रकाश कार्यालय ४४०८ नई सड़क देहली-६

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापक : गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष—९ : श्रावण २०१७ वि० अगस्त १९६० : वार्षिक ३)
अंक— : १ दयानन्दाब्द १३६ श्रावण १८८२ शाके : विदेशों से ६ शिलिंग

प्रस्तावना

(विद्याभूषण पं० शिवकुमार जी शास्त्री)

प्रिय जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी एक उदीयमान मनस्वी युवक हैं। ये निरन्तर स्वाध्याय, प्रचार और लेखन में लगे रहते हैं। मित्र विद्यार्थी ने योगीराज कृष्ण का एक संक्षिप्त जीवन चरित्र लिखा है यद्यपि इससे पूर्व श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र बहुत बड़ी संख्या में निकल चुके हैं। वैसे तो महापुरुषों की गुणगरिमा का जितना लेखन, अध्ययन, भाषण और श्रवण होता रहे उतना ही जन-साधारण के कल्याण का हेतु है, फिर भी श्री विद्यार्थीजी की इस पुस्तिका का एक विशेष महत्त्व है, वह यह कि श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अनेक किंवदन्तियों को उन्होंने यथामति बुद्धि-गम्य बनाने का प्रयत्न किया है। यह बात और है कि उनकी कई स्थापनाओं से कोई पाठक सहमत न हो पायें।

हमारे महापुरुषों में योगीराज कृष्ण का एक अद्वितीय और अनुपमेय स्थान है। इस शताब्दी के खरे आलोचक महर्षि दयानन्द से प्रशंसा-परक प्रमाण-पत्र पाना बहुत कठिन बात थी, किन्तु ऋषि ने जो विचार श्रीकृष्ण के लिए अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखे बस वही एक सब से बड़ी कसौटी है जिससे इस कुन्दन के अनूठेपन का पता लगता है।* मैं श्री विद्यार्थीजी को श्रीकृष्ण के जीवन के प्रत्येक भाग को अति संक्षेप किन्तु मौलिकता को लेकर वर्णन करने पर हार्दिक बधाई देता हूँ और मैं चाहता हूँ कि अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों ही मार्गों के पथिक इस छोटे से श्रोत के निर्मल जल से अपनी ज्ञान-पिपासा को शान्त करके कल्याण के भागी बनें।

---

* महर्षि दयानन्द की सम्मति अन्दर देखिए।

भगवान् कृष्ण

द्वापर युग के अन्त में भारत के भाग्याकाश पर अविद्या अन्धकार की घनघोर घटाएँ छाई हुई थीं। सामाजिक संगठन शिथिल हो चुका था। भारत अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। देश में सर्वत्र असंतोष फैला हुआ था। अत्याचारी राजा साम्राज्यवादी और प्रजा शोषक थे। कंस ने अपने पिता उग्रसेन को कारागार में डाल रक्खा था। जरासन्ध और शिशुपाल जैसे अन्यायी राजाओं ने प्रजा को संत्रस्त किया हुआ था। विश्व अशान्त था। ऐसे भीषण समय में एक ऐसे शक्ति-सम्पन्न और नीतिज्ञ महापुरुष की आवश्यकता थी जो इस दुर्दशा में सब का सहायक होकर विश्व को व्यवस्थित कर सके। ऐसे समय में असुरों के उत्पीड़न से भयभीत प्रजा की रक्षा के लिये, दानवता के पञ्जे में फंस कर कराहती हुई मानवता के उद्धार के लिये भाद्रकृष्णाष्टमी बुधवार की घोर निशा में रात्रि के अन्धकार को चीरते हुए, अपने आलोक से दिशाओं को आलोकित करते हुए आनन्दकन्द भगवान् कृष्णचन्द्र भारतीय रंगमञ्च पर अवतरित हुए।

वंश एवं जन्म

श्रीकृष्ण यदुवंशी थे। श्रीकृष्ण के पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम देवकी था। यादवों की राजधानी मथुरा थी। आज से लगभग ५०३२ वर्ष पूर्व हमारे चरित्र नायक ने इस देवोपम परिवार को अपने जन्म से सुशोभित किया। पुराणों में इनके जन्म सम्बन्ध में जो असम्भव घटनाएँ लिखी हुई हैं, महाभारत में उनका लवलेश भी नहीं है।

बाल्यकाल

श्रीकृष्णजी का जन्म मथुरा में हुआ। यादव कंस के अत्याचारों से दुःखी थे। उन्हें अपने धन-जन के अपहरण का सदा ही भय लगा रहता था अतः बड़े भाई बलराम की भांति इन्हें भी नन्द गोप के यहां भेज दिया गया। श्रीकृष्ण गोकुल के ग्राम्य वातावरण में पलने लगे और शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भांति बढ़ने लगे।

यज्ञोपवीत संस्कार

वैदिक धर्म में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। वस्तुतः संस्कारों से ही मानव सच्चा मानव बनता है। वसुदेव जी बड़े विद्वान् थे और वैदिक संस्कारों की

महत्ता से पूर्ण परिचित थे। जब श्रीकृष्ण बड़े हुए तो उन्होंने बड़ी धूम धाम से श्रीकृष्ण के यज्ञोपवीत की तैयारी की। महामति वसुदेव ने अपने पुरोहित गर्गाचार्य द्वारा वेदोक्त विधि से बलराम और श्रीकृष्ण दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार कराया। श्री कृष्ण और बलराम द्विजत्व को प्राप्त हुए।

गुरुकुल में

अब श्रीकृष्ण और बलराम को विद्याध्ययन के लिये गुरुकुल में भेजा गया और वह भी गोकुल ही के पास। यहां उन्होंने विधिपूर्वक शास्त्रों का अध्ययन और मनन किया। उनकी पाठ विधि में अङ्गों सहित चारों वेद, धनुर्वेद, स्मृति, मीमांसा और न्याय-शास्त्र आदि का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैत और आश्रय इन छः भेदों से युक्त राजनीति का भी अध्ययन किया। इनके गुरु कौन थे इस विषय में मतभेद है। महाभारत इस विषय में मौन है। पुराणों में आचार्य सान्दीपनि को इनका गुरु बताया गया है परन्तु उनके पास ये केवल ६४ दिन ही रहे और धनुर्वेद ही सीखा। छान्दोग्योपनिषद् में एक कृष्ण देवकी-पुत्र का वर्णन है। उन्होंने घोर आङ्गिरस से शिक्षा प्राप्त की थी। अस्तु !

श्रीकृष्णजी गुरुकुल में पढ़ते थे परन्तु समीप स्थित ग्राम्य-जीवन में भी भाग लेते रहते थे। उन्होंने अनेक बार गोकुल वासियों को भीषण आपत्तियों से बचाया।

एक बार एक सांड पागल हो गया। वह गांव वालों के लिये मूर्त्त यमराज बन गया। उसके सींग अत्यन्त तीक्ष्ण थे, आंखें लाल-लाल और अपने खुरों से पृथिवी को विदीर्ण किये डालता था। उस अति भयानक वृषभ को देख कर ग्वाले 'कृष्ण कृष्ण' पुकारने लगे। जब श्रीकृष्ण को पता लगा तो वे वहां पहुँचे और उसकी ग्रीवा को अपनी बलशाली भुजाओं में पकड़ कर गीले वस्त्र की भांति मरोड़ दिया, फिर उसका एक सींग उखाड़ कर उसपर आघात किया जिस से वह रक्त वमन करता हुआ मर गया। इस बैल का नाम अरिष्टि था।

इसी प्रकार केशी नामक एक लम्बे-लम्बे बालों वाला घोड़ा यमुना के जंगल में फिरा करता था। वह था तो अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट परन्तु नितान्त वन्य। किसी को अपने निकट नहीं आने देता था। आते जाते व्यक्तियों पर आक्रमण करता था। खुरों से पृथिवी को फाड़े डालता था। गोपों की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण उसे मारने गये तो वह उन पर झपटा। उन्होंने भी उसे निहत्थे ही मार डाला। इसी से उनका नाम केशिसूदन हुआ।

इसी प्रकार अनेक बार गोपों और गोपियों को हिंस्र जन्तुओं से बचा कर श्रीकृष्ण सारे ग्राम के प्यारे और दुलारे हो गये।

गोवर्धन लीला

व्रज में प्रति वर्ष इन्द्र का पूजन होता था। इन्द्र प्रसन्न होकर वर्षा किया करते थे। व्रजवासियों ने धूमधाम से इन्द्रपूजा की तैयारी की। श्रीकृष्ण ने लोगों को समझाया कि गोप जीवन का आधार गोवंश और गोवर्धन पर्वत है अतः इन्द्र की पूजा बन्द होकर उसके स्थान पर गोसंवर्धन यज्ञ होना चाहिये जिससे गौओं की समृद्धि हो। ऐसा ही हुआ। इन्द्र अपना यह अपमान देख अति कुपित हुए और उस ने मेघों को व्रज पर मूसलाधार वर्षा करने की आज्ञा दी। अति वृष्टि से दुःखी होकर गोप और गोपियां अपने पशुओं को लेकर श्रीकृष्ण की शरण में आये। कृष्णजी ने गोवर्धन पर्वत उठा कर सबको शरण दी और व्रज की रक्षा की।

यदि श्रीकृष्ण ईश्वर या ईश्वर के अवतार थे और उन्होंने गोवर्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर उठा लिया तो इसमें उनका कोई महत्व नहीं क्योंकि ईश्वर ने तो अनन्त ब्रह्माण्डों को उठाया हुआ है। अतः लोग उन के इस कार्य से कोई प्रेरणा और शिक्षा नहीं ले सकते। हां कृष्ण को एक महामानव, एक योगेश्वर मान कर और इस घटना के वास्तविक रहस्य को जान कर उनका यह कार्य मानव मात्र के लिये अनुकरणीय हो सकता है।

योगीराज कृष्ण ने इस घटना से राष्ट्रियता का आदेश दिया है। उस समय भारतवर्ष में कंस के अत्याचार चरम सीमा पर थे। सभी व्रजवासी कंस से डरते थे और वे कंस की पूजा कर उसे प्रसन्न किया करते थे। इन्द्र शब्द के अनेक अर्थ हैं। ऐश्वर्यवान् होने से राजा को भी इन्द्र कहते हैं। श्रीकृष्ण ने ऐसे अन्यायी और दुराचारी राजा की पूजा से लोगों को रोका और भेंट रूप में कर देने से मना किया। उन्होंने परामर्श दिया कि जिस यज्ञ द्वारा देश के धन-धान्य और गोधन की समृद्धि तथा रक्षा होती है उस यज्ञ का अनुष्ठान कर देश को उन्नत करना चाहिये।

भगवान् कृष्णचन्द्र स्वयं अपने देश के नेता बने। व्रजवासियों पर कंस का कोप स्वाभाविक था। कोई भी राजा विद्रोही प्रजा और उसके नेता को नहीं देख सकता। प्रत्येक राजा अपनी साम्राज्यवादी कामना से प्रजा का हर प्रकार दमन करता है। कंस ने भी प्रजा द्वारा पूजन न होते देख अपने सैनिकों को व्रज पर अत्याचार और दमन की मूसलाधार वर्षा करने का आदेश दिया। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। भयभीत आबाल वृद्ध, नर-नारी, युवक और युवतियां गोप और गोपिकाएँ इधर उधर भागने लगे। कृष्ण जी ने सबको धैर्य और आश्वासन दिया। वे तुरन्त रक्षा कार्य में कूद पड़े। उन्होंने अपनी नीतिमत्ता,

कार्य-कुशलता, धैर्य और सेवा भावना से इस घोर विपत्ति काल में लोगों की रक्षा की। उन्होंने गोवर्धन पर्वत की गुफाओं और कन्दराओं में लोगों के रहने की व्यवस्था कर कंस के सैनिकों से लोहा लिया। बस यही था उनका गोवर्धन धारण। इसी को लक्ष्य कर कविवर अयोध्यासिंह जी ने कितना सुन्दर कहा—

लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में,
व्रजधराधिप के प्रिय पुत्र का।
सकल लोग लगे कहने उसे,
रख लिया अंगुली पर श्याम ने॥

(प्रिय प्रवास)

इस रूप में यह कथा एक सुन्दर सन्देश देती है कि कोई भी देश अपने एक नेता की आज्ञा में चल कर इसी प्रकार निर्भय हो सकता है।

कंस वध

श्रीकृष्ण स्नातक हो गये। कृष्णजी के पराक्रम और कीर्ति के समाचार जब मथुरा में कंस को मिले तो वह व्याकुल हो गया। पापी का हृदय कांप उठा। खुल्लम खुल्ला भगवान् कृष्ण पर हाथ डालना बड़ा दुष्कर कार्य था। प्रजा के बिगड़ खड़े होने का भय था। निरुपाय हो छलपूर्वक मरवा डालने का संकल्प किया। कंस ने एक धनुष यज्ञ का आयोजन किया और अक्रूर को श्रीकृष्ण तथा बलराम को बुलाने के लिये भेजा। श्रीकृष्ण बलराम और बहुत से गोपों के साथ मथुरा पहुंचे। कंस ने दिखावे के लिये कृष्ण के मथुरा आगमन के अवसर पर आनन्दोत्सव मनाया।

श्रीकृष्ण धनुष यज्ञशाला में पहुँचे। उन्होंने धनुष को तोड़ दिया। इस के पश्चात् जब आप दंगल में प्रविष्ट हुए तो आप के ऊपर एक मदमस्त हाथी छोड़ा गया। श्रीकृष्ण उसे मार कर आगे बढ़े। जरासन्ध की भांति कंस ने भी अपनी रक्षा के लिये कुछ पहलवान पाल रक्खे थे। चाणूर और मुष्टिक इन दो सुप्रसिद्ध भीमकाय और मल्लविद्या-विशारद पहलवानों को कंस ने पहले ही सिखा रक्खा था कि कृष्ण और बलराम का काम तमाम कर दें। कृष्ण और बलराम अखाड़े में उतरे। कृष्ण ने चाणूर को और बलराम ने मुष्टिक को एक दो दावों में ही पछाड़ कर उनकी मिट्टी ठिकाने लगा दी। परिणाम कंस की आशा के ठीक विपरीत था। अब क्या था? कंस का पारा पूरा १०४ डिग्री हो गया। कड़क कर आज्ञा दी—"कृष्ण को तुरन्त देश निर्वासित कर दो। वसुदेव को कुत्ते की मौत मार डालो और नन्द को पकड़ कर कारागार में डाल दो।" कंस के मुख से इन शब्दों के निकलते ही कृष्ण कूद कर कंस

के सिंहासन तक जा पहुँचे और उसके केश पकड़ कर उसे भूमि पर दे पटका। कंस के प्राण पखेरु उड़ गये। विजयमाला श्रीकृष्ण के गले में पड़ी। कंस की मृत्यु का वदला लेने के लिये कंस का भाई सुनामा कृष्ण पर झपटा परन्तु वलराम ने उसे भी यमलोक पठा दिया।

मथुरावासियों ने एकमत हो राज्यसिंहासन और मुकुट सम्भालने के लिये कृष्ण से कहा परन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने बूढ़े और अत्याचार-पीड़ित नाना उग्रसेन को कारागार से छुड़ा कर राज्य सिंहासन पर वैठाया।

भगवान् कृष्ण की, स्नातक होने के पश्चात्, यह प्रथम विजय थी जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली। उन्होंने नष्ट हुए संघ की पुनः स्थापना की और यादवों की खोई हुई स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करा दी।

जरासन्ध और कालयवन

मगध (विहार) का प्रतापी सम्राट् जरासन्ध कंस का श्वसुर था। कृष्ण द्वारा कंस के वध पर उसकी दोनों पत्नियां अस्ति और प्राप्ति रोती-विलखती अपने पिता के पास पहुँचीं। अपनी विधवा पुत्रियों की यह शोचनीय अवस्था देख कर जरासन्ध ने एक विशाल सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण किया। उधर जरासन्ध की असंख्य सेना और इधर इने-गिने यादव। परन्तु भगवान् कृष्ण के नेतृत्व में यादव सेना ने उसे मार भगाया। जरासन्ध ने मथुरा पर एक दो नहीं सत्रह आक्रमण किये परन्तु हर वार उसे मुंह की खानी पड़ी।

जव जरासन्ध ने अठारहवीं वार आक्रमण किया तो कृष्ण के समक्ष एक नई विपत्ति आई। कालयवन नामक एक म्लेच्छ राजा ने अपनी सेना से मथुरा को घेर लिया। कृष्णजी उद्भट राजनीतिज्ञ थे। इस आपत्ति का सामुख्य करने के लिये उन्होंने एक नया उपाय खोज डाला। कृष्णजी युद्ध की वेशभूषा और अस्त्र-शस्त्रों से सुसजित होकर अकेले ही नगर से वाहर निकल पड़े। जव कालयवन ने देखा कि उनका शत्रु कृष्ण अकेला ही युद्धभूमि में आरहा है तो वह उनकी ओर झपटा। कृष्ण भी भाग निकले और एक गुफा में प्रविष्ट हो गये। उस गुफा में मुचकुन्द नामक एक महापराक्रमी वीर पुरुष विश्राम कर रहा था। कृष्ण ने अपना पीताम्वर उस के ऊपर डाल दिया और एक ओर छिप गये। कालयवन ने उसे कृष्ण समझ कर एक लात लगाई। मुचकुन्द जाग गया और उसने कालयवन को यमलोक पठा दिया।

इस प्रकार कालयवन का वध होने पर भगवान् कृष्ण पुनः मथुरा आये। इस समय जरासन्ध का अठारहवां आक्रमण हुआ। इस बार शत्रु सेना बहुत अधिक और अजेय थी। दूरदर्शी श्रीकृष्ण ने सोचा कि इस टिड्डी दल सेना के साथ युद्ध करना स्वयं ही अपना नाश करना है अतः उन्होंने समुद्र के तट पर द्वारिकापुरी बसाई और एक सुदृढ़ गढ़ बना सब को वहां ले गये। द्वारिका का दुर्ग यादवों के लिये हर प्रकार अनुकूल था। सुरक्षा की दृष्टि से तो—

स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येयुः किमु वृष्णि महारथाः।

(सभा पर्व १४।५१)

वह दुर्ग इतना दृढ़ था कि पुरुषों की तो बात ही क्या स्त्रियां भी शत्रुओं का सामना कर सकती थीं।

कालयवन और जरासन्ध जैसे धूर्तों और शठों को इस प्रकार परास्त करना श्रीकृष्ण की कूटनीति के ज्वलन्त उदाहरण हैं। इस प्रकरण से यह भी पता चलता है कि भगवान् कृष्ण व्यर्थ की हत्या और रक्तपात के कितने विरोधी थे।

रुक्मिणी विवाह

विदर्भ देश के राजा भीष्मक बड़े ही कुलीन और बलशाली थे। उनकी पुत्री थी रुक्मिणी। वह कृष्ण के गुणों पर मुग्ध थी और तन मन से उन्हें प्रेम करती थी। श्रीकृष्ण भी उसके गुणों पर मुग्ध थे। राजा भीष्मक अपनी पुत्री का विवाह कृष्ण के साथ करना चाहते थे परन्तु उनका पुत्र रुक्मी चेदिराज शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहता था। अन्त में रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ होना निश्चित हुआ।

अब तो रुक्मिणी बहुत सिटपिटाई। वह तो अपने आप को कृष्ण के चरणों में समर्पित कर चुकी थी। अतः उसने एक वृद्ध ब्राह्मण के द्वारा अपना प्रणय निवेदन श्रीकृष्ण की सेवा में द्वारिका भेजा। कृष्ण ने रुक्मिणी की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। विवाह से एक दिन पूर्व ये विदर्भ देश की राजधानी कुण्डनपुर जा पहुँचे और नियत समय पर जब रुक्मिणी भ्रमणार्थ बाहर निकली तो कृष्ण उसका संकेत पाकर उसे रथ पर आरूढ़ कर द्वारिका को प्रस्थानित हुए। शिशुपाल ने कृष्ण पर आक्रमण किया परन्तु बलराम ने उन्हें मार भगाया। रुक्मी को पता लगा तो उसने भी कृष्ण का पीछा किया। वह कृष्ण के हाथों परास्त हुआ और कृष्ण उसे मारना ही चाहते थे परन्तु रुक्मिणी के कहने पर उसे छोड़ दिया। द्वारिका पहुँचने पर वैदिक विधि अनुसार श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के साथ पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ।

विवाह हो गया। पति-पत्नी आनन्दपूर्वक रहने लगे। एक दिन रुक्मिणी ने सन्तान की इच्छा प्रकट की तो कृष्ण और रुक्मिणी ने उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिए कठोर ब्रह्मचर्य का पालन किया। महाभारत का युद्ध आरम्भ होने से पूर्व अश्वत्थामा योगेश्वर कृष्ण के पास गये और श्रीकृष्ण से उनका सुदर्शन चक्र मांगा तो उन्होंने कहा —

ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम् ।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः ।।
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत ।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ।।

(सौप्तिकपर्व १२। ३०-३१)

मैंने १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके हिमालय की कन्दराओं और गिरि-गुहाओं में रह कर बड़ी तपस्या के द्वारा जिसे प्राप्त किया था, मेरे समान व्रत का पालन करने वाली रुक्मिणी देवी के गर्भ से जिसका जन्म हुआ है, जिसके रूप में साक्षात् तेजस्वी सनत्कुमार ने ही मेरे यहां जन्म लिया है वह प्रद्युम्न मेरा प्रिय पुत्र है। मेरा यह दिव्य चक्र तो कभी उसने भी नहीं मांगा।

बारह वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् प्रद्युम्न उत्पन्न हुआ जो रंग-रूप, शील, सदाचार, विद्यादि में कृष्ण के तुल्य ही था। श्रीकृष्ण को इस सन्तान पर इतना गर्व था कि वे उसे 'मे सुतः' कहा करते थे। श्रीकृष्ण कितने तपस्वी संयमी एवं सदाचारी थे यह इस घटना से स्पष्ट है।

क्या ऐसा तपस्वी और सदाचारी व्यक्ति गोपियों के पीछे भाग सकता है? कभी नहीं, सर्वथा असम्भव। श्रीकृष्ण वेदों के प्रकाण्ड पण्डित थे और वेद में लिखा है—

उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः।

(ऋ० १०।१०१।११)

दो धुरों का भार उठाने वाला घोड़ा जैसे हिनहिनाता हुआ भागता फिरता है दो स्त्रियों वाले मनुष्य की भी ऐसी ही दुर्दशा होती है।

भगवान् कृष्ण एक आदर्श महामानव और नेता थे। वे जानते थे कि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।

(गीता० ३।२१)

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं लोग भी वैसा ही व्यवहार करते हैं। अतः वे ऐसा जघन्य पाप और अन्याय आचरण कैसे कर सकते थे।

पुराण लेखकों ने श्रीकृष्ण के ऊपर बहु विवाह तथा गोपियों के साथ विषय भोग करने का दोष आरोपण किया है। ब्रह्मवैवर्त में तो यहां तक कहा है—

साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टः परमलम्पटः।
आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च ।।

(कृष्ण जन्म खण्ड अ० ११५)

अर्थात् कृष्ण साक्षात् जार, दुष्ट तथा अति लम्पट थे। आगे का अर्थ अति घृणित है, लेखनी उसे लिखने में असमर्थ है। आगे कहा है कि वृषभानु की पुत्री राधा सुदामा के शाप और अपने पति की आज्ञा से ३० करोड़ गोपियों के साथ गोलोक से भारतवर्ष में आई। कृष्ण अपनी उस पत्नी के साथ विलास करते रहे। गोपाल सहस्रनाम में कहा गया है—

गोपाल कामिनी जारश्चौरजार शिखामणि।

(श्लोक १३७)

अर्थात् कृष्ण चोर और व्यभिचारियों में शिरोमणि थे।

विष्णु पुराण में कहा है—

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृभिस्तथा।
कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ।।

(विष्णु पुराण ५। १३। ५९)

अर्थ अत्यन्त अश्लील है।

ब्रह्मवैवर्तादि का यह विषाक्त प्रभाव जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास पर भी पड़ा। जयदेव ने तो अपने ग्रन्थ की प्रस्तावना में ही लिखा है कि यदि विलास कला के द्वारा हरिस्मरण करना हो तो जयदेव की सरस्वती गीत-गोविन्द से यह प्रयोजन सिद्ध होगा। सूरदास जी ने भी ब्रह्मवैवर्त के आधार पर राधा के परकीय रूप की कल्पना की। यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट है—

नीवी ललित गही यदुराई।
जबहि सरोज धरयो श्रीफल पर तब यशुमति तहं आई ॥

सूरदास जी द्वारा चित्रित राधा के प्रथम मिलन का चित्रण देखिये—

बूझत श्याम कौन तू गोरी।
कहां रहति काकी तू बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी ॥
काहे को हम ब्रज तन आवति, खेलत रहति आपनी पौरी।
सुनत रहति स्रवननि नन्द ढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी ॥

तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलो संग मिलि जोरी ।
'सूरदास' प्रभु रसिक शिरोमनि, वातन भुरइ राधिका भोरी ॥

इन कवियों की चञ्चल लेखनी की करामात देखकर आश्चर्य होता है। इनकी कविताएँ पढ़ने में लज्जा आती है और यह विश्वास नहीं होता कि इन्हें गा-गाकर भक्त लोग हरि-प्रेम में विभोर हो जाते होंगे।

पौराणिकों के अनुसार राधा कृष्ण की पत्नी है। आज राधा के विना कृष्ण की कल्पना भी नहीं हो सकती परन्तु स्वयं पुराणों के अनुसार भी राधा कृष्ण की विवाहिता भार्या नहीं है। राधा तो कृष्ण की मामी थी। पाठक पूछेंगे कैसे ? लीजिये प्रमाण प्रस्तुत है—

वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या वभूव ह ।
सार्द्धं रायाण वैश्येन तत्सम्वन्धं चकार सः ॥
कृष्णमाता यशोदाया रायाणस्तत्सहोदरः ।
गोलोके गोप कृष्णांशः सम्बन्धात्कृष्ण मातुलः ॥

(ब्रह्म० प्रकृति० अ० ३६)

यह राधा वृषभानु की कन्या थी। उसने राधा का सम्वन्ध रायाण वैश्य से कर दिया जो कृष्ण की माता यशोदा का भाई था। वह रायाण गोलोक में तो कृष्ण का अंश था परन्तु सम्वन्ध की दृष्टि से कृष्ण का मामा था। ओ कृष्ण के भक्तो ! जव पुराणों के अनुसार राधा कृष्ण की मामी है तो अव तो राधा-कृष्ण कहकर कृष्ण का उपहास मत करो।

महाभारत में भगवान् कृष्ण का जीवन अनेक पहलुओं से चित्रित हुआ है परन्तु उसमें कहीं राधा के नाम की गन्ध भी नहीं है। हरिवंश पुराण में कृष्ण के वंश का विस्तृत वर्णन है उसमें भी राधा की चर्चा नहीं है। भास कवि कृत वालचरित नाटक जिसमें कृष्ण की वाल लीलाओं का चित्रण है तथा विष्णु पुराण, वायु पुराण जिनमें कृष्ण का चरित्र-चित्रण है, कहीं भी राधा का उल्लेख नहीं है। और तो और श्रीमद्भागवत तक में राधा का नाम नहीं है। हां ब्रह्मवैवर्त पुराण में कृष्ण के साथ राधा की चर्चा साधारणतया की गई है, परन्तु पीछे भक्त कवियों ने कृष्ण का जो चरित्र लिखा है उसमें उन्होंने अपने मन के फफोले फोड़े हैं। यह उनकी कपोल-कल्पना है। उसका ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है।

न तो कृष्ण गोपियों से व्यभिचार करते थे न राधा के साथ उनका कोई अश्लील सम्बन्ध था और न उनके १६००० रानियां थीं। १६००० तो

परिचारिकाएँ और दासियाँ थीं। रुक्मिणी, केवलमात्र रुक्मिणी श्रीकृष्ण की धर्मपत्नी थी। वही उनकी गृहलक्ष्मी और हृदयेश्वरी थी।

कृष्ण पाण्डव परिचय

राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर में देश विदेश के अनेक राजा उपस्थित हुए। पाण्डव लोग भी ब्राह्मण वेश में वहां उपस्थित थे। जब वीर केसरी अर्जुन ने मत्स्य भेद कर स्वयंवर की शर्त पूर्ण कर दी तब अन्य राजे महाराजे बहुत बिगड़े। कारण कि अर्जुन और उसके भाई लाक्षागृह से निकलकर ब्राह्मणों का सा वेश धारण किये हुए घूमते फिरते थे। अतः क्षत्रिय शासक मण्डल ने इस बात को अपने लिये भारी अपकीर्ति दायक और अपमानजनक समझा कि इतने क्षत्रिय महारथियों की उपस्थिति में एक कंगाल ब्राह्मण द्रौपदी को ले जाये। उन्होंने शोर मचाया और लड़ने को तैयार हुए। पाण्डव भी युद्ध के लिये कटिबद्ध थे। सर्वप्रथम कर्ण और अर्जुन युद्ध भूमि में उतरे। युद्ध में कर्ण परास्त हुआ। उधर भीम पास खड़े किसी वृक्ष को उखाड़ और उसी की गदा बनाकर शल्य से भिड़ गये। श्रीकृष्ण यह सब कौतुक एक ओर खड़े होकर देख रहे थे। क्षात्र मण्डल परास्त होते देख वे ताड़ गये कि यह अपूर्व धनुर्धारी अर्जुन है। अब कृष्णजी ने आगे बढ़कर दोनों पक्षों को शान्त किया। उन्होंने कहा कि इस ब्राह्मण ने धर्मानुसार ही द्रौपदी को प्राप्त किया है अतः इससे वैर विरोध करना उचित नहीं। कृष्ण की बात को कौन टाल सकता था? द्रौपदी ने वरमाला अर्जुन के गले में डाल दी! पाण्डवों की जननी कुन्ती भगवान् कृष्ण की फूफी लगती थी। इस कारण उस दिन से कृष्ण पाण्डवों के मित्र, सहायक, परामर्शदाता और पथप्रदर्शक हो गये।

युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ

एक दिन देवर्षि नारद महाराज युधिष्ठिर के यहां पधारे और युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ रचाने का परामर्श दिया। शुभचिन्तकों और मित्रमण्डली ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को बुलाया और उन की सलाह ली तो उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा, "महान् पराक्रमी जरासन्ध को जीते बिना आप कदापि राजसूय यज्ञ को पूर्ण नहीं कर सकते। जरासन्ध ने ८६ राजाओं को कैद किया हुआ है और उसकी इच्छा है कि चौदह अन्य शासकों को और बन्दी बनाकर एक भारी यज्ञ रचे और उसमें इन सभी राजाओं की बलि चढ़ा दे। अतः आप जरासन्ध को परास्त करके ही सम्राट् बनने के अधिकारी हो सकते हैं।"

श्रीकृष्ण के ये युक्तियुक्त वचन सबके मन भाये। श्रीकृष्ण व्यर्थ की मार काट और रक्तपात के विरोधी थे। उन्होंने द्वन्द्व युद्ध द्वारा अकेले जरासन्ध को मारने का निश्चय किया और भीम तथा अर्जुन को लेकर मगध की ओर चले। मगध पहुँच कर उन्होंने एक माली से पुष्पमालाएं छीन लीं। गिरिव्रज के चहुँ ओर पर्वत शृंग थे। उनमें से एक को तोड़कर नगर में प्रविष्ट हुए। यहां उन्होंने स्नातकों का वेश धारण कर लिया और सीधे राजमहल में पहुँच कर जरासन्ध से मिले। उस दिन भीम और अर्जुन ने मौन व्रत धारण किया हुआ था। जरासन्ध ने स्नातकों की भांति इनका सत्कार किया। कृष्ण ने इन दोनों का परिचय दिया और बताया कि आधी रात के समय ये अपना मौन तोड़ेंगे तभी वार्तालाप हो सकेगा। जरासन्ध ने यज्ञशाला में उनके ठहरने का प्रबन्ध किया और अर्द्ध रात्रि को आने का वचन देकर स्वयं राजभवन में चला गया।

अर्द्ध रात्रि व्यतीत होने पर जरासन्ध इनसे मिला तो इनके माली से पुष्पमालाएं छीनने और गिरिव्रज तोड़ने का वृत्तान्त उसे ज्ञात हो चुका था। इन की भुजाओं पर धनुष की डोरी चढ़ाने के चिह्न देखकर समझ गया कि ये क्षत्रिय हैं। उसने अपनी शंका प्रकट करते हुआ पूछा, "महानुभावो ! यह वेश परिवर्तन क्यों कर रक्खा है ? यहां आने का क्या प्रयोजन है ? सीधे द्वार से न आकर गिरि शृंग तोड़कर आने का क्या कारण है ?"

श्रीकृष्ण ने कहा, "महाराज ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्ण स्नातक के नियम से रह सकते हैं। आप हमें क्षत्रिय स्नातक जानें। और—

पुष्पवत्सु ध्रुवा श्रीश्च पुष्पवन्तस्ततो वयम् ॥

(सभापर्व० २१ । ५१)

पुष्पमाला सौभाग्य का चिह्न है इसलिए धारण की है। मौनी इसलिए हैं कि—

क्षत्रियो बाहुवीर्यस्तु न तथा वाक्य वीर्यवान् ॥

(सभा० २१ । ५१)

क्षत्रिय कर्मवीर होते हैं वाक्शूर नहीं। तथा द्वार से न आने का कारण यह है कि आप हमारे शत्रु हैं और नीति अनुसार—

अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदो गृहान् ॥

(सभा० २१ । ५३)

शत्रु के घर में दीवार तोड़कर जाना चाहिये। इससे हमारे आने के प्रयोजन का अनुमान कर लीजिये।

जरासन्ध ने पूछा, "मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया। फिर मेरी आप की शत्रुता कैसी?" कृष्णजी ने उत्तर दिया, "तूने अनेक राजाओं को कैद किया हुआ है और उनकी वलि देना चाहता है। तू जाति का घातक है और हम रक्षक हैं। मैं कृष्ण हूँ और ये पाण्डव-पुत्र भीम और अर्जुन हैं। हम तुझे ललकारते हैं। या तो तू राजाओं को छोड़ दे अन्यथा हम में से किसी के साथ द्वन्द्व युद्ध कर।

जरासन्ध ने कैदियों को छोड़ने से तो इनकार कर दिया परन्तु भीम से मल्लयुद्ध करने के लिए तैयार हो गया। दूसरे दिन चारों वर्णों के नर नारी एवं आवाल वृद्धों के एक वड़े समारोह में जरासन्ध और भीम का युद्ध आरम्भ हुआ। यह युगल जोड़ी एक दूसरे पर लात, मुक्कों और घूंसों का प्रहार करते हुए तेरह दिन तक लगातार लड़ती रही। चौदहवें दिन जरासन्व थककर हटने लगा। श्रीकृष्ण ने इस अवसर पर भीम को सचेत करते हुए कहा कि थका शत्रु लड़ाई में मारने को कम मिलता है, इसपर मुक्कों का भरसक प्रहार कर। भीम जोर-जोर से मुक्के मारने लगा परन्तु जरासन्ध का कुछ भी नहीं विगड़ा। अब कृष्णजी ने भीम को स्मरण कराया कि इसका निचला भाग दुर्वल है। भीमसेन ने यह सुनते ही उसे टांगों से पकड़ कर खींचा और उस के चिर कर दो टुकड़े हो गये। सफलता ने भीमसेन के चरण चूमे। यह है श्रीकृष्ण की नीतिमत्ता का उत्कृष्ट उदाहरण।

श्रीकृष्ण और अर्जुन ने वन्दी राजाओं को मुक्त किया और जरासन्व के पुत्र सहदेव को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त किया। मुक्त हुए राजाओं ने श्रीकृष्ण की स्तुति की और युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आने का वचन दिया।

अर्घ्यदान और शिशुपाल वध

जरासन्ध का वध हो गया। इससे ८६ कुलों के प्रमुखों ने तो स्वयं ही युधिष्ठिर को सम्राट् स्वीकार कर लिया। अव युधिष्ठिर के चारों भाई दिग्विजय के लिए निकले। दिग्विजय के पश्चात् राजसूय यज्ञ की तैयारी होने लगी। सब व्यक्तियों को पृथक्-पृथक् कार्य वांटे गये। भोजन व्यवस्था का भार दुःशासन को, राजाओं के स्वागत-सत्कार पर संजय को, देख-रेख के लिए भीष्म और द्रोणाचार्य को, स्वर्ण और रत्नादि की रक्षा और दक्षिणा देने पर कृपाचार्य को नियुक्त किया गया। विदुर व्ययकर वने। दुर्योधन उपहार लेने पर नियुक्त हुए। श्रीकृष्ण ने यज्ञशाला के द्वार पर पहरा देने और ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य अपने हाथ में लिया। यह है श्रीकृष्ण की नम्रता।

युधिष्ठिर की दीक्षा हो चुकी। अब अर्घ्य देने का समय आया तो युधिष्ठिर ने भीष्मजी से पूछा कि सबसे पूर्व अर्घ्य किसे दिया जाये तो भीष्मजी ने कहा—

"इस विराट् सभा में जहां समस्त भारत के सुविख्यात ब्राह्मण, धुरन्धर विद्वान्, वेदों के मर्मज्ञ, युद्धविद्या विशारद, शूरवीर क्षत्रिय, वीर राजा और महाराजा उपस्थित हैं उन सबमें कृष्ण ही सबसे बढ़कर हैं—

वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाभ्यधिकं तथा ।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते ॥
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा ।
सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते ॥

(सभा० ३८।१९-२०)

ये वेद वेदाङ्गों के तो मर्मज्ञ हैं ही, बलशाली भी सबसे अधिक हैं। कृष्ण के अतिरिक्त संसार के मनुष्यों में दूसरा कौन सबसे बढ़कर है ? दान, दक्षता, शास्त्र ज्ञान, शौर्य, लज्जा, कीर्त्ति, उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि और पुष्टि ये सभी सद्गुण श्रीकृष्ण में नित्य विद्यमान हैं।

ये सभी राजाओं में अपने तेज, बल और पराक्रम से उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे हैं जैसे नक्षत्रों में सूर्य, अतः ये ही अर्घ्य के उपयुक्त पात्र हैं।" धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा पा सहदेव ने श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया।

चेदिराज शिशुपाल श्रीकृष्ण का यह सम्मान देख आगबबूला हो गया। शिशुपाल बोला, "कृष्ण न ऋत्विज हैं न आचार्य और न राजा। इनको अर्घ्य देना अन्य राजाओं का अपमान है।" इतना ही नहीं उसने कृष्ण को गालियां देना आरम्भ किया। उन्हें स्त्रीघातक और गोघातक बताया, ग्वाला और पेटू कहा। युधिष्ठिर ने उसे समझाने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु लातों के भूत बातों से कब मानते हैं ? शिशुपाल ने आंखें लाल कीं, दांत पीसे और अन्त में कृष्ण को युद्ध के लिये ललकारा। श्रीकृष्ण अब तक चुप थे परन्तु युद्ध का आह्वान सुनकर चुप रहना कायरता थी। उन्होंने पहले तो राज्यसभा में उसके कुकृत्यों का भण्डा फोड़ किया और कहा कि फूफी के कहने से अब तक इसके अपराधों को क्षमा करता रहा परन्तु अब हद हो चुकी है पाप का घट पूर्ण भर चुका है। यह कह श्रीकृष्ण ने नरेन्द्र मण्डल के देखते-देखते अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उसका काम तमाम कर दिया। विजय-माला कृष्ण के गले में पड़ी। यज्ञ समाप्त हो गया तो पाण्डवों की अनुमति पा कृष्ण जी द्वारिकापुरी लौट गये।

पाण्डवों का प्रवास

दुर्योधन की पाण्डवों से बचपन से ही लाग-डांट थी। राजसूयोत्सव में दूर-दूर के राजाओं के उपहारों को देखकर तथा मय द्वारा रचित अनुपम सभा का अवलोकन कर दुर्योधन के हृदय पर सांप लोटने लगा। वह पाण्डवों की धन-सम्पत्ति हड़प करने और उन्हें नीचा दिखाने के उपाय सोचने लगा। शकुनि ने दुर्योधन को युधिष्ठिर के साथ जुआ खेलने की सम्मति दी। युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिये बुलाया गया। शकुनि ने अपने छल के द्वारा एक दो दावों में सारा साम्राज्य, फिर चारों भाइयों सहित युधिष्ठिर और अन्त में द्रौपदी को भी जीत लिया। अब क्या था, एकवस्त्रा द्रौपदी को सभा में लाया गया। दासी और वेश्या कहकर उसे अपमानित किया गया। दुःशासन ने उसका वस्त्र खींचा। महाभारत में इस स्थल पर कृष्ण द्वारा द्रौपदी का चीर बढ़ाने का वर्णन है परन्तु यह प्रक्षेप है। श्रीकृष्ण को तो इस घटना का पता ही नहीं था। वे तो शाल्व से युद्ध करने गये हुए थे। वन में पाण्डवों से मिलने पर उन्होंने युधिष्ठिर से कहा था—

> यद्यहं द्वारकायां स्यां राजन् संनिहितः पुरा।
> आगच्छेयमहं द्यूतमनाहूतोऽपि कौरवैः॥
> वारयेयमहं द्यूतं बहून् दोषान् प्रदर्शयन्॥
> (वनपर्व १३।१-२)

अर्थात् यदि मैं द्वारिका में होता तो बिना बुलाये जुए के समय वहां पहुँच जाता और जुए के अनेक दोष दिखाकर उसे रोकने का प्रयत्न करता अस्तु!

धृतराष्ट्र को द्रौपदी के अपमान का पता लगा तो वे बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने द्रौपदी को बुला कर वर मांगने के लिए कहा। द्रौपदी ने पहले वर में युधिष्ठिर और दूसरे में चारों पाण्डवों को दास भाव से मुक्त करा लिया। इस प्रकार दुर्योधन की सारी योजना विफल हो गई। पाण्डव इन्द्रप्रस्थ को जा ही रहे थे कि उन्हें फिर बुलाया गया और पुनः जुआ खेला गया। शर्त यह रही कि जो हारे वही परिवार सहित वनवास को जाये। पाण्डव पुनः पराजित हुए और उन्हें १२ वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास के लिए जाना पड़ा।

पाण्डवों का १२ वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा हो गया तो उन्होंने अपना राज्य वापिस मांगा। दुर्योधन ने राज्य वापिस नहीं दिया। दोनों ओर से युद्ध की तैयारियां होने लगीं।

दूतकर्म

महाभारत का युद्ध आरम्भ होने से पूर्व श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन के पास हस्तिनापुर पहुँचे। वहां विदुर जी के घर जाकर ठहरे तथा कुन्ती को सान्त्वना और धैर्य दिया। इसके पश्चात् वे दुर्योधन के यहां गये। उनका मधुपर्क तो स्वीकार किया परन्तु जब दुर्योधन ने भोजन के लिए कहा तो कृष्ण जी ने कहा—

सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम्॥
(उद्योग० ९१।२५)

"राजन्! किसी के घर का अन्न दो कारणों से खाया जाता है या तो प्रेम के कारण या आपत्ति पड़ने पर। प्रीति तो तुम में नहीं है और संकट में हम नहीं हैं।"

दूसरे दिन कृष्ण राज्यसभा में पहुँचे। सभा में पहुँचने पर भीष्म और द्रोणादि सभी कौरव प्रमुखों ने उठकर उनका स्वागत किया और उन्हें श्रेष्ठ आसन प्रदान किया। उनके स्थान ग्रहण करने पर सभा में सन्नाटा छा गया। इस सन्नाटे को भंग करते हुए धृतराष्ट्र को सम्बोधित कर कृष्णजी ने कहना आरम्भ किया—

संसार में एक महान् विपत्ति आने वाली है जिससे पृथ्वी का नाश होगा यदि आप चाहें तो यह विपत्ति टल सकती है, यह कोई कठिन कार्य नहीं—

त्वय्याधीनः शमो राजन् मयि चैव विशाम्पते।
पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान्॥
(उद्यो० ९५।१३)

कौरव नरेश! इस समय दोनों पक्षों में सन्धि कराना मेरे और आपके आधीन है। आप अपने पुत्रों को मर्यादा में रक्खें और मैं पाण्डवों को नियन्त्रण में रक्खूँगा। आगे उन्होंने फिर कहा—

शिवेनेमे भूमिपालाः समागम्य परस्परम्।
सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथा गृहम्॥
(उद्योग० ९५।३५)

आप ऐसा प्रयत्न कीजिये जिससे ये राजा लोग परस्पर मिलकर तथा एक साथ खा पीकर कुशलपूर्वक अपने-अपने घरों को लौट जायें। फिर उन्होंने दुर्योधन से कहा—

तुम परम ज्ञानी महापुरुषों के कुल में उत्पन्न हुए हो फिर अकुलीनों का सा व्यवहार क्यों दिखाते हो। युद्ध हुआ तो कुल का नाश होगा अतः सन्धि कर लो। अपनी कीर्ति का नाश कर कुलघाती न बनो।

त्वामेव स्थापयिष्यन्ति यौवराज्ये महारथाः।
महाराज्येऽपि पितरं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्॥
मा तात श्रियमायान्तीमवमंस्थाः समुद्यताम्।
अर्धं प्रदाय पार्थेभ्यो महतीं श्रियमाप्नुहि॥
(उद्यो० १२४।६०-६१)

महारथी पाण्डव तुम्हें ही युवराज बनाएंगे और तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र को महाराज के पद पर बनाए रक्खेंगे। तात! अपने घर में आने को उद्यत राज्यलक्ष्मी का अपमान मत करो। कुन्ती के पुत्रों को आधा राज्य देकर स्वयं विशाल सम्पत्ति का उपभोग करो।

जो लोग कृष्ण जी पर युद्ध कराने का दोष मंढते हैं वे उपर्युक्त वर्णन को देखें उन्होंने युद्ध को रोकने का कितना प्रबल उद्योग किया है।

भीष्म, विदुर और द्रोण सबने दुर्योधन को समझाया परन्तु उसने एक न सुनी और कहा पाण्डवों ने जो कष्ट झेले हैं उसमें मेरा क्या दोष है? गीदड़ भभकियों से भयभीत हो मैं राज्य नहीं लौटा सकता। आधे राज्य की तो बात ही क्या—

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव!
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति॥
(उद्यो० १२७।२५)

हे केशव! जितनी भूमि एक सुई की नोक से छिद सकती है मैं पाण्डवों को उतनी भूमि देने के लिए भी तैयार नहीं हूँ।

जब कृष्ण जी ने देखा कि नरमी से काम नहीं निकलता तो उन्होंने कड़ककर कहा, "दुर्योधन! लाक्षागृह तुमने बनवाया था। भीम को विष तुमने दिया था। जुए का खेल तुमने रचाया, भरी सभा में द्रौपदी का अपमान तुमने किया और फिर यही रट लगा रक्खी है कि तुम सर्वथा निर्दोष हो। निश्चय ही तुम्हारी जीवन लीला समाप्त हो चुकी है। शान्ति अच्छी थी तू उसे ठुकरा रहा है।"

अब दुर्योधन और दुःशासन ने कृष्ण को कैद करने की मन्त्रणा की परन्तु भण्डा फूट गया। धृतराष्ट्र और विदुर ने उसे बहुत लताड़ा और फटकारा।

कृष्ण जी ने कहा, "मैं चाहूँ तो अभी इसे बांधकर पाण्डवों के हवाले कर दूं परन्तु मैं दूत हूँ अधर्म नहीं करूंगा।" यह कह कर कृष्ण जी सभा से चल दिये।

गीता-उपदेश

श्रीकृष्णजी ने अपनी ओर से शान्ति स्थापित करने का पूर्ण प्रयत्न किया परन्तु जब सभी उपाय असफल रहे तो युद्ध की घोषणा हो गई। दोनों सेनाएं कुरुक्षेत्र के मैदान में डट गईं। दुर्योधन ने भीष्मपितामह को अपना सेनाध्यक्ष बनाया। पाण्डव सेना की बागडोर धृष्टद्युम्न के हाथ में थी। युद्धारम्भ होने से पूर्व अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मेरा रथ दोनों सेनाओं के मध्य में खड़ा करो जिससे मैं यह देखूं कि मुझे किनके साथ संग्राम करना है। दोनों सेनाओं के मध्य में पहुँच कर अर्जुन ने देखा—दोनों सेनाओं में इष्टजन और सम्बन्धी, बन्धु बान्धव, दादा चाचा, ताऊ मामा, गुरु और आचार्य खड़े हैं। उसका शरीर कांपने लगा। मस्तक पर पसीने की बूंदें छलकने लगीं। चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। धनुष हाथ से छूट गया। "भगवन्! मैं नहीं लड़ूंगा," ऐसा कहकर और गाण्डीव छोड़कर वह रथ में बैठ गया।

इस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया वह भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है। कृष्णजी ने कहा—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

(गीता २।२)

हे अर्जुन! तुम्हें युद्धस्थल में यह मोह कैसे उत्पन्न हुआ? यह तो अनार्यों का कर्म है। यह न स्वर्ग देने वाला है और न कीर्ति करने वाला है।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वयुपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

(गीता २।३)

अर्जुन! नपुंसकता मत दिखा। यह तुझे शोभा नहीं देता। हृदय की दुर्बलता त्याग और युद्ध कर।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

(गीता २।२३)

अर्जुन ! आत्मा अमर है। शस्त्र इसे काट नहीं सकते। अग्नि इसे जला नहीं सकती, जल इसे गला नहीं सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकता।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

(गीता २।३७)

अर्जुन ! यदि युद्ध में मर गया तो तुझे स्वर्ग के द्वार खुले मिलेंगे और यदि जीत गया तो पृथ्वी का राज्य मिलेगा। अतः युद्ध के लिए निश्चय कर और खड़ा हो।*

श्रीकृष्ण के इस अमर एवं अद्वितीय उपदेश का अर्जुन पर आशातीत प्रभाव पड़ा। अर्जुन का मोह दूर हुआ। वह दुगुने जोश और चौगुने उत्साह से लड़ने के लिए तैयार हो गया।

भीष्म वध

महाभारत के विनाशकारी युद्ध में १८ दिन तक लोहे से लोहा बजा। प्रथम दस दिन तक अद्वितीय योद्धा बालब्रह्मचारी भीष्म ने कौरव सेना की बागडोर सम्भाली। नौ दिन तक युद्ध होता रहा परन्तु उनके पराक्रम में कोई अन्तर नहीं आया। उनके जीते जी विजय असम्भव थी। कृष्णजी उनके मारने का उपाय सोचने लगे। एक रात्रि को वे भीष्मजी के पास गये और उन्हींसे उनकी मृत्यु का रहस्य पूछ लिया। भीष्म जी की प्रतिज्ञा थी कि स्त्री या स्त्रीरूप नपुंसक पर हथियार नहीं चलाऊंगा। बस दसवें दिन श्रीकृष्ण ने शिखण्डी को भीष्म के सामने खड़ा कर दिया। अर्जुन ने शिखण्डी के पीछे रहकर भीष्म पर बाण वर्षा की। भीष्म धराशायी हो गये।

जयद्रथ वध

भीष्म के पश्चात् द्रोणाचार्य कौरव दल के सेनापति बने। दुर्योधन के आग्रह पर आपने युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए चक्रव्यूह की रचना की। उधर अर्जुन को संशप्तकों ने एक ओर बुला लिया। उस दिन युद्ध का सारा भार अभिमन्यु पर आ पड़ा। अभिमन्यु व्यूह भेदकर अन्दर प्रविष्ट हुए। उन्होंने द्रोण और कर्ण आदि महारथियों के छक्के छुड़ा दिये। अन्ततोगत्वा सात महारथियों ने मिलकर उन्हें मार दिया। जब सन्ध्या समय अर्जुन वापस लौटे तो उन्हें यह दुःखद समाचार मिला कि अब अभिमन्यु इस संसार में नहीं

* इस विषय में अधिक जानकारी के लिए लेखक द्वारा लिखित तथा सभा द्वारा प्रकाशित "गीता-उपदेश" पढ़ें।

रहा। अर्जुन के हृदय को गहरा आघात लगा। जब अर्जुन को पता लगा कि अभिमन्यु की हत्या का प्रमुख कारण जयद्रथ था तो उन्होंने प्रतिज्ञा की, "यदि कल सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ का वध न कर लूं तो स्वयं जलती अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊंगा।" उनकी यह प्रतिज्ञा सुन कृष्णजी ने कहा—

अत्यन्त रोषावेग में तुमने किया है प्रण कड़ा।
अब यत्न क्या इसका सखे? यह कार्य है दुष्कर बड़ा॥
यों सुन वचन गोविन्द के निर्भय धनञ्जय ने कहा।
निश्चय मरेगा कल जयद्रथ प्राप्त होगी जय मुझे।
हे देव मेरे यत्न तुम हो मत दिखाओ भय मुझे॥

(जयद्रथ वध)

अर्जुन ने कहा मुझे तो प्रतिज्ञा करनी थी कर ली, कैसे पूर्ण होगी यह आपका कार्य है। दूसरे दिन अर्जुन जयद्रथ को मारने के लिए कौरवों की सात अक्षौहिणी सेना का सफाया करते हैं परन्तु जयद्रथ हाथ नहीं आता। अन्त में कृष्ण अपनी माया-नीति फैलाते हैं। आकाश में सूर्य अस्त होता दिखाई देता है। पक्षी अपने घोंसलों को उड़ते दिखाई देते हैं। कौरव प्रसन्न हो जाते हैं। जयद्रथ भी व्यूह से निकल कर आगे आ जाता है। कृष्ण अर्जुन को जलने के लिए कहते हैं। उसका धनुष बाण भी चिता पर रख देते हैं। जब जयद्रथ अर्जुन के बिलकुल सामने आ जाता है तो कृष्ण ताली बजाते हैं। बादल फट जाते हैं और सूर्य दृष्टिगोचर होता है। अर्जुन का तीर जयद्रथ का काम तमाम कर देता है।

दिन को रात्रि में परिवर्तित कर देना और रात का दिन बना देना यह भी एक योग था। जब शाल्व का कृष्ण से युद्ध हुआ तो शाल्व ने इसी प्रकार की माया रची थी। कृष्णजी ने प्रज्ञास्त्र द्वारा उसे उड़ा दिया था। जब कृष्णजी उसकी रोक जानते थे तो निश्चय ही वे दिन में अन्धकार फैलाने वाली विद्या से भी अपरिचित नहीं होंगे। जब महाभारत के युद्ध में नारायण और विद्युतास्त्र आदि विद्यमान थे तो इस प्रकार के योग भी अवश्य ही होंगे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। द्वितीय महायुद्ध में हिटलर ने भी कई बार ऐसे प्रयोग किये थे जिनसे दिन में ही अन्धकार छा जाता था और ऐसा प्रतीत होता था कि रात्रि हो गई परन्तु थोड़ी देर में फिर सूर्य चमकता दिखाई देता था। अतः इस घटना में असम्भव कुछ नहीं। यह योगेश्वर कृष्ण की नीति और युद्ध-कौशल का एक उदाहरण है।

द्रोण वध

द्रोणाचार्य के वध के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि कृष्ण ने पाण्डवों से कहा कि धर्म युद्ध द्वारा द्रोणाचार्य को जीतना असम्भव है, अतः तुम ऐसा उपाय करो जिससे तुम्हारा नाश न हो। और वह उपाय उन्होंने यह बताया कि द्रोणाचार्य को अपने पुत्र से बहुत मोह है। यदि कोई व्यक्ति उनके पास जाकर यह कह दे कि अश्वत्थामा मारा गया तो वे युद्ध करना छोड़ देंगे। बस उसी अवस्था में उनका वध हो सकता है। भीम ने तुरंत एक हाथी को मार कर यह प्रसिद्ध कर दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोण को विश्वास न हुआ। अतः उन्होंने युधिष्ठिर से अपने पुत्र के विषय में जानना चाहा। कृष्ण ने युधिष्ठिर से भी कहा कि कह दो अश्वत्थामा मारा गया। युधिष्ठिर ने उन के कहने में आकर इतना ही कहा था कि 'अश्वत्थामा हतो' कि बाजे बजवा दिये गये जिससे आचार्य अगला वाक्य न सुन सके। उनका पूरा वाक्य यह बताया जाता है "अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो वा"—अश्वत्थामा मारा गया मनुष्य अथवा हाथी। यह श्लोक महाभारत में है ही नहीं। बंकिम बाबू के अनुसार यह महाभारत के कथाकार काशी राम व्यास की कपोल कल्पना है।

श्रीकृष्ण पर इससे बढ़कर लाञ्छन और क्या हो सकता है? महर्षि दयानन्द के शब्दों में उन्होंने जन्म से मरण पर्यन्त कोई भी बुरा कार्य नहीं किया। ऐसा सदाचारी व्यक्ति ऐसा घृणित और कुत्सित परामर्श किस प्रकार दे सकता है।

फिर प्रश्न यह है कि द्रोणाचार्य का वध किस प्रकार हुआ? घटनाओं के तर्क पूर्ण विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आश्वमेधिक पर्व में कृष्ण द्वारा वर्णित वृत्तांत ही सत्य है। द्रोण के सम्बन्ध में उन्होंने इतना ही कहा है कि धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्य का युद्ध पांच दिन तक होता रहा। द्रोण लड़ते-लड़ते थक गये और धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया।

कर्ण वध

द्रोण के पश्चात् कर्ण कौरव सेनापति पद पर अभिषिक्त हुआ। उसने घनघोर युद्ध कर पाण्डवों के छक्के छुड़ा दिये। उस दिन युधिष्ठिर भी उसके हाथों से अति पीड़ित हुए। वे मैदान छोड़कर शिविर में आ गये। अर्जुन को जब युधिष्ठिर युद्धक्षेत्र में दिखाई न दिये तो वह घबराया और युधिष्ठिर का पता लगाने शिविर में आया। युधिष्ठिर अपनी पराजय से जले-कटे बैठे थे।

जब अर्जुन उनके शिविर में आये तो वे कर्ण वध का समाचार सुनने के लिए बहुत उत्सुक थे। जब उन्हें पता लगा कि कर्ण अभी जीवित है तो उन्होंने अर्जुन को बहुत फटकारा और यहां तक कह दिया कि तेरे गाण्डीव को धिक्कार है, तू उसे किसी अन्य बलशाली राजा को सौंप दे। यह तुझे शोभा नहीं देता।

गाण्डीव का नाम सुनते ही अर्जुन ने तलवार निकाली। कृष्ण समझ गये दाल में कुछ काला है। कृष्ण ने कहा, "पितृतुल्य भाई की हत्या करोगे? यदि तुम्हें युधिष्ठिर की हत्या करनी है तो उन्हें 'आप' की बजाय 'तुम' कहकर पुकार लो। इन्हें जली-कटी सुना दो। अर्जुन ने जी भरकर युधिष्ठिर की निन्दा की। अब अर्जुन ने आत्महत्या करने के लिए पुनः तलवार उठाई तो कृष्ण ने कहा, "आत्म प्रशंसा कर लो, क्योंकि अपने मुंह से अपनी प्रशंसा ही सज्जनों के लिए मृत्यु के समान है।" अब अर्जुन ने खूब आत्मश्लाघा की। उधर युधिष्ठिर अर्जुन के इस उच्छृङ्खल व्यवहार को देखकर वन जाने के लिए तैयार हो गये। कृष्णजी ने समझा-बुझाकर उन्हें भी मनाया। कृष्णजी ने अपनी नीति-मत्ता से दोनों भाइयों के हृदय में जो रोष, क्रोध, वैमनस्य और ग्लानि के भाव आ गये थे उन्हें किसी प्रकार मिटा दिया।

युधिष्ठिर का हार्दिक आशीर्वाद लेकर अर्जुन कर्ण से भिड़ने चला। युद्ध आरम्भ हुआ। अर्जुन के लिए कर्ण उधार खाये बैठा था। उसकी प्रतिज्ञा थी 'अर्जुन रहेगा या मैं।' रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ। युद्ध करते हुए कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में धंस गया। कर्ण रथ चक्र को दल-दल से निकालने के लिए नीचे उतरा। ठीक उसी समय कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि यही अवसर है, निशाना साधो और तीर चलाओ। कर्ण चिल्लाया कि निहत्थे पर वार करना धर्म नहीं है। इस पर नीतिज्ञ कृष्ण बोले, "अरे कर्ण! अब 'धर्म-धर्म' चिल्लाता है परन्तु ओ कर्ण!

यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभाया-
मानाययेस्त्वं च सुयोधनश्च।
दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च,
न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः॥

(कर्णपर्व ९१।२)

जिस समय तुम, दुःशासन, शकुनि और सौबल सब मिलकर ऋतुमती एकवस्त्रा द्रौपदी को घसीट लाये थे उस समय तुम्हें धर्म की याद नहीं आई। और—

यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥

(कर्ण० ९१।११)

जब तुम बहुत से महारथियों ने मिलकर अकेले अभिमन्यु को घेरकर मार डाला था उस समय तुम्हारा धर्म कहां गया था। अरे क्षत्रिय धर्म को जानने का अभिमान करने वाले तुम भी तो उनमें सम्मिलित थे। इतना कह कर उन्होंने अर्जुन को आदेश दिया कि इस प्रकार दल-दल में फंसे हुए कर्ण का वध करना पुण्य है। यह है कृष्ण की नीति का ज्वलन्त उदाहरण।

श्रीकृष्ण के विशेष गुण

इस लघु पुस्तक में श्रीकृष्ण के जीवन की सभी घटनाओं पर विचार करना असम्भव है। अतः अब हम उनके जीवन के कुछ अति महत्वपूर्ण गुणों और घटनाओं को देखेंगे।

श्रीकृष्ण में कामदेव जैसी कोमलता और सुन्दरता, आचार्य बृहस्पति जैसी प्रतिभा, जनक जैसा ज्ञान, बुद्ध जैसी अहिंसा और दया, राम जैसा आर्य संस्कृति से प्रेम और सिंह जैसा पराक्रम था। संक्षेप में विश्व के सभी सद्गुण उनमें विद्यमान थे।

श्रीकृष्ण के प्रत्येक कृत्य में सर्वाङ्ग पूर्णता और प्रतिभा नाचती है। मधुरता और वीरता, प्रेम और अनासक्ति, सेवा और श्रेष्ठता, सत्य और सहिष्णुता, निर्भीकता और निर्लोभता की वे साक्षात् मूर्ति थे।

वीरता—महाभारत में श्रीकृष्ण की वीरता और शक्ति का अनेक स्थलों पर वर्णन मिलता है। भीष्मपितामह और अर्जुन के युद्ध के समय जब कृष्ण ने देखा कि महाप्रतापी भीष्म अपनी बाण वर्षा की बाढ़ में अर्जुन को पीड़ित कर रहे हैं तो अतुल पराक्रमी श्रीकृष्ण अपनी भुजाओं को उठाते हुए अपना चक्र ले महाबलसिंह की भांति भीष्म पर टूट पड़े।

शील—श्रीकृष्ण के शील का पता इस बात से लगता है कि जब वे व्यास, धृतराष्ट्र, कुन्ती और युधिष्ठिर आदि बड़ों से मिलते थे तो सदा उनके चरण छूते थे। देखिये—

कृष्णोऽहमस्मीति निपीडय पादौ,
युधिष्ठिरस्याजमीढस्य राज्ञः।

(आदि० १९०।२०)

मैं कृष्ण हूँ ऐसा कहकर उन्होंने युधिष्ठिर के चरणों का स्पर्श किया।

सन्ध्या-उपासना—सन्ध्या और हवन कृष्ण के जीवन के महत्वपूर्ण अङ्ग थे। दूतकर्म पर जाते हुए मार्ग में सन्ध्या समय होने पर उन्होंने रथ रुकवाकर सन्ध्या की। हस्तिनापुर में कौरव सभा में जाने से पूर्व सन्ध्या और अग्निहोत्र किया। युद्ध के दिनों में भी वे सन्ध्या अवश्य करते थे।

सहिष्णुता—सहिष्णुता के कृष्ण साकार स्वरूप थे। कंस के अत्याचार झेले। जरासन्ध के प्रहार और शिशुपाल की वचन रूपी तलवार के कठोर वार सहे परन्तु श्रीकृष्ण अडोल रहे।

निर्भीकता—श्रीकृष्ण के प्रत्येक कार्य में निर्भीकता और आत्मसम्मान जागृत रहता था। कौरवों की सभा में चारों ओर शत्रुओं से घिरे रहने पर भी उन्होंने अपने आत्मसम्मान की रक्षा की और किसी भी प्रकार दुर्योधन के न मानने पर धृतराष्ट्र को सलाह दी—

> राजन् दुर्योधनं बद्ध्वा ततः संशाम्य पाण्डवैः।
> त्वत्कृते न विनश्येयुः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभः॥
> (उद्यो० १२८।५०)

राजन्' आप दुर्योधन को बांधकर पाण्डवों से सन्धि कर लो। हे क्षत्रिय-श्रेष्ठ ! ऐसा न हो कि आपके कारण क्षत्रियों का विनाश हो जाय।

निर्लोभता—कृष्णजी ने राज्यक्रान्तियां कराईं परन्तु किसी लोभ लालच से नहीं। श्रीकृष्ण ने जो भी देश जीता उसे अपने आधीन करने की चेष्टा नहीं की और न उन्होंने किसी देश को जीतकर अपने भाई बन्धु मित्रादि को वहां का राजा बनाया। कंस का वध करके श्रीकृष्ण ने उसके पिता उग्रसेन को राज्य दे दिया। इसी भांति जरासन्ध का वध करके उसके पुत्र सहदेव को राजा बनाया और भौमासुर को मारकर उसके पुत्र भगदत्त को राज्य पर नियुक्त किया।

नैतिकता—श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन नैतिकता के आधार पर प्राणि-मात्र का सुख चिन्तन करते हुए व्यतीत हुआ। अन्तिम बार श्रीकृष्ण एक विकट धर्म-संकट में फंस गये। उनके ही बन्धु बान्धव और परिवार के सदस्य और सजातीय उद्दण्ड हो गये। विश्व में वे घोर अशान्ति का कारण बनते जा रहे थे। जीवन पर्यंत श्रीकृष्ण ने विश्व कल्याण किया। इस बार भी वे न चूके। यादव कुल का अपने देखते देखते अपने ही हाथों उन्होंने अन्त करा दिया।

नम्रता—राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों की पूजा और उनके चरण धोने का कार्य अपने ऊपर लिया। यह उनकी नम्रता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के जीवन में निजी और सार्वजनिक जीवन के आदर्श और उत्कर्षों का एक अद्भुत एवं उत्कृष्ट समन्वय पाया जाता है।

कृष्णजी को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

"देखो, श्रीकृष्णचन्द्र का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश्य है जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरण पर्यन्त कुछ भी बुरा काम किया हो ऐसा नहीं लिखा।"

(सत्यार्थप्रकाश ११वां समुल्लास)

यह है कृष्ण का सच्चा स्वरूप। आर्य जगत् उन्हें सदाचारी और संयमी मानता है अन्य लोग लम्पट तथा धूर्त। आर्य जगत् उन्हें असिधर, गदाधर और धनुर्धर मानता है तो कुछ लोग मुरलीधर और वंशीधर कहते हैं। आर्य जगत् उन्हें योगेश्वर मानता है तो कुछ लोग भोगेश्वर। आर्य जगत उन्हें साहूकार मानता है तो अन्य लोग उन्हें माखनचोर कहने में गर्व अनुभव करते हैं। हमारी समझ में नहीं आता जो एक राजा के पुत्र थे और जिनका पालन-पोषण नन्द के यहां हुआ, जो ९ लाख गौओं के स्वामी थे उन्हें दूसरे के घर में माखन चुराने की क्या आवश्यकता थी। उन्हें माखनचोर मानने वालों की बुद्धि की बलिहारी है।

इस सम्बन्ध में मुझे एक घटना याद आती है। महर्षि दयानन्द पूना में पहुँचे। वहां उन्होंने ५४० व्याख्यान दिये। उनका बड़ा मान और सम्मान हुआ। विदा करने से पूर्व उन्हें हाथी पर बिठाकर जलूस निकालने का प्रबन्ध होने लगा। विरोधियों को बहुत बुरा लगा। उन्होंने ऋषिवर को अपमानित करने के लिए एक व्यक्ति को उसका मुंह काला करके गधे पर बैठा दिया और उसके पीछे गाते नाचते और तालियां बजाते चले कि 'यह दयानन्द है, यह दयानन्द है।' एक भक्त ने जब यह दृश्य देखा तो चन्द्रकवि के शब्दों में कहा—

चढ़ाकर इक गधे पर आदमी मुंह कर दिया काला।
पुकारें नाम ले भगवन्! ये अत्याचार करते हैं॥

चन्द्रकवि के शब्दों में ही स्वामीजी ने उत्तर दिया—

मनव्वर चांद सा मुखड़ा तो असली है दयानन्द का।
वे मसनूई दयानन्दों की मिट्टी ख्वार करते हैं॥

आर्य जगत् तो असली कृष्ण को मानता है। उसी के दिव्य जीवन की झांकी यहां प्रस्तुत की गयी है। माखन चुराने वाला, गोपियों के वस्त्र उठाने वाला और उनके साथ व्यभिचार करने वाला कोई दूसरा कृष्ण होगा क्योंकि एक ही नाम के अनेक व्यक्ति हो सकते हैं।

क्या कृष्ण ईश्वर थे ?

श्रीकृष्ण न ईश्वर थे और न ईश्वर के अवतार। ऋग्वेद ७।३५।१३ में ईश्वर को 'अज' अजन्मा और यजुर्वेद ४०।८ में उसे 'अकायम्' शरीर रहित कहा गया है। श्रीकृष्ण का जन्म भी हुआ और वे शरीरधारी भी थे। अतः वे मनुष्य ही थे। स्वयं कृष्णजी ने उन्हें ईश्वर कहने वालों को परले दर्जे का मूर्ख बताया है। देखिये—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥*

(गीता ७। २४)

सर्वव्यापक ईश्वर के विकार रहित सर्वश्रेष्ठ परमात्मा रूपी भाव को न जानते हुए मूर्ख लोग मुझ शरीरधारी को परमात्मा कहते हैं।

श्रीकृष्ण ईश्वर के अवतार थे यह बात पुराणों से भी सिद्ध नहीं होती। इसके लिए अनेकों में से केवल एक प्रमाण दिया जाता है—

जब पृथ्वी पर पापों का भार बहुत बढ़ गया तो वह देवताओं के पास गई और उनसे अपना भार उतारने की प्रार्थना की। देवताओं ने ब्रह्मा से कहा और ब्रह्मा उन सबको लेकर क्षीर सागर के तट पर हरि के पास पहुँचे और वहां उन्होंने हरि की स्तुति की तब—

एवं संस्तूयमानस्तु भगवान् परमेश्वरः।
उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने॥

(वि० पु० ५।१।५)

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर हरि ने अपने श्याम और श्वेत दो केश उखाड़े और देवताओं से बोले, मेरे ये दोनों केश पृथ्वी पर अवतार लेकर पृथ्वी के भार रूप कष्ट को दूर करेंगे।

---

*"अह व्याप्तौ" धातु से अहं शब्द की निष्पत्ति होती है। अहं का ही षष्ठी में मम् बनता है अतः मम का अर्थ सर्वव्यापक ईश्वर होता है। यदि यह शंका हो कि 'माम्' का अर्थ भी इसी दृष्टिकोण से किया जाये तो ठीक नहीं, क्योंकि यहां कहने वाले श्रीकृष्ण हैं और यह शब्द उन्हीं के लिये है।

वसुदेवस्य या पत्नी देवकी देवोपमा ।
तत्रायमष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुरा ॥

(वि० ५।१।६३)

वसुदेवजी की जो देवी के समान देवकी नाम की भार्या है उसके आठवें गर्भ में मेरा यह (श्याम) केश अवतार लेगा । कहिये कैसी रही ! यहां तो कृष्ण को बाल का अवतार बना दिया ।

प्रश्न हो सकता है कि जब कृष्ण ईश्वर नहीं है तो हमने इस पुस्तक का नाम 'भगवान् कृष्ण' क्यों रक्खा तथा उन्हें बार-बार 'भगवान्' शब्द से क्यों सम्बोधित किया । इसका उत्तर है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतिरणा ॥

(वि० ६।५।७४)

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छः का नाम 'भग' है । जिसके पास इन में से एक भी हो उसे भगवाला—भगवान् कहा जा सकता है । श्रीकृष्ण के जीवन में जैसे ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है थोड़ी बहुत मात्रा में ये सब ही गुण विद्यमान थे । इसी दृष्टि से उन्हें 'भगवान्' लिखा गया है जो उचित है ।

कुछ लोग श्रीकृष्ण को १६ कलापूर्ण अवतार मानते हैं परन्तु १६ कला वाला भी मनुष्य ही होता है । प्रश्नोपनिषद् के अनुसार १६ कलायें ये हैं—

(१) प्राण=जीवन शक्ति, (२) श्रद्धा, (३) खम्=प्रसन्नता, (४) वायु=गतिशीलता, (५) ज्योति=ज्ञान प्रकाश, (६) आपः=नम्रता, (७) पृथिवी=सहनशीलता, (८) इन्द्रियां, (६) मन, (१०) अन्न=धारण शक्ति, (११) वीर्य, (१२) तप, (१३) मन्त्र=मनन शक्ति, (१४) कर्म=पुरुषार्थ, (१५) लोक=लोक व्यवहार और (१६) नाम=यश ।

प्रत्येक व्यक्ति इन्हें धारण कर सकता है और जो इन्हें धारण करता है वह षोडशी=सोलह कला वाला बन जाता है ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण एक महापुरुष थे और उन्हें महापुरुष मान कर ही हम उनके जीवन से शिक्षा लेकर अपने जीवनों को उन्नत बना सकते हैं ।

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प

यजुर्वेद-संहिता

* स्वर सहित मूल मन्त्र
* मन्त्रानुक्रमणिका सहित
* बढ़िया कागज
* सुन्दर छपाई
* आकर्षक आवरण

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक

[अध्यक्ष महर्षि दयानन्द स्मारक अनुसन्धान विभाग टंकारा]

की महत्त्वपूर्ण भूमिका के साथ छपकर तैयार है।

[श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने आर्य साहित्य की ३५ वर्षों तक निरन्तर सेवा की। सर्व प्रथम प्रकाशन सत्यार्थप्रकाश था जिसने सस्ता होने के कारण आर्य जगत में तहलका मचाया था। उनकी अन्तिम योजना चारों वेद मूल १०) में देने की थी जब कि अन्यत्र प्रकाशित २४) में मिलते हैं। इसी योजना के अनुसार यजुर्वेद मूल के प्रकाशन की व्यवस्था मृत्यु से १५ दिन पूर्व कर दी थी।]

वही यजुर्वेद-संहिता उनकी स्मृति ग्रन्थमाला के प्रथम पुष्प के रूप में प्रस्तुत है।

बड़ी साइज के २७५ पृष्ठ की पुस्तक

लागत मात्र मूल्य २) सजिल्द २॥) डाकखर्च १) अलग

५ प्रतियां एक साथ मंगाने पर आधा डाकखर्च माफ

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क देहली।

श्रावणी पर्व पर विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट प्रचारार्थ मंगावें

मूल्य -) प्रति, ४) सैकड़ा

मनुष्य बन
गायत्री माता
ईश्वर सिद्धि
आस्तिक ना० सम्वाद
पितृश्राद्ध विचार
सुख का साधन
ईश्वरोपासना
कल्याणी बन
आर्यों का आदि देश
धर्म और अधर्म
स्वामी श्रद्धानन्द
तत्त्ववेत्ता दयानन्द
पण्डित लेखराम
सीता माता
गो माता
दयानन्द दिग्विजय
चोटी का महत्त्व
गुरु विरजानन्द
मांस खाना छोड़ दो
मर्यादा पुरुषोत्तम राम
देश सुधार-होली
मूर्ति पूजा विचार
भक्ति के लाभ
आर्यसमाज के उद्देश्य
वेद माता
श्रद्धा माता
धरती माता
धर्म की रक्षा करो

२९ वैदिक सन्ध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ. स. उन्नति के साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी
३९ वैदिक काल में बन्दूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाइयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्णव्यवस्था
५० कर्मव्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ. स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य

५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वंतः स्वयमार्यम्
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर सब जगह है
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों
७३ चरित्र निर्माण
७४ यज्ञोपवीत महत्व
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण
७६ नास्तिकों को सन्देश
७७ वैदिक धर्म ही क्यों
७८ विद्यार्थी और सदाचार
७९ दयानन्द की महानता
८० आर्य क्यों बने ?
८१ श्राद्धमीमांसा

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह ४।।)
बाल्मीकि रामायण (शुद्ध संस्करण) १२)
उपनिषदार्य्य भाष्य (आठ उपनिषदें) ६)
वृहदारण्यक उपनिषद कथा माला ३)
ओंकार निर्णय १।।)
सृष्टि का इतिहास २)
वैदिक प्रार्थना १।।)
वैदिक सिद्धान्तों पर बहनों की बातें १।)
कर्तव्य दर्पण १)
आर्य समाज क्या है ? ।।।)
वैदिक सन्ध्या रहस्य ।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य ।=)
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध ५)
दयानन्द चित्रावली २।।)
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या ।।)
नास्तिकवाद ।।)
आर्य सिद्धान्त दीप १।)
विवाह और विवाहित जीवन २।।)
ब्रह्मचर्य जीवन-वीर्य नाश मृत्यु ।=)
वैदिक गृहस्थाश्रम ५)
ऋषि गाथा महाकाव्य ४)
संस्कार विधि विमर्श ३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग ३)
तत्त्वज्ञान ३)
प्रभु दर्शन २।।)
प्रभु भक्ति १।।)
आनन्द गायत्री कथा ।।≡)।
एक ही रास्ता ।।।-)
सत्यनारायण व्रत कथा ।।=)
भगवान शंकर और दयानन्द ।।)
मानव जीवन गाथा वा जीवन गीत १)
भक्त और भगवान १)

स्वाध्याय संग्रह (स्वामी वेदानन्द) २)
वेद परिचय " ।=
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र) २
आर्य समाज का इतिहास १।=
आर्षयोग प्रदीपिका ३।।
घर गृहस्थी ३।।
गीत श्रद्धांजलि (भजन) १
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक १)
आदर्श सुधारक दयानन्द ।।=
गृहस्थाश्रम (दयानन्द) ।।=
बाल शिक्षक " ।=
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान ।
स्वामी दयानन्द और वेद ।
वैदिक धर्म शिक्षा ≡
आर्य सत्संग गुटका ।-
विश्व विज्ञान परमात्मा बोध ≡
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त) ।।
मांस मदिरा का निषेध ≡
गायत्री व्याख्या ।
गीता वचनामृत . ।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य ।।
स्वास्थ्य विज्ञान ।-

चित्र   चित्र   चि

महर्षि दयानन्द २०×३० -
गुरु विरजानन्द "
स्वामी श्रद्धानन्द "
पण्डित लेखराम "
महात्मा हंसराज "
सचित्र जीवन घटना ।।
महर्षि दयानन्द की महत्ता ।।
मोटोज साइज १४×२२ मूल्य प्रत्येक ।-
सन्ध्या मन्त्र, प्रार्थनामन्त्र, संगठन सूक्त,
यम नियम व्याख्या
मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक
सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद
प्रथम मन्त्र, दीर्घ जीवन की प्रार्थ
सत्यवेद धर्म चर ।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली ।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, में छपवाया ।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

★ वेदप्रकाश के विशेषांक ★

गुरुदत्त लेखावलि

का आर्य जगत् ने हृदय से स्वागत किया। सभी ने इसकी आवश्यकता अनुभव की।

इस गुरुदत्त लेखावलि में उस महान् विद्वान् के अंग्रेजी लेखों का अनुवाद है जिनका लोहा पाश्चात्य जगत भी मानता है।

विशेष महत्व की बात यह है कि इसके कुछ लेखों को इंगलैण्ड की आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में वर्षों तक पढ़ाया जाता रहा।

पं० गुरुदत्त जी पहले नास्तिक थे पर महर्षि दयानन्द की मृत्यु घटना ने उन्हें आस्तिक बना दिया था।

उनके निम्न अंग्रेजी लेखों का अनुवाद आर्य समाज के महान् विद्वान् श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर ने तथा श्री पं० सन्तराम जी बी० ए० ने किया है। जीवन चरित्र, वैदिक संज्ञाविज्ञान, जीवात्मा के अस्तित्व के प्रमाण, वायु मण्डल, जल की रचना, गृहस्थ, आध्यात्मिक जीवन के तत्व, धन की डाह।

यदि आपने अभी तक विशेषांक प्राप्त नहीं किया है तो शीघ्रता कीजिये थोड़ी ही कापियां शेष हैं। आज ही ३) का मनीआर्डर करके विशेषांक मंगा लीजिये।

कवर के दूसरे और तीसरे पृष्ठ पर विशेषांक सम्बन्धी कुछ सम्मतियां दी जा रही हैं।

गुरुदत्त लेखावली—वेदप्रकाश का विशेषाङ्क

श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० की सम्मति

श्री गोविन्दराम हासानन्द जी के सुपुत्र श्री विजय का पत्र तथा वेदप्रकाश का "गुरुदत्त लेखावली" नामक विशेषांक प्राप्त हुआ। देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। श्री गोविन्दराम जी उन गिने चुने आर्य्य पुरुषों में से थे जिन्होंने आर्य समाज के साहित्य-प्रकाशन को अपने जीवन में उच्चतम स्थान दिया। और श्री विजय जी उन गिने चुने आर्य्य युवकों में हैं जो अपने सुयोग्य पिता के कार्य को आगे बढ़ाना चाहते हैं, ईश्वर उनकी रक्षा करे। आर्य समाज यों तो कभी श्रद्धालु और कर्तव्य-परायण लोगों से खाली नहीं रहा। समय समय पर महत्वपूर्ण विभूतियां आती रहीं और ऋषि के काम को आगे बढ़ाती रहीं। परन्तु ऐसे विरले ही होंगे जिसके पश्चात् उनकी सन्तान ने अपने पिता की सन्तति को आगे बढ़ाकर 'सन्तान' शब्द को सार्थक किया हो।

अन्य महत्वपूर्ण कार्यों में से श्री गोविन्दराम जी का एक मुख्य काम यह भी था कि आर्य समाज के पुराने नेताओं की कृतियां विस्मृत न होने पावें। उन्होंने इसी उद्देश्य से पं० लेखराम जी की कुछ कृतियों का अनुवाद प्रकाशित किया था। 'गुरुदत्त लेखावली' भी उसी प्रकार का एक प्रशंसनीय प्रयास है। ६२ वर्ष पूर्व जब मैं आर्य समाज में प्रविष्ट हुआ था उस समय शायद ही कोई शिक्षित आर्य समाजी होगा जिसके पास अंगरेजी में पं० गुरुदत्त के वर्क्स (Pt. Gurudattas works) न हों। जो आजकल अनुभवी और उच्च कोटि के लेखक समझे जाते हैं, उस समय वे लोग पं० गुरुदत्त विद्यार्थी से ही प्रेरणा प्राप्त किया करते थे। 'विद्यार्थी' नाम उन्होंने ठीक ही चुना था। वह विद्यार्थी ही थे और २६ वर्ष की अल्पावस्था में यहां से चले गये। मेरी आयु आज उनकी आयु के तिगुने से अधिक है। परन्तु वह इस अल्पायु में कितना कार्य कर गये यदि वे जीवित रहते तो कितना महत्वपूर्ण कार्य कर गये होते इसका हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं। उन के समय में अंगरेजी का विशेष महत्व था और इसी महत्त्वपूर्ण माध्यम से उन्होंने ऋषि दयानन्द के सन्देश को उच्च वर्ग तक पहुंचाने का प्रयास किया। वह कोई बड़ा ग्रन्थ न लिख पाये। उन के जो लेख पत्रों में प्रकाशित हुए वह एक 'सांचा' (Model) मात्र हैं। 'सांचा' बनाते बनाते ही चल बसे। इस सांचे में वह क्या ढालना चाहते थे यह एक कल्पना का विषय है। परन्तु हमारे लिये 'सांचा' भी एक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी वस्तु है।

अनुवाद पाण्डित्यपूर्ण परन्तु क्लिष्ट है। परन्तु इसका मैं प्रमाण नहीं हूं। मैंने मूल लेख पढ़े थे। इस को ठीक ठीक तो वही बता सकेंगे जो इस लेखावली को सीधा पढ़ेंगे।

श्री विजय जी को बधाई। श्री मुनिवर गुरुदत्त जी को हम भूल से गये थे। इन्होंने उन की पुण्य स्मृति को जगा दिया। —गंगाप्रसाद उपाध्याय

शेष सम्मतियां कवर के तीसरे पृष्ठ पर देखें।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष—९ : आश्विन २०१७ वि० अक्तूबर १९६० : वार्षिक ३)

अंक—३ : दयानन्दाब्द १३६ आश्विन १८८२ : विदेशों से ६ शिलिंग

अदानी का घर घर नहीं है

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥

- ऋ० १० । ११७ । ४ ॥

(यः पित्वः सचमानाय) जो अन्न चाहने वाले (सचाभुवे सख्ये) सहकारी मित्र को (न ददाति) नहीं देता है, (स सखा न) वह मित्र नहीं । (अस्मात् अप+प्रेयात्) इससे दूर चला जाए । क्योंकि (तत् ओकः न अस्ति) वह घर नहीं है । (अन्यम् अरणम्) दूसरे सरलता से आश्रय देने वाले, अथवा असम्बन्धी (पृणन्तम् चित् इच्छेत्) दाता को ही चाहे ।

जो मनुष्य गरीब पड़ौसी को दान नहीं देता, उसका घर घर नहीं हैं । घर तो वही है, जहां हर समय भीड़ लगी रहे । जो आए, यथायोग्य सत्कार पाये । ऋषिवर ने मानों इस मन्त्र को सामने रख कर आदेश किया है—

"अन्न जल का दान कोई भी भूखा प्यासा मिले, उसे दे देना चाहिए । ऐसा दान पहले अपने दीन दुःखी पड़ौसी को देना चाहिए । पास के रहने वाले का दारिद्रय दूर करने में सच्ची अनुकम्पा और उदारता को अवकाश मिलता है । इससे वाह-वाह नहीं मिलती, इसलिए अभिमान को भी अवकाश नहीं मिलता समीपस्थ दुःखी को देख कर और पीड़ित को अवलोकन करके ही दया, अनुकम्पा और सहानुभूति आदि हार्दिक भाव प्रकट होते हैं । जो समीपवर्ती दीन दुखिया जन पर तो दया आदि भावों को नहीं दिखलाता किन्तु दूरस्थ मनुष्यों के लिए उनका प्रकाश करता है, उसे दयावान्, अनुकम्पा कर्त्ता और सहानुभूति प्रकाशक नहीं कह सकते । ऐसे मनुष्यों का दान बाहर का दिखावा और ऊपर का आडम्बर है । दान आदि वृत्तियों का विकास दीपक की ज्योति की भान्ति समीप से दूर तक फैलना उचित है ।"

इस वैदिक और आर्ष उपदेश के अनुसार मनुष्य को सदा दीन दरिद्र पड़ौसियों की अन्न वस्त्र आदि से सहायता करनी चाहिए ।

महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टङ्कारा

का नया महत्त्वपूर्ण कार्य

ग वे ष णा

त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन

यह महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा के अनुसन्धान-विभाग की मुख पत्रिका होगी। इस में टंकारा के अनुसन्धान–विभाग में कार्य करने वाले विद्वानों के गवेषणा कार्य का प्रकाशन होगा और एक मात्र गवेषणा में तल्लीन अन्य विद्वान महानुभावों के वर्षों के स्वाध्याय रूप महातप से सम्पन्न उच्च कोटि के गवेषणात्मक लेख छपेंगे। साथ ही इस पत्रिका मे वैदिक वांगमय के अभी तक अप्रकाशित अथवा दुष्प्राप्य लघु ग्रन्थों का भी यथा सम्भव प्रकाशन होगा।

वेद, वैदिक वांगमय, वैदिक संस्कृत और भारतीय इतिहास आदि पर किए गए अक्षेपों के निराकरण द्वारा उनका वास्तविक रूप में प्रतिनिधित्व करने वाली अपने ढंग की एक मात्र निराली पत्रिका होगी।

अनुसन्धान क्षेत्र में होने वाली नई नई गवेषणाओं के आदानप्रदान द्वारा यह पत्रिका सभी प्रकार की स्वाध्यायशील जनता और विद्वानों को लाभ पहुँचाए इस दृष्टि से इसमें हिन्दी संस्कृत और अंग्रेजी तीनों भाषाओं के लेख यथा सम्भव प्रकाशित होगें।

इस पत्रिका के प्रत्येक अंक में मौलिक गवेषणात्मक ज्ञानप्रद लेखों से युक्त लगभग ६४ पृष्ठ रहा करेंगे (५०० ग्राहक हो जाने पर पृष्ठ संख्या बढ़ा दी जायेगी। छपाई और कागज श्रेष्ठतम होगा। इस पर भी मूल्य केवल ५) रु० वार्षिक होगा।

पत्रिका का प्रथम अंक लगभग १०० पृष्ठ का आगामी शिवरात्रि के पवित्र ऋषिबोधोत्सव पर् प्रकाशित होगा।

विशेष सुविधा–जो महानुभाव पहले से ही ग्राहक बन जायेंगे उनसे वार्षिक शुल्क ५) रु० के स्थान पर केवल ४) रु० लिया जाएगा। यह सुविधा सीमित संख्या के लिए होगी। अतः शीघ्र ग्राहक बनने का यत्न करें।

निवेदक—मन्त्री, महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा

आत्माराम पथ बड़ौदा।

'संध्या' के मंत्रों का क्रम-सौन्दर्य

[लेखक—प्रि० नित्यानन्द पटेल, एम० ए०]

नवधा-भक्ति का नया रूप

'शांडिल्य-सूत्र' में भक्ति का लक्षण निम्न प्रकार से किया गया है—

'सा (भक्तिः) परानुरक्ति-रीश्वरे'

ईश्वर के प्रति परानु रक्ति अर्थात् निरतिशय प्रेम का नाम भक्ति है। महर्षि व्यास के अनुसार भक्ति नौ प्रकार की है—

"श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम् अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम् ॥"

(भागवत पुराण ७-५-२३)

भक्ति लोकहितकारिणी शक्ति है। मनुष्य की सम्पूर्ण रागात्मक वृत्तियों को विशुद्ध करने का यह एक मात्र साधन है। आनन्द अनुभव करते हुए, धर्म में प्रवृत्त होने का यह सुगम मार्ग है। इस लिए भक्ति-तत्त्व का, नये-नये शब्दों में, नये-नये ढंग से, जितना निरूपण किया जा सके, वह सर्व-सामान्य के लिए परम उपयोगी है। महर्षि व्यास ने श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि जिन नौ बातों को भक्ति में सम्मिलित किया है, उससे भक्ति-तत्त्व के समझने में अवश्य सुविधा होती है।

सैकड़ों वर्ष बीत गए। विचारों में क्रान्ति हुई। परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ। जीवन-पद्धति बदल गई। इस सब उलटफेर का अवलोकन करते हुए, महर्षि दयानन्द ने भक्ति-तत्त्व का, अधिक व्यापक और विस्पष्ट शब्दों में, निरूपण करना आवश्यक समझा। आज के तर्क-प्रधान और बुद्धिजीवी लोग जिस भाषा को समझते हैं उसी भाषा में, उन्होंने भक्ति के नौ अंग बताने का प्रयत्न किया है।

महर्षि की दृष्टि में, भक्ति कोई ऐसा कर्म नहीं है जिसे मन्दिरों में जा कर कुछ घड़ी के लिए किया जाय। भक्ति को उन्होंने जीवन के सम्पूर्ण व्यवहार के साथ गूँथ देने का प्रयत्न किया है। मानव-जीवन के सर्वांगीण विकास का ध्यान रखते हुए, महर्षि ने विशेष ढंग की भक्ति-पद्धति प्रारम्भ की है। इसके नौ अंग हैं। इनके सहारे क्रमिक

उन्नति करता हुआ मनुष्य, अवश्य देव-तुल्य हो सकता है।

महर्षि प्रतिपादित भक्ति-पद्धति की यही विशिष्टता है कि यह मानव-जीवन के सम्पूर्ण कार्यक्रम को हमारे सम्मुख उपस्थित करती है। इसमें एक प्रकार की सुन्दर योजना है। योजना-बद्ध प्रगति से मनोरथ शीघ्र और सम्पूर्ण रूप से सफल होता है, यह तो बिल्कुल स्पष्ट ही है।

महर्षि दयानन्द की भक्ति-पद्धति को 'संध्या' में देखा जा सकता है। 'संध्या' कोई नवीन वस्तु नहीं है। रामायण में, राम और सीता-माता के 'संध्या' करने का, महर्षि बालमीकि ने कई स्थलों पर प्रेम-पूर्वक निर्देश किया है। महर्षि दयानन्द ने उसी 'संध्या' को पुनरुज्जीवित किया है।

'संध्या' के लिए जिन मन्त्रों को चुना गया है, और उन्हें जिस सुन्दर क्रम से रखा गया है, उससे महर्षि की प्रज्ञा और प्रतिभा का ख्याल आये बिना रहता ही नहीं। जीवन के प्रति महर्षि की कैसी विशाल दृष्टि थी, तथा परब्रह्म के ध्यान अथवा प्रार्थना उपासना का वे क्या अर्थ समझते थे, यह सब संध्या के मन्त्रों में गुंथे भावों के समझने से स्पष्ट होता है।

शिखा-बन्धन—

सब से प्रथम गायत्री-मन्त्र से शिखाबन्धन है। शिखाबन्धन का अभिप्राय सिर के अन्दर बिखरी हुई शक्तियों या वृत्तियों का बन्धन व एकत्रीकरण है। बाह्य शिखा का बन्धन तो अलंकारमात्र है। बिखरी वृत्तियों के एकत्रीकरण का अर्थ यही है कि संध्याकर्म में सम्पूर्ण मन से प्रवृत्त होना चाहिए। ढीले ढाले मन से जो काम किया जाता है, उसमें कभी शक्ति नहीं आती। कर्म का रूपांतर कर उसे दिव्य बना देने वाली श्रद्धा है। यही प्रथम आवश्यक है।

१. आचमनमन्त्रः-शान्ति कामनाः-

मुख्य संध्या का प्रारम्भ 'शन्नो देवीः' इस आचमन-मन्त्र से होता है। इस मंत्र से साधक अपना मन शांत करने का प्रयत्न करता है। चंचलता उत्पन्न करने वाली, ईर्ष्या, द्वेष, भय, क्रोध आदि की सब वृत्तियों को, दृढ़ संकल्प और श्रद्धा से दूर करना चाहिए। प्रभु की गोद में बैठे को चिन्ता क्या? भीति क्या?

शीतल जल का आचमन शांति की प्रार्थना को जीवित रूप देने के लिए ही है।

२. अङ्गस्पर्शमन्त्राः-यशोवलम् :—

चित्त के शांत होने पर अंगस्पर्श के मंत्रों से अपने अंगों का निरीक्षण करना है। परीक्षा यही करनी है कि कोई अंग दुर्बल तो नहीं हो रहा, अथवा कोई अंग, खराब कर्म में प्रवृत होने के कारण, अपयश का भागी तो नहीं हो रहा।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' निर्बल व्यक्ति परमात्मा की सच्ची उपासना नहीं कर सकता। जनता-जनार्दन की सेवा में अंगों का उपयोग, उन्हें यशस्वी बनाने में समर्थ है।

३. मार्जनमंत्राः-पवित्रता-सम्पादनः—

आत्म-निरीक्षण के पीछे मार्जन मंत्रों से परमात्मा के सत्य, सुखप्रदता, महानता, तप आदि गुणों का स्मरण करना है और उन का शरीर के विभिन्न अंगों में आधान करना है। परमेश्वर के गुणों का विशेष आधान ही पवित्रता है।

४. प्राणायाममन्त्राः—

मार्जन की पूर्णता के लिए प्राणायाम है। विभिन्न अंगों में परमेश्वर के गुणों की जड़ पूर्णतः जमी नहीं। तब प्राण याम मंत्र से, प्राणायाम द्वारा मन को शान्त तथा शक्तिपूर्ण बनाकर, इन्द्रियों के दोषों को दूर करने और परमेश्वर के गुणों का आधान करने का फिर से प्रयत्न है। पंचशिखाचार्य का कथन है :—

तपो न परं प्राणायामात्,
ततो विशुद्धिर्मलानां, दीप्तिश्च-ज्ञानस्य।

यहाँ तक तो कृत पापों के संस्कार की निवृत्ति का यत्न हुआ।

५. अघमर्षणमन्त्राः-पाप-उन्मूलनः—

अघमर्षण मन्त्रों से अब अनागत पापों की वृत्ति के दलन का प्रयत्न है। इन मन्त्रों में, सृष्टि तथा प्रलय के वर्णन द्वारा, परमेश्वर की सृजन और संहार की अलौकिक शक्ति का साक्षात्कार कराया गया है। महत्त्व का प्रत्यक्ष दर्शन, सब अहंकार और अवसाद को क्षणभर मे गला देता है। सब पापों की जड़ अहंकार और अवसाद ही है। जड़ ही न रही तो पाप कैसे फलेगा फूलेगा ? पाप का पूर्ण दलन ही प्रभु-पूजा की प्रस्तावना है।

अन्तःकरण की पवित्रता, परब्रह्म की प्राप्ति का साधन साधन है। इसीलिए सन्ध्या के प्रारम्भ में चित्तशुद्धि का इतना आग्रह है।

६. मनसापरिक्रमामन्त्राः—

साधक अब पवित्र मन से, मनसा-परिक्रमा के मंत्रों द्वारा, छः व्रतों को धारण करता है। जीवन के सर्वांगीण विकास अथवा श्रेय-साधना के लिए, जिन दिशाओं में प्रगति करनी है उनका संकेत इन मन्त्रों में है।

प्राची दिक्—उन्नति की ओर:—

सब से प्रथम आगे बढ़ने की महत्वाकांक्षा है। भगवान की दी हुई ज्ञान विज्ञान की शक्तियों का समुचित विकास कर, उस के हाथ का योग्य निमित्त बनने का संकल्प है।

दक्षिणा दिक्—ऐश्वर्य प्राप्तिः—

आगे बढ़ने की अभीप्सा और तदनुकूल पुरुषार्थ से अनेक प्रकार का ऐश्वर्य, सामर्थ्य और समृद्धि प्राप्त होती है। साधना ही ऋद्धि-सिद्धि का द्वार है।

प्रतीची दिक्—वैराग्यवृत्तिः—

सुखोपभोग के सब साधन उपलब्ध होने पर भी व्यसनों से दूर रहने से ही, आत्मा शक्तिशाली और परमेश्वर के तेज को ग्रहण करने योग्य बनती है। व्यसनों से दूर रहने और प्रभु-कृपा से प्राप्त सुख-समृद्धि का, पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए, वितरण करने का नाम ही विरक्ति है।

उदीची दिक्-शान्तिप्राप्तिः—

इस विरक्ति से सच्ची शांति का आनन्द आत्मा में समाने लगता है। दीन-दुखियों के दुःख निवारण करने के लिए, अपने सुख और ऐश्वर्य के त्याग में ही असली शांति है। भगवान् कृष्ण के शब्दों में—

"त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्"

ध्रुवा दिक्—स्थिरता:—

शान्ति के आनन्द की उपलब्धि से श्रेय-प्राप्ति के कठिन मार्ग में श्रद्धा दृढ़ होने लगती है। ऊंची से ऊंची चढ़ाइयों पर चढ़ने का उत्साह उत्पन्न होता है।

ऊर्ध्वा दिक्—उन्नति के शिखर पर:—

साधक स्थिरता से क्या सम्पादन नहीं कर सकता है? निष्ठा सब निराशाओं को जीतने वाली और सब आघातों को सहन करने वाली है। परिणाम स्वरूप सब विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ साधक अब उन्नति के शिखर पर पहुंचता है।

७. उपस्थानमन्त्राः—

पृथ्वी की पीठ से उठकर साधक पहाड़ की उच्चतम चोटी पर पहुंचा है। वह अब परमेश्वर

के उप+स्थान—समीप बैठा है। वह प्यासी आँखों से भगवान् के अलौकिक रूप और ऐश्वर्य का पान कर रहा है। इस रूप-सुधा के पान से साधक के हृदय में आनन्द की कैसी उमंगें उठ रही हैं, तथा वाणी से कैसे पावन उद्गार फूट पड़ रहे हैं, यह उपस्थान के मन्त्रों में देखा जा सकता है। **प्रियतम के पास:**— उन्नति के शिखर पर पहुंच कर साधक 'देवग्रादेवं' देवाधिदेव की समीपता का उल्लास अनुभव करता है।

मधुर झाँकी:—सुनहली किरणें साधक के गात्र का अब स्पर्श करने लगीं। उसके सौंदर्य, सामर्थ्य, ज्ञान और प्रेम की ओर संकेत करने वाली झण्डियाँ—'केतव:'-पकड़ते हुए साधक प्रभु के व्योमचुम्बी राज-महल में पहुँचा है। आँखें चार हो रही हैं, स्नेहाश्रु उमड़ रहे हैं।

साक्षात् दर्शन.—आँखमिचौनी हो ली। विराट् अब अपना रूप अनावृत्त कर रहे हैं। पलकों में उनकी मधुर ज्योति समा रही है, जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी उससे आपूर्ण नज़र आ रही है। जो देखा है, वह 'चित्रम्' है।

मिलनः—उपासक 'देवहितं' के चरणारविन्दों को, अपनी छाती से लिपटा लिए लेता है। उसे अमूल्य निधि मिल गई। वह अब सर्वथा 'अदीन' है, क्योंकि हृदय में अनिर्वचनीय आनन्द लहरा रहा है।

८. गुरुमन्त्रः—स्वरूप-धारणः— उपस्थान के पीछे, उपासक गायत्री-मंत्र द्वारा सवितादेव की रूप-सुधा का पान कर रहा है। इससे वह नवजीवन प्राप्त कर रहा है। वह अमृत बन रहा है। सम्पूर्ण-रूप से उसका रूपान्तर हो रहा है। ब्रह्मसदृश वह भी ज्ञानमय, प्रेममय, दयामय और धर्ममय हो रहा है। वह अब अल्प नहीं 'भूमा' है। उसके आनन्द की कोई अवधि नहीं।

९. समर्पण मन्त्रः—समर्पण

अंत में 'नमस्कार मंत्र' द्वारा भक्त अपनी सब ऋद्धि-सिद्धि का भगवान शंकर के चरणों में नम्र-भाव से अर्पण करता है। विश्व के कल्याण के लिए जीवन सौंपने के निश्चय का नाम ही नमन है। इस **नमन से पूजा की पूर्णता होती है।**

भूतल पर पदार्पण किए मनुष्य के पूर्ण विकास के लिए, आवश्यक कर्तव्य-कर्मों की यह कैसी सुसंगत तालिका है! पृथ्वी पर रींगते मनुष्य को परम-पद तक पहुँचाने के लिए यह कैसी अपूर्व सीढ़ी है!! मानव को देव बनाना, यही इसका उद्देश्य है। यह कहा जा सकता है कि पुराणों में प्रतिपादित मानव-जीवन का यही परमोद्देश्य है। नवधाभक्ति का यह नवीन संस्करण है।

'संध्या' के इन नौ अंगों में गुँथे हुए विचारों का चिन्तन, मनन और उन्हें जीवन में ढालने के निरन्तर प्रयत्न का नाम ही परब्रह्म का ध्यान, भक्ति अथवा उपासना है।

❀ ❀ ❀

विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट प्रचारार्थ मंगावें

मूल्य -) प्रति ४) सैकड़ा,

१ मनुष्य वन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० सम्वाद
५ पितृश्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७. ईश्वरोपासना
८ कल्याणी वन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ वैदिक सन्ध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ. स. उन्नति के साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी
३९ वैदिक काल में वन्दूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाइयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्णव्यवस्था
५० कर्मव्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ. स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्रा
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त
६२ जीवन की समस्या का समाधान
६३ देवताओं की कहा
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वंतः स्वयमार्यम्
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर सब जगह है
७२ ईश्वर में अविश्वास
७३ चरित्र निर्माण
७४ यज्ञोपवीत महत्व
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रह
७६ नास्तिकों को सन्देश
७७ वैदिक धर्म ही क्यों
७८ विद्यार्थी और सदा
७९ दयानन्द की महा
८० आर्य क्यों बने ?
८१ श्राद्धमीमांसा

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

आस्तिकता का सच्चा स्वरूप

[ले०—व्याख्यान वाचस्पति पं० बिहारीलाल जी शास्त्री]

नास्तिकता हृदय को. शून्य बनाती है पर भ्रान्त आस्तिकता हृदय धूल में धुआँ कूड़ा करकट भर देती है। शून्य हृदय पर सुचित्र बनाये जा सकते हैं। पर कूड़ा करकट से भरे घर में नहीं।

सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में ऋषि ने लिखा है—

"ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते करते कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा कि हे परमेश्वर! आप हम को रोटी बना कर खिलाइये, मेरे मकान में झाड़ू लगाइये। वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये। इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते हैं वे "महामूर्ख" हैं। क्यों कि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी नहीं पावेगा।"

आज हमारे देश में ऐसी ही आस्तिकता फैली हुई है। परमेश्वर को होटल का 'बैरा' समझ रखा है। आर्डर पर आर्डर भक्तों की ओर से दिये जाते हैं। और एक भी 'आर्डर' पूरा न हुआ तो नास्तिकता की धमकी तैयार है।

इस अज्ञान पूर्ण आस्तिकता से नास्तिकता को फलने फूलने का अवसर मिलता है। यदि सर्व साधारण जनता की यह बात हो तो चिन्तनीय नहीं। कीर्तनों के उत्सवों में ऐसी आस्तिकता के समर्थन में विद्वानों को व्याख्यान झाड़ते हुए हम ने देखा है। गबड़-हुन्द पूर्ण सभाओं में नेता "राम धुन" कराते देखे गये हैं। जिनके अतुल वैभव ने महमूद को प्रलोभन देकर भारत की लूट करने को प्रोत्साहित किया "वे सोमनाथ जी" फिर जाग उठे। जिन बौद्धों की अकर्मण्यता और अराष्ट्रीयता से विदेशियों के लिये भारत का द्वार खुला, जिन्होंने मकरान और सिन्ध में ब्राह्मणों से चिढ़ कर मुसलमानों का राज्य स्थापित करवाया वे भी फिर बुलबुलाने लगे। ये लक्षण भारत के लिए अच्छे नहीं।

देश में इस समय एक ओर तो भयंकर नास्तिकता (कम्युनिज्म) का प्रसार हो रहा है और दूसरी ओर तर्कहीन अदर्शनिक कोरी हड़बोंग आस्तिकता प्रदर्शन कीर्तनों सारिपुत्र मौदगलायन की अस्थियों के जुलूसों द्वारा हो रहा है। ऐसी भ्रान्त आस्तिकता तर्कतीरों के सामने टिक नहीं सकेगी।

महात्मा गांधी का प्यार। कीर्तन और लक्ष्मी नारायण के मन्दिर आस्तिकता को दृढ़ नहीं रख सकते। पर हिन्दू जनता आज तन मन धन से ऐसी ही आस्तिकता के प्रसार में मग्न हैं। तर्क संगत वैदिक आस्तिकता सिर धुन कर पछता रही है। आज का आर्यसमाजी भी भटक गया है। वह थोथी आस्तिकता के प्रदर्शनों से चौंधियां गया है। कभी कीर्तन में जा बैठता है। कभी आगरे के दयालबाग में आध्यात्मिकता की खोज करने को जाता है तो कभी दूकानदार योगियों के चक्कर में पड़ जाता है। एक आर्य समाजी विद्वान् की कविता देखिये—

योगीराज अरविन्द देवकी,
माता जी की शक्ति मिले।
कभी नहीं जो विचलित होवे,
ऐसी मुझको भक्ति मिले।
("मां" फरवरी १९५० कलकत्ता)

यह हैं हमारे आर्य नेता जो फ्रैंचलेडा से शक्ति मांग रहे हैं। भूल गये "बलमसि बलंमयिधेहि" इस वेद मन्त्र को।

ढोंग सुन्दर और आकर्षक होता है। अतः निर्बल हृदय विद्वानों का भी उधर को खिंच जाना आश्चर्यजनक नहीं। पर इससे कुछ कल्याण हो सकेगा, यह दुराशामात्र है। चूने को दही समझ कर खा लेने पर मुंह फटेगा। अन्धविश्वास का फल अकल्याण ही है।

उपासना तब ही फलप्रद हो सकती है जब कि उपास्यदेव के गुणकर्म स्वभाव समझ लिए जाएं और उसकी समीपता का उपाय सही सही किया जाय। ईश्वर पवित्र है। उस पर कोई दबाव नहीं पड़ सकता। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।

अतः उसकी समीपता प्राप्त करने वाले को गुण कर्म स्वभाव से पवित्र होना चाहिये।

उपनिषद् कहती है—

नाविरतो दुश्चरितान्ना शान्तो ना समाहितः—दुश्चरित्र से बिना हटे, शान्त न होते हुये, चित्त को बिना एकाग्र किये प्रभु की प्राप्ति नहीं हो सकती। भक्त के वश में है 'भगवान' इन भावनात्मक भजनों पर विश्वास कर खुशामद से उसे वश में लाने की आशा करना बालू से तेल निकालना है। ऐसी भावना से मनुष्य बहुत प्रवंचित बना है। "द्रोपदी की लाज काज द्वारिका से धाये थे" "खम्भ फारि प्रहलाद बचाओ" आदि गीत निरे ओस के मोती हैं। सहस्रों द्रोपदियों की लाज लुट गयी। सैंकड़ों प्रहलाद तलवार के घाट उतार दिये गये पर वह न आये। राजनीति में बुद्धि, और

पुरुषार्थ शून्य जाति की देवियां सदा अपमानित हुआ करती हैं। प्रतिकार की शक्ति से हीन जाति के बच्चे निर्दयता से कत्ल किये ही जाया करते हैं। ऋषि ने स्पष्ट कह दिया—

"पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है।"

गीता में भी कहा है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन जहाँ है, वहाँ लक्ष्मी, विजय और सम्पत्ति निश्चित नीति रहती है। यहाँ अर्जुन का विशेषण 'धनुर्धर' पुरुषार्थ और पुरुषार्थ के साधनों का व्यंजक है। श्री कृष्ण का विशेषण 'योगेश्वर' आध्यात्मिकता की ओर संकेत कर रहा है। निरा पुरुषार्थ अनर्थ कराने वाला भी हो सकता है। कोरा योग क्रूर शत्रुओं से नहीं बचा सकता। अहिंसा और आध्यात्मिकता का प्रभाव उन्हीं हृदयों पर पड़ता है जिनमें कुछ शुभ भावना और ऋजुता शेष हो। पाषाण हृदय तमसावृत राक्षसों पर तो तीखे बाण ही प्रभाव डाला करते हैं। आर्य ऋषियों ने इस तथ्य को भली प्रकार अनुभव किया था। अतः शस्त्र के महत्व से उनके उपदेश भरे पड़े हैं। यदि आध्यात्मिकता वीरता से हीन है तो प्राण रहित है। आध्यात्मिकता विहीन वीरता कोरी बर्बरता है। अतः योगेश्वर और धनुर्धर एक दूसरे के पूरक हैं। प्रार्थना और पुरुषार्थ दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। आर्य जाति जब से इस रहस्य को भूली तब से ही निष्कर्मण्य, पराजित और पराधीन बनती रही।

आजकल कीर्तनों की धूम है। सैकड़ों घण्टे और सहस्रों रुपया इसमें बरबाद होता है। जाति में निष्कर्मण्यता बढ़ती है। यही दशा मन्दिरों के पुनर्निर्माण से है। चाहे वे मन्दिर सोमनाथ के हों, चाहे सारिपुत्र के। जाति के अंध-विश्वासों में धकेलने के अतिरिक्त यह कोई फल नहीं दे सकते। पहले भी इन ही कामों से जाति की बर-बादी हुई थी और भविष्य में फिर खतरा सामने है। संस्कृति के नाम पर मिथ्या विश्वासों और कुरी-तियों का पोषण जाति को विनाश की ओर ही ले जायगा। ऋषि दयानन्द ने इस कटु सत्य को निर्भय और निःसंकोच होकर कहा। आज उनके अनुयायी झिझकते हैं। यह दुःख की बात है। विनोबाभावे अपने "गीता प्रवचन" नामक पुस्तक में मूर्तिपूजा का महत्व प्रति-पादन करके लाखों मनुष्यों को अविद्या के भवंर में डाल रहे हैं।

रामधुन कराकर जाति को वेद पाठ से दूर लिए जा रहे हैं। अरविन्दाश्रम की फ्रेंच महिला के युगल-चरणों के चित्र का आर्य युवक युवतियां घरों में पूजन और ध्यान कर रहे हैं। आस्तिकता का उपहास, मिथ्या विश्वास कर रहे हैं, और शास्त्र-कानून केसरी आर्य समाज चुपचाप है। दर्शनानन्दी सिंह गर्जना इसने बन्द कर रक्खी है।

आर्यसमाज नास्तिक सम्प्रदाय नहीं है। उपासना और कर्मकांड का विश्वासी है। परन्तु अन्ध-विश्वास और उपासना के मिथ्याचार आर्यसमाज सहन नहीं कर सकता। उपासना है—ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना। ईश्वर से देशज और कालज दूरी नहीं है। केवल अज्ञानजन्य दूरी है। अतः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा को जान कर चित्त की वृत्तियों को अन्तर्मुखी करना, वृत्तियों को आचार विचार द्वारा शिवसंकल्पी बनाना उपासना है। प्रार्थना से भी ईश्वर पर प्रभाव नहीं डाला जा सकता। अखिल भुवनपति भगवान् पर जीव विचारा क्या प्रभाव डाल सकता है। ईसाइयों और भक्तिवादी हिन्दू सम्प्रदायों ने ईश्वर में भी भावुक आशुतोष राजाओं की सी कल्पना कर रक्खी है गिड़गिड़ाने और पीछे पड़ जाने से जैसे संसारी राजा क्षमा कर कर देते हैं। इसी प्रकार गिड़गिड़ाओ, अपने को महा अपराधी कहो, तो ईश्वर पिघल जायेगा यह है इन लोगों की धारणा। इसलिए "पापोऽहं पापकर्माहम्" "मो सम कौन कुटिल खलकामी" आदि प्रार्थनाएं इन लोगों ने रची हैं। वेद ऐसी प्रार्थना नहीं सिखाता। प्रार्थना का प्रयोजन ईश्वर पर प्रभाव डालना नहीं है, किन्तु अपने ऊपर प्रभाव डाला जाता है। सूर्य की किरणें दर्पण में प्रति फलित करने के लिए सूर्य को नहीं दर्पण को स्वच्छ बनाया जाता है। अतः प्रार्थना द्वारा अपने मन बुद्धि और इन्द्रियों को इस योग्य बनाया जाता है कि वे अपने में समीप प्रभु के पवित्र गुणों को धारण कर सकें इस प्रकार अपने अन्तः करण को स्वच्छ किया जाता है। इसलिये वेद में जितनी भी प्रार्थनायें हैं, वे स्वात्म विकास के लिए हैं। इसलिए वेद में ऐसी प्रार्थनायें हैं:—

ताङ्म आसन्नसो प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रंकर्णयोः अपताः केशा

[शेष पृष्ठ २१० पर]

आभूषण पहनने से लाभ

[लेखक—श्री ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य (अमृतधारा) देहरादून, यू० पी०]

एक फ्रैंच साइसंदान प्रो० पी० बैरंगर (Baranger) अगस्त १९-५९ ई० में देहली में आया। एक अखबारी नुमाइन्दे को उसने बताया कि वह ७ साल से इङ्गलैण्ड में अपनी लेबोरेटरी में अनुसन्धान कर रहा है और वह इस नतीजे पर पहुँचा है कि सोने के जेवर पहनने से कैंसर (सरतान) से सुरक्षित रह सकते है। प्रोफेसर साहब ने कुछ दिनों के चुजों को इकट्ठा किया और उनमें से कइयों के गले और पाँव में छोटे छोटे आभूषण सोने आदि के डाल दिये दोनों को एक ही हालत में रखा जहाँ उन पर मलेरिया और कैनसर का असर हो सकता था। प्रोफेसर साहब का कहना है कि जिन पर कोई जेवर न थे उन्होंने मलेरिया और कैंसर से बीमार होकर जान दी परन्तु जेवरों वाले जानवर सुरक्षित रहे। प्रोफेसर साहब के ७ साल के अनुभवों का परिणाम यह है कि बीमारी से सुरक्षित रखने के लिए सोना अव्वल नम्बर पर है। ताँबा और चांदी दूसरे दर्जे पर हैं। लोहा भी कुछ असर रखता है। परन्तु कैंसर की सुरत में केवल सोने पर ही भरोसा करना चाहिए प्रोफेसर साहब फरमाते हैं कि एशिया और अफ्रीका में धातु के जेवर बहुत पहने जाते हैं। इसी से मुझे अनुसंधान करने का ख्याल आया कि इनके पहनने में कोई लाभ अवश्य होगा। प्रोफेसर साहब ने कहा वैज्ञानिक तौर पर मैं इसका स्मरण नहीं कर सकता परन्तु परिणाम यही है।

वेद आज्ञा

अथर्ववेद काड १ सूक्त ३५ के ३ मन्त्रों में सोने का जिकर है। पहले मन्त्र में लिखा है कि सोने को पहनने से दीर्घ आयु मिलती है। तीसरे मन्त्र में लिखा है कि बल बढ़ाने के लिए स्वर्ण को धारण करना चाहिए।

यजुर्वेद अध्याय ३४, मन्त्र ५० में ऐसे शब्द आते हैं पुष्ट करने वाला सोना मेरे शरीर में घुस जावे। इसका मतलब यह मालूम होता है कि सोने को खाने से शक्ति प्राप्त होती है, खाने की विधि तो वैद्यक शास्त्र बतलाते हैं कि इसको किस प्रकार भस्म करके

खाया जावे । अथर्ववेद में एक जंगिड मणी पहनने से राजयक्ष्मा (तपेदिक) तक दूर होने का जिकर है परन्तु वह मणी क्या है, किसी को पता नहीं । कई भाष्यकारों ने इसको कोई बूटी समझा है ।

और आयुर्वेद की पुस्तकों में न केवल धातुओं बल्कि रत्नों के पहनने के भी बहुत गुण लिखे हैं । हमारे देखने की बातें हैं जब कि गांव में पुरुष भी सोने के कण्ठे पहनते थे और कड़े तो अब तक बराबर पहनते हैं । देहरादून में मैंने देखा कि हिजहोलोनैस बड़े महन्त साहब के हाथ में सोने का मोटा कढ़ा हमेशा होता है ।

मेरे बाबा जी, पिताजी हमेशा एकमाला पहना करते थे जिसमें सोने और मूंगे के मनके होते थे । अनन्त भी पहनने का बहुत रिवाज था । अब पुरुषों में तो केवल उंगलियों में मुन्दरी बाकी रह गई है । राजाओं में, जागीरदारों में जेवर भी पहनते हैं । यहां तक कि कानों में भी कुण्डल पहने जाते हैं और आर्य हिन्दुओं में हर लड़के लड़की का कर्ण वेध संस्कार तीसरे और पांचवें वर्ष के बीच हो जाता है । जब कि नाक व कान दोनों बींधे जाते हैं । लड़कों का वह सूराख बन्द हो जाता है । लड़कियों का मौजूद रहता है । कई जगह तो कान में ८-१० सूराख तक होते हैं और उनमें बालियां पहनी जाती हैं । नाक भी नहीं छोड़ी जाता । इसमें लौंग और नथ पहनी जाती है और सिर के ऊपर चौंक उनके सुहाग व जात की निशानी है । शहरों से दूर जंगलों में रहने वाली स्त्रियों में तो सिर से पांव तक कोई न कोई जेवर होता है । पहाड़ की स्त्रियां जब सारे जेवर पहनती हैं तो सिर, गला, बाहु, छाती, पांव सब चांदी के आभूषणों से ढके हुए होते हैं । मारवाड़ में पुरुष भी पांव में कड़े पहनते हैं ।

अफ्रीका की स्त्रियों के चित्र जो किताबों में निकले हैं, वह भी सोना चांदी न भी हो तो और धातुओं के जेवर और घूंगची आदि के बहुत से जेवर पहने होती हैं । इतनी बातें लिखने का मेरा मतलब यह है कि भारत में और उसके पश्चात् अन्य देशों में भी गहनों का रिवाज आम रहा है और है और इसकी वजह केवल खूबसूरती को दिखलाना नहीं होगा बल्कि इस रिवाज को चलाने में पूर्वजों के दिल में उसके दूसरे फायदों का भी ख्याल होगा । पत्थर (Stones)

पहनने का भी रिवाज हर जगह है और वैद्यक पुस्तकें पढ़ने से मालूम होता है कि रत्नों का पहनना बहुत से रोगों में लाभदायक है। और दिलकी ताकत के लिए तो सब रत्न काम आते हैं। अकीक, संगयशव, मूंगा बहुत कीमती भी नहीं परन्तु दिल को ताकत देने वाले हैं। संगयशव का जेवर हौल दिल के नाम से पहना जाता है। नाम से भी फायदा जाहिर है। अकीक तो बहुत से फकीरों के गले में देखा जाता है।

मानिका (लाल) का पहनना दिल दिमाग को और आंखों की ज्योति को मुफीद है और बवासीर को लाभदायक है। मोती का पहनना भी मन को प्रसन्न करने वाला और अंगों को पौष्टिक है।

मूंगा—बच्चों को पहनाना नींद में चौंकने के लिए मुफीद है।

पन्ना—मृगी व उन्माद के रोगी के लिए उत्तम है। पुखराज भी दिल के रोगों में लाभदायक है नीलम के पहनने से फोड़े फुंसी कम होते हैं। हीरा भी दिल को ताकत देता है और मृगी में लाभदायक है। गोमेद और बैदूर्य (लहसनीया) भी लाभदायक माने गये हैं।

इन नौ रत्नों के अतिरिक्त दूसरे कई पत्थर भी भूषणों में बरतते हैं जैसे संगयशब, अकीक, जहरमोहरा, संगसतारा आदि यह सब पत्थर वैसे ही गुलाब में पीस कर अथवा भस्म बना कर दिल दिमाग आदि के रोगों बरते जाते हैं।

धातुओं में तो ज्यादा गहने सोने या चांदी के ही बनते हैं। यह दोनों दिल दिमाग को ताकत देने वाले हैं और सोना तो ताकत देने वाला भी लिखा है और बहुत से रोगों से सुरक्षित रखता है। तांबे के जेवर पहनने का रिवाज नहीं है परन्तु यह बहुत मुफीद है। जर्मनी में एक बार हैजा फैला तो तांबे की खान में काम करने वाले लोगों को हैजा नहीं हुआ और आर्य हिन्दुओं में पूजा के पात्र प्रायः तांबे के बनाये जाते हैं तांबे में रखा हुआ पानी आचमन आदि के लिए बरता जाता है। यह कृमि नाशक होता है परन्तु बहुत देर का रखा हुआ कुछ बहुत तेज हो जाता है वह सेवन नहीं करना चाहिए।

ताँबे का कोई जेवर हैजे के दिनों में पहन लेना चाहिये। एक दिन एक अंग्रेज यात्री को देखा, उसने तांबा हाथ में पहना हुआ

था। उसने बताया कि उसको एक ब्राह्मण ने बतलाया था और उसके पहनने से उसके गंठिया के रोग को बहुत लाभ हुआ है। वैद्यक पुस्तकों में लिखा है कि मोर पंख का तांबा नीले थोथे का तांबा, केंचवे का ताँबा मिला कर इसकी अंगूठी पहनी जावे तो यह जहरों की नाशक है।

यह तो कहा नहीं जा सकता कि जेवरात सोना, चांदी या रत्नों के पहनने से कोई रोग न होंगे परन्तु यह जरूर है कि इनका फायदा होता है। और कई रोगों से बचे रहते हैं और कई कारणों से रोग हो जावे तो और इलाज के साथ यह भी सहायक होते हैं। इनके अतिरिक्त और भी ईश्वर की सृष्टि में कई चीजें हैं जिनके पहनने से लाभ होता है जैसा कि कबूतर का पर बच्चे के गले में बांधने से उनका दांत पीसना दूर होता है। सहदेवी बूटी सिर पर बांधने से बुखार को आराम होता है। सृष्टि में बहुत कुछ है जो जिसको मिल जावे। ❀❀❀

[शेष पृष्ठ २०६ का]

अशोणादन्ता बहु वाह्वोर्बलम् ऊर्वो-रोजो जङ्घपोर्जवः पादपोः प्रतिष्ठा अरिष्टानिमे सर्वात्मा निभूषः। तनूस्तन्वा में सहे दतः सर्वमापुराशीय। स्योनं मे सीद पुरुपृणस्व पवमानः स्वर्गे। वर्च आधेहि मे तन्वाद् सह ओजो वयो बलम्। इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीयपि प्रति गृह्णामि शतशारदाय।

उक्त मन्त्रों में स्वस्थ रहने की प्रार्थना है। "भद्रं कर्णेभिः" में सदाचार की प्रार्थना है। "तन्मे-मनः शिव संकल्पमस्तु" में मन को सुविचार युक्त रखने की प्रार्थना है "अर्थ" धातु का अर्थ 'याञ्चा' (माँगना) और 'अभिकांक्षा' बलवती इच्छा (Strong will Power) भी है। प्रार्थना द्वारा इच्छा शक्ति को पुष्ट किया जाता है। पुष्ट इच्छा शक्ति पुरुषार्थ की जननी है। प्रार्थना से पुरुषार्थ में चमक आ जाती है। इसीलिए ऋषि दयानन्द ने कहा है:—

"स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव को सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से पर ब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना" यह फल हैं।

स्वर्गीय इन्द्र विद्यावाचस्पति

[श्री पं० सोमदत्त जी विद्यालंकार]

पं० इन्द्र जी के पूर्वज, जालंधर से लगभग २० मील दूरी पर स्थित तलवन गाँव के निवासी थे। इनके दादा जी ने यू. पी. में पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की नौकरी से पेन्शन लेकर तलवन में मकान, मन्दिर आदि बनवाये थे। आपके पिता मुन्शीराम जी का परिवार भी यहीं रहता था। इन्द्र जी के सब बड़े भाई बहिनों का जन्म भी तलवन में ही हुआ था सबसे बड़ी बहिन वेदकुमारी जी इनसे ६ वर्ष बड़ी हैं, उनसे छोटी हेमकुमारी इन से ४ वर्ष बड़ी थीं, और श्री स्व० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार इनसे दो वर्ष बड़े थे।

जब म० मुन्शीराम जी वकालत करने लगे तब परिवार जालंधर आ गया और कचहरी के पास एक किराये के मकान में रहने लगा पं० इन्द्र जी का जन्म उस कचहरी वाले मकान में ही हुआ था। अभी आप दो वर्ष के ही थे कि इनकी माता जी का देहावसान हो गया। उस समय इनके पिता जी की आयु ३६ वर्ष की थी। उनके सामने बच्चों की देखभाल करने की विकट समस्या खड़ी हो गई। माता की मृत्यु के बाद बच्चों की देखभाल का काम इनकी ताई जमुना देवी जी ने अपने हाथ में ले लिया। म. मुन्शीराम जी उस समय आर्य समाज के काम में पूरी तरह गोता लगा चुके थे। उन्होंने जालन्धर में आर्य समाज मन्दिर के ही समीप अपनी एक शानदार कोठी बनवाई थी और अब उसी में रहने लगे थे। उन दिनों उनका मुख्य कार्य आर्य समाज का प्रचार था, और गौण काम वकालत। जिस वर्ष इन्द्र जी ने जन्म लिया उसी वर्ष 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र ने भी। वह मानों उनका जुड़वां भाई था। सम्भवतः इसी कारण उनके और पत्रकार कला के ग्रह बराबर एक से चलते रहे। म. मुन्शीराम जी उन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान थे।

इन्द्र जी बचपन से ही बीमार रहे हैं। दो वर्ष की आयु में निमोनिया का पहला आक्रमण हुआ। और चार वर्ष की आयु में दूसरा। इसके बाद उन्हें सदा खांसी बनी रही। दोनों फैफड़ों में से एक ही काम

करता था। यही कारण था कि आप अपने पिता जी तथा भाई हरिश्चन्द जी जैसे हृष्ट पुष्ट नहीं हो सके।

इन्द्र जी तब ८ ही व के थे जब इनके पिता म० मुन्शीराम जी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक गुरुकुल बनाने के लिए ३० सहस्र रुपया एकत्रित न कर लूंगा तब तक घर में पैर नहीं रखूंगा। म० मुन्शीराम जी चन्दे के लिये देश भर में पर्यटन करने लगे। उनके आदेश से दोनों भाईयों को गुजरांवाला की वैदिक पाठशाला में पढ़ने के लिए भेज दिया गया।

कुछ समय बाद गुरुकुल, हरिद्वार के उस पार कांगड़ी गाँव के पास चला गया जहां कि बाद में गंगा की बाढ़ आने तक कायम रहा। गुरुकुल कांगड़ी में जाकर वहां के रहन-सहन व्यायाम और सात्विक भोजन का इनके शरीर पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। और ये कुछ हृष्ट-पुष्ट होने लगे। सब प्रकार के खेलों में खूब रुचि लेते थे और अच्छे खिलाड़ियों में समझे जाते थे। इन्द्र जी को कुश्ती का बहुत शौक था। कुश्ती ने इनके शरीर को मजबूत बना दिया। शिक्षा में भी ये बहुत प्रतिभाशाली विद्यार्थी समझे जाते थे। कुलीय जीवन में ही हिन्दी त संस्कृत में अच्छी कविता करने थे। वहां की सभाओं में भी अ भाषण करने वालों में मुख्य सम जाते थे। गुरुकुलीय जीवन में हाथ से लिखकर एक पत्रिका का सम्पादन करने लगे थे।

जब आप १३वीं कक्षा में पढ़ थे तब गुरुकुल के वार्षिक उत्स के अवसर पर इनके पिता जी अपनी जालंधर वाली कोठी गुरुकुल कांगड़ी के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को दान कर दी। अपनी शेष सम्पत्ति को आ पहले ही दान कर चुके थे। यह कोठी सभा को देने से पूर्व महात्मा जी ने इनको तथा बड़े भाई को बुलाकर इनके विचार जानने चाहे। दोनों भाइयों ने पिता जी की इच्छा को शिरोधार्य किया और उस दान पत्र पर हस्ताक्षर करके अपनी उदारता की छाप लगा दी।

सन् १९१२ में आप गुरुकुल से स्नातक हुए। इनके पिता जी हरिश्चन्द जी को पत्रकार और इन्हें बैरिस्टर बनाना चाहते थे पर घटना चक्र उल्टी गति से चल रहा था। स्नातक बनने से पूर्व ही ये सद्धर्म प्रचारक के सम्पादन

में सहायता देने लगे थे। छात्रावस्था में भी कई वर्षों तक हस्तलिखित पत्रिका निकालते रहे। स्नातक होने के समय इनका मन पत्रकार कला की तरफ पूरी तरह झुक चुका था। फलतः सद्धर्म प्रचारक के सम्पादक बन कर ये दिल्ली चले गये और हरिश्चन्द्र जी गुरुकुल में ही उपाध्याय का कार्य करने लगे। दिल्ली आकर उन्होंने सद्धर्म प्रचारक के अलावा साप्ताहिक 'विजय' भी निकाला, पर वह कुछ दिन खूब चमक कर सरकारी विधि तथा दमन का शिकार होकर ६-७ अंक ही निकलने के बाद बन्द हो गया। इसी वर्ष इनका विवाह स्वर्गीय श्री पण्डित विष्णु मित्र जी की पुत्री श्रीमती विद्यावती जी के साथ जातिपांति के बन्धनों को तोड़ कर हो गया। इसके बाद उनके बड़े भाई हरिश्चन्द्र जी विलायत चले गए, और इनके पिता जी संन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द बन गए। उन्होंने अपना कार्य क्षेत्र दिल्ली को बनाया। १९१८ में इन्द्र जी भी गुरुकुल से १ वर्ष का अवकाश लेकर दिल्ली आ गए और 'विजय' नाम से दैनिक पत्र निकाला। १९१९ में जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में रौलट कानून के विरोध में सत्याग्रह का प्रसिद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया गया, तब श्री स्वामी जी के साथ आप भी उसमें सक्रिय भाग लेने गये।

१९२१ में आप पुनः गुरुकुल कांगड़ी चले गये। लगभग ३-४ वर्ष गुरुकुल कांगड़ी तथा इन्द्रप्रस्थ में स० मुख्याधिष्ठाता के रूप में कार्य करके आप पुनः देहली आ गये और नये बाजार में एक मकान म अर्जुन प्रेस स्थापित कर 'दैनिक अर्जुन' का सम्पादन करने लगे। इसी समय आपने कई उत्तम साहित्य सम्बन्धी पुस्तकें भी लिखीं। देहली की राजनैतिक गतिविधियों में तथा आर्यसमाज के कार्य में आप प्रमुख भाग लेते रहे। जब २ देश के नेताओं ने स्वाधीनता संग्राम के लिये आह्वान किया आपने स्वाधीनता संग्राम में कूदकर और कई वार जेल जाकर पूर्ण देश भक्ति का परिचय दिया इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि देहली की राजनैतिक चेतना में इन्द्र जी का एक प्रमुख भाग है। आप कई वर्षों तक देहली प्रान्तीय कांग्रेस के प्रधान भी रहे।

. ९२६ में स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान होने के बाद आप और भी उत्साह से आर्य समाज तथा देश की सेवा में लग गये। आप द्वारा सम्पादित 'दैनिक अर्जुन' लोगों में राजनैतिक चेतना जागृत करने में विशेष रूप से भाग ले रहा था। दो-तीन वर्ष वाद आपकी पत्नी का देहावसान हो गया। अपनी गिरी हुई सेहत तथा बच्चों का ख्याल करके आपने पुर्नविबाह कर लिया। सन् १९४१ में आप गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता तथा वाइसचान्सलर नियुक्त हुए और मृत्यु से १ मास पूर्व तक बड़ी योग्यता तथा लगन से इस कार्य को करते रहे। अभी पिछली २३ जुलाई को ही सभा के अधिकारियों ने आपकी गुरुकुल से विदाई देते समय आपकी अमूल्य सेवा के लिए अभिनन्दन किया था। किसी को क्या मालूम था कि उसके ठीक एक मास बाद आप इस प्रकार सदा के लिए विदा हो जायेंगे।

पं० इन्द्र जी ने अपनी अमूल्य सेवाओं से पत्रकार जगत में, साहित्य सेवा में, देश सेवा तथा आर्य समाज के क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया था। उनकी इन बहुमुखी सेवाओं को ही ध्यान में रख कर राष्ट्रपति ने उन्हें संसद का सदस्य मनोनीत किया था।

इन्द्र जी ने अपने साहित्यिक जीवन में कई दैनिक पत्रों का बड़ी योग्यता से सम्पादन किया। इसके साथ ही, भारत में बृटिश साम्राज्य का उदय और अस्त, मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण, सम्राट् रघु, आधुनिक भारत में वक्तृत्व कला की प्रगति, स्वराज्य और चरित्र निर्माण, जीवन संग्राम, सरला, सरला की भाभी, अपराधी कौन, शाह आलम की आँखें, जमीन्दार जीवन की झाँकियें आदि उपन्यासों तथा साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त आर्यसमाज का इतिहास, ईशोपनिषद् भाष्य, महर्षि दयानन्द इत्यादि पुस्तकें लिखकर आर्य साहित्य में अभिवृद्धि की है।

आप वर्षों सार्वदेशिक सभा में मन्त्री तथा प्रधान के रूप में, आर्य प्रतिनिधि सभा में उपप्रधान के रूप में, तथागुरुकुल के वाइसचान्सलर के रूप में आर्य समाज की प्रशंसनीय सेवा करते रहे।

उनके इस अप्रत्याशित निधन से आर्यसमाज तथा देश ने एक निस्स्वार्थ सेवक तथा सच्चा कार्यकर्त्ता खो दिय।

[जुलाई अङ्क से आगे]

व्याख्यान माला

विश्वामित्रो वसिष्ठश्च मतङ्गो नारदादयः ।
तपोविशेषैः संप्राप्ता उत्तमत्वं न जातितः ।।५४।

विश्वामित्र, वसिष्ठ, मतंग और नारदादि मुनि तप विशेष करने के कारण ही उत्तमता को प्राप्त हो गये किन्तु जाति से नहीं ।।५४।।

ततो ब्राह्मणतां यातो विश्वामित्रो महातपाः ।
क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः ।। ५५ ।।

महातपस्वी विश्वामित्र तप के ही कारण ब्राह्मणता को प्राप्त हो गया । पहले वह क्षत्रिय था किन्तु बाद में ब्राह्मणवंश का कर्ता बन गया । तपस्या ही इसका कारण है ।। ५५ ।।

तस्य पुत्रा महात्मानो ब्रह्मवंशविवर्धनाः ।
तपस्विनो ब्रह्मविदो गोत्रकर्तार एव च ।। ५६ ।।

उसी विश्वामित्र महात्मा के पुत्र बड़े महात्मा ब्रह्मवंश के बढ़ाने वाले, तपस्वी, ब्रह्म को जानने वाले, तथा गोत्र को चलाने वाले हुए ।। ५६ ।।

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ।। ५७ ।।

ब्राह्मणों की महत्ता बड़ाई ज्ञान से ही होती है । क्षत्रियों का बड़प्पन शक्ति से होता है । धान्य से तथा धन से वैश्यों में महत्ता मानी जाती है । तथा शूद्रों की ही महत्ता आयु से होती है । जो आयु में बड़ा वह है सब से बड़ा है ।। ५७ ।।

क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ।
निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ।। ५८ ।।

जो सब क्रियाओं से हीन है । जो मूर्ख है । जो सब धर्मों से वर्जित है किसी धर्म का पालन नहीं करता । सब प्राणियों पर निर्दयी है दया नहीं करता ऐसा ब्राह्मण चाण्डाल कहा जाता है ।। ५८ ।।

पश्य लक्ष्मण पम्पायां वकः परमधार्मिकः ।
शनैः शनैः पदं धत्ते प्राणिनां वधशङ्कया ॥ ५९ ॥

रामचन्द्र जी कहते हैं, हे लक्ष्मण पम्पासर में परम धार्मिक बगुले को देख, जो प्राणियों के वध की शंका से कि कहीं कोई प्राणी न मर जाये इसलिये शनैः शनैः पग रख रहा है ॥ ५९ ॥

वकः किं श्लाघ्यते राम येनाहं निष्कुलीकृता ।
सहवासी विजानाति चरितं सहवासिनः ॥ ६० ॥

इस श्लोक को सुन मछली ने कहा—हे राम इस बगुले की तू क्या बड़ाई करता है जिसने मुझे कुल से हीन कर दिया, मेरा सारा कुल खा लिया। सहवासी के चरित्र को सहवासी ही जानता है ॥ ६० ॥

सन्ध्योपासना

उपत्वाऽग्ने दिवे दिवे दोषा वस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥ १ ॥

हे उपासना करने योग्य ईश्वर ! हम लोग अनेक प्रकार का विज्ञान प्राप्त करने के लिये अपनी बुद्धि और कर्मों से आप की उपासना को धारण और रातदिन में निरन्तर नमस्कार आदि करते हुए आपके शरण को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः ।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ २ ॥

जो शंसितव्रत उपासक लोग प्रतिदिन सन्ध्या करते हैं। उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। और वे सुखरूप रोगरहित ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

ब्रह्मणोपासिता सन्ध्या विष्णुना शङ्करेण च ।
नोपास्ते कश्च तां देवीं सिद्धिकामो द्विजोत्तमः ॥ ३ ॥

ब्रह्मा ने भी पहले सन्ध्योपासना की थी। विष्णु तथा शंकरने भी

सन्ध्योपासना की थी। सिद्धि को चाहने वाला ऐसा कौन श्रेष्ठ ब्राह्मण है जो सन्ध्योपासना न करे ॥ ३ ॥

अहोरात्रस्य यः सन्धिः सूर्यनक्षत्र वर्जितः ।
सा च सन्ध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्ववादिभिः ॥ ४ ॥

सूर्यास्त के बाद या उदय होने से पूर्व जब तारे न खिले हों उस अहोरात्र की सन्धि को ही मुनियों तथा तत्वदर्शी ऋषियों ने सन्ध्याकाल बतलाया है ॥ ४ ॥

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ ५ ॥

जिस ब्राह्मण ने सन्ध्या का ज्ञान न किया हो तथा जो ब्राह्मण सन्ध्योपासना न करता हो उस ब्राह्मण का शूद्र की तरह सब द्विज कर्मों से बहिष्कार कर देना चाहिए ॥ ५ ॥

सन्ध्याहीनस्तु यो विप्रो ह्यन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशुगच्छति सान्वयः ॥ ६ ॥

जो ब्राह्मण होकर भी सन्ध्या से हीन है सन्ध्या नहीं करता अन्यत्र श्रम करता रहता हैं। वह जीता हुआ ही सम्पूर्ण कुल सहित शीघ्र ही शूद्रता को प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥

तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं सन्ध्योपासनमुत्तमम् ।
तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारो भवेन्नहि ॥ ७ ॥

इसलिए सन्ध्योपासना नित्य कर्म की तरह प्रतिदिन करनी चाहिए। सन्ध्योपासना के न करने तक अन्य कार्यों के करने का अधिकार नहीं है ॥ ७ ॥

नानुतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ ८ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातः काल तथा सायंकाल सन्ध्योपासना नहीं करता। वह मनुष्य द्विजों के सब कर्मों से साधुओं द्वारा बहिष्कृत करने योग्य है ॥ ८ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनां चरेद् द्विजः ।
अन्यथा शूद्रवद्भूयात्सर्वकार्येषु निन्दितः ॥ ९ ॥

इसलिए प्रत्येक ब्राह्मण को सारा प्रयत्न करके भी सन्ध्योपासना

अवश्य करनी चाहिए। अन्यथा वह शूद्रवत् हो जाता है और सब कार्यों में निन्दित होता है ॥ ९ ॥

तस्मान्न लङ्घयेत्सन्ध्यां सायं प्रातः समाहितः ।
उल्लङ्घयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ॥ १० ॥

इसलिए समाहित चित्त होकर प्रातः सायं किसी भी समय सन्ध्या का उलंघन नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य मोहवश होकर सन्ध्या का उलंघन करता है वह नरक को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्त्तते ।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ॥ ११ ॥

हे राम तेरे कारण कौशल्या सुसन्तान वाली है जो कि तू प्रतिदिन सन्ध्योपासन करता है। हे नरशार्दूल ! अब तू उठ और दैनिक पूजा के कर्म कर ॥ ११ ॥

तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम् ॥ १२ ॥

उस ऋषि के उन बड़े उदार वचनों को सुन कर मनुष्यों में श्रेष्ठ राम और लक्ष्मण दोनों ने स्नान और आचमन करके परम जप का जाप किया ॥ १२ ॥

उभे सन्ध्ये शयानस्य यत्पापं परिकल्प्यते ।
तच्च पापं भवेत्तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ १३ ॥

भरत कहता है कि जिसकी अनुमति से राम वन में गये उसको वह पाप लगे जो पाप दोनों सन्ध्या के समय सोने वाले को होता है ॥ १३ ॥

ऋषेर्वचनमाज्ञाय रामः सन्ध्यामुपासितुम् ।
अपाक्रमत्सरः पुण्यमप्सरोगणसेवितम् ॥ १४ ॥

उस ऋषि के वचन को जान कर और सुन कर रामचन्द्र जी सन्ध्योपासना करने के लिए अप्सराओं से सेवित उस पुण्य तालाब पर गये। तालाब के समीप सन्ध्या करने गये ॥ १४ ॥

तत्रोदकमुपस्पृश्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
आश्रमं प्राविशद्रामः कुम्भयोनेर्महात्मनः ॥ १५ ॥

वहां उस तालाब पर राम ने आचमन करके सायंकाल की सन्ध्योपासना की। तत्पश्चात् महात्मा अगस्त्य के आश्रम में प्रविष्ट हुए ॥ १५ ॥

सन्ध्याकालमना श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीञ्चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥ १६ ॥

सन्ध्याकाल के समय वह वरवर्णिनी श्यामा जानकी (श्री सीता जी) सन्ध्या करने के निमित्त इस शुभ जल वाली नदी पर अवश्य आयेगीं ॥ १६ ॥

यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना ।
आगमिष्यति साऽवश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥ १७ ॥

यदि चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली सीता जीवित होगी तो अवश्य ही इस शीतल जल वाली नदी पर सन्ध्या के लिए आयेगी।' १७॥

अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ।
गत्वाऽरण्ये नदी तीरे सर्वपापविशुद्धये ॥ १८ ॥

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अरण्य में जाकर नदी के किनारे बैठ कर सब पापों की शुद्धि के लिए पुण्यकारी वेदमाता गायत्री का नित्य अभ्यास करे ॥ १८ ॥

ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम् ।
सर्वांस्तान्धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् ॥ १९ ॥

जो ब्राह्मण लोग प्रातःकाल की सन्ध्या नहीं करते और सायंकाल की भी नहीं करते धार्मिक राजा उन सब ब्राह्मणों से शूद्रों के कार्य करवावे ॥ १९ ॥

ऋषयो दीर्घसन्ध्यात्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिञ्च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥ २० ॥

ऋषि लोग निरन्तर दीर्घकाल पर्यन्त सन्ध्यावन्दनादि करने के कारण ही दीर्घ आयु को प्राप्त करते हैं। मेधा बुद्धि को, यश को कीर्ति को तथा ब्रह्मवर्चस् को भी सन्ध्यावन्दन कर्म से ही प्राप्त करते हैं ॥ २० ॥

अग्निकार्यात्परिभ्रष्टाः सन्ध्योपासनवर्जिताः ।
वेदं चैवानधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥ २१ ॥

जो होम इत्यादि कर्म से हीन हैं और सन्ध्योपासनादि कार्य भी जो नहीं करते। और जो वेदों का अध्ययन नहीं करते वह सब वृषल कहलाने के योग्य हैं ॥ २१ ॥

सन्ध्यां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः ।
स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वा चैव जायते ।। २२ ।।

जो मनुष्य सन्ध्या नहीं करता और विशेषकर यदि ब्राह्मण होकर नहीं करता तो वह जीता हुआ ही शूद्र होता है और मर कर वह कुत्ते की योनि में जाता है ।। २२ ।।

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ।। २३ ।।

जो ब्राह्मण सन्ध्या विहीन है अपवित्र रहता है वह सब श्रेष्ठ कर्मों के योग्य नहीं रहता । वह यदि कोई अन्य श्रेष्ठ काम भी करे तो उसे उसका पुण्य नहीं मिलता ।। २३ ।।

गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ।। २४ ।।

गायत्री से बढ़ कर पवित्र करने वाला इस लोक में तथा परलोक में कुछ भी नहीं है । नरक रूपी समुद्र में गिरते हुवों को यह देवी हाथ का सहारा देकर बचाने वाली है । इसका जाप करने वाला नरक में नहीं पड़ता ।। २४ ।।

गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ।
गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते जनैर्द्विजाः ।। २५ ।।

जो ब्राह्मण गायत्री जाप नहीं करता उससे रहित है वह शूद्र से भी अपवित्र है । और जो ब्राह्मण गायत्री तथा ब्रह्म के रहस्य को जानने वाले हैं वही मनुष्यों द्वारा पूजा पाते हैं ।। २५ ।।

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः ।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ।। २६ ।।

जो ब्राह्मण केवल गायत्री मन्त्र का ही तत्वज्ञ है यदि वह सुनियन्त्रित रहता है जो चारों वेदों का ज्ञाता होकर भी अनियन्त्रित रहता है जो सब कुछ खाने तथा बेचने वाला है उससे श्रेष्ठ है ।। २६ ।।

पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधिः ।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावदादित्यदर्शनम् ।। २७ ।।

ब्राह्मण प्रातः काल की सन्ध्योपासना यथाविधि आकाश में नक्षत्र रहने तक करे और जब तक सूर्य का दर्शन हो तब तक गायत्री जाप का अभ्यास करता रहे ।। २७ ।।

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्याञ्च यथाविधिः ।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्तारणि पश्यति ।। २८ ।।

जब सायंकाल सूर्यास्त के समय सूर्य दिखाई दे तभी से ब्राह्मण सायंकाल की सन्ध्या प्रारम्भ करे और यथाविधि सन्ध्या करके जब तक नक्षत्र दिखाई दें तब तक गायत्री का जाप करें ।। २८ ।।

सन्ध्याहीना व्रतभ्रष्टाः पिशुना विषयात्मकाः ।
तेभ्यो दत्तं निष्फलं स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।। २९ ।।

जो मनुष्य सन्ध्या से हीन हैं व्रत से गिरे हुए हैं व्रत पालन नहीं करते : चुगलखोर हैं और विषयों में फंसे रहते हैं। उनको दिया हुआ दान निष्फल रहता है इसमें संशय नहीं है ।। २९ ।।

सन्ध्यालोपाच्च चकितः स्नानशीलश्च यः सदा ।
तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः ।। ३० ।।

जो मनुष्य सदा सन्ध्या करता है कभी भूल नहीं होने देता तथा जो नित्य स्नान करता है। उसके पास दोष इस प्रकार नहीं ठहरते जिस प्रकार गरुड़ के आगे सर्प नहीं ठहरते ।। ३० ।।

अतिथि-सत्कार

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।। १ ।।

जो अतिथि हमारे घर पर आये उसे यथाविधि आसन तथा जल देना चाहिये। और विधिपूर्वक उसका सत्कार करके यथाशक्ति अन्न भोजन भी देना चाहिये ।। १ ।।

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं चातिथिभोजनम् ।। २ ।।

गृहस्थी का कर्तव्य है कि जब तक आये हुए अतिथि को भोजन

न करा लेवे स्वयं भोजन न करे। अतिथि को भोजन कराने वाला धन्य कहलाता है इसी से यश की आयु की यहां तक कि स्वर्ग की भी प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना ।
तथाऽऽसनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥ ३ ॥

जो अतिथि अपने घर पर आया है उसकी स्वागतादि के द्वारा अच्छी तरह पूजा करे। तथा उसे यथोचित आदर पूर्वक आसन देकर और पग प्रक्षालन करके उसकी पूजा करे। क्योंकि आये हुये अतिथि का सत्कार करना परम कर्तव्य है ॥ ३ ॥

श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च ।
गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद् गृही ॥ ४ ॥

गृहस्थी का कर्तव्य है कि श्रद्धा के द्वारा अतिथि का आदर पूर्वक भोजन देकर सत्कार करे। उससे प्रेम पूर्वक वार्तालाप करे कुशल पूछे और अतिथि के गमन समय उसके साथ चलकर उसका सत्कार करे और और उससे प्रीति करे ॥ ४ ॥

अभुक्त्वाऽतिथये चान्नं प्रयच्छेद्यः समाहितः ।
स वै ब्रह्मविदो लोकान् प्राप्नुयाद्भरतर्षभ ॥ ५ ॥

हे भरत श्रेष्ठ ! जो मनुष्य आदर पूर्वक अपने आप खाने से पूर्व अतिथि को भोजन खिलाता है। वह ब्रह्मवेत्ता हो जाता है और ब्रह्म ज्ञानियों के लोकों को प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च नः सन्तु मायाचिष्म कदाचन ॥ ६ ॥

हमारी इच्छा यह होनी चाहिए कि हमारे पास पर्याप्त मात्रा में अन्न होवे और हमारे घर नित्य अतिथि आवे और हम उसका सत्कार करें। हम से मांगने वाले याचक होवें किन्तु हम किसी से न मांगे ॥ ६ ॥

श्रान्तमध्वनि वर्तन्तं वृद्धमर्हमुपस्थितम् ।
अर्च्चयेद् भूतिमन्विच्छन् गृहस्थो गृहमागतम् ॥ ७ ॥

जो थका हुआ है, मार्ग में चल रहा है, वृद्ध है, और जो योग्य है तथा सामने आया है। ऐसे व्यक्तियों का यदि वह घर में आये तो गृहस्थी आदर सत्कार करे ॥ ७ ॥

वेदप्रकाश के विशेषाङ्क पर सम्मतियां

महर्षि जीवन चरित्र के लेखक सामवेद भाष्यकार—
श्री पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार

समालोच्य गुरुदत्त लेखावलि अंक प्रसिद्ध आर्य नेता व विद्वान पं. गुरुदत्त जी के विद्वता पूर्ण लेखों का हिन्दी अनुवाद है प्रारम्भ में दिया गया जीवन चरित्र प्रेरत्र है। आज आर्य समाज की घटती कला है : इस युग में युवकों, विशेषतः कालेज व विज्ञान की नई शिक्षा से कुसंस्कार ग्रहण कर रहे युवकों के लिये इसका विशेष महत्व है। वेदप्रकाश का प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपप्रधान तथा वेदों के पंडित—
श्री पं० मनोहर जी विद्यालङ्कार

वेदप्रकाश का गुरुदत्त लेखमाला के रूप में निकला हुआ विशेषांक देखा। पढ़ कर बहुत प्रसन्नता हुई। मैं तो बहुत दिनों से उनके लेखों को हिन्दी में पढ़ने की इच्छा अपूर्ण रक्खे हुए था। मैं समझता हूं आपने इस विशेषांक के द्वारा बहुत से हिन्दी पाठियों तथा आर्यसमाज के सिद्धांतों को जानने के अभिलाषियों की मन चाही मुराद पूरी की है। इन लेखों की प्रामाणिकता तथा योग्यता के बारे में कुछ भी कहना व्यर्थ है क्योंकि ये लेख अप्रतिम प्रतिभा सम्पन्न श्री गुरुदत्त जी द्वारा लिखित है।

आर्य विद्या परिषद अजमेर के परीक्षामन्त्री—
श्री डा० सूर्य्यदेव जी शास्त्री, साहित्यालङ्कार एम० ए०

वेदप्रकाश का विशेषांक मिला। तदर्थ धन्यवाद। गत कई वर्षों से वेदप्रकाश के विशेषांकों द्वारा आप जो वैदिक साहित्य की ठोस सामग्री आर्य जनता को दे रहे हैं वह वास्तव में सराहनीय है। गुरुदत्त लेखावलि का इतना सुलभ संस्करण कर के आपने आर्यजनता का महदुपकार किया है। ईश्वर करे वेदप्रकाश द्वारा आप ऐसे प्रयासों में सतत सफलता सम्पादन करते रहे।

वैदिक गवेषक आचार्य शिवपूजनसिंह बी. ए., साहित्यलंकार, विद्यावाचस्पति

अंक अत्यन्त सुन्दर, छपाई सफाई अच्छी है। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० आर्य जगत् के एक महान् विद्वान थे जिनकी विद्वता का लोहा पाश्चात्य विद्वान भी मानते थे। कई वर्षों से उनकी यह कृति लुप्त थी पर आपने इसे प्रकाशित करके एक अत्युत्तम कार्य किया है।

वेद प्रकाश का वार्षिक मूल्य ३) भेज कर आप भी यह विशेषांक प्राप्त कर सकते हैं। वेदप्रकाश कार्यालय ४४०८ नई सड़क दिल्ली।

—:०००:—

पंच-यज्ञ-प्रकाशिका

इस पुस्तक में सन्ध्या, हवन, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण, प्रातः-... मन्त्र, पितृयज्ञ बलिवैश्व-... अतिथि यज्ञ, भोजन समय ..., यज्ञोपवीत के मन्त्रादि बहुत मोटे-मोटे अक्षरों में छापे गये हैं। सभी मन्त्रों के एक-एक शब्द का अर्थ दिया गया। अन्त में सुन्दर, मनोहर भजन भी हैं। वर्षों की प्रतीक्षा के बाद प्रकाशित हुई है शीघ्र मंगावें। मूल्य ६५ न० पै०

१९६१ के नवीन

कैलेण्डर

पिछले वर्ष की भांति इस वर्ष भी हमने १४×२० साइज में महर्षि दयानन्द का आफसैट में कैलेण्डर तैयार कराया है। ऊपर के आधे भाग में महर्षि का भव्य चित्र है। शेष नीचे के आधे भाग में गायत्री मन्त्र तथा उसका अर्थ दिया है।

मूल्य ।=) दर्जन ४)

डाक खर्च अलग।

प्लास्टिक के सुन्दर बिल्ले

उपरोक्त दो प्रकार के बिल... के अतिरिक्त वीर संन्यासी श्रद्धान... का बिल्ला उनकी जन्म व बलिद... तिथि के साथ तैयार है इसी प्र... त्यागवीर महात्मा हंसराज ... बिल्ला जन्म, मृत्यु तिथी के ... तैयार किया गया है। बिल्लों ... पीछे पिन लगी हुई है। प्रत्येक ... मूल्य =) सैकड़ा १०) है। ... मंगाने पर डाकखर्च १॥), ... मंगाने पर २) जाता है।

समाज के उत्सव व नगर की... आदि पर इनके प्रयोग से उत्सव... शोभा बढ़ेगी।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, देहली

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाया।

वेद प्रकाश

आवश्यक निवेदन

पाठकगण !

पं० लेखराम जी ने अपनी इह लीला को विसर्जित करते हुए कहा था कि "आर्य समाज से लेख का कार्य बन्द न हो।" परन्तु आज कहाँ हो रहा है लेखन कार्य ? जब लोग न साहित्य पढ़ते हैं और न खरीदते हैं तो कौन लिखे और कौन छपवाये ? अमर शहीद पं० लेखराम जी के आदेश को मूर्त रूप देने के लिये आप थोड़ासा सहयोग दें फिर हम इस क्षेत्र में पुस्तकों की बाढ़ उपस्थित कर देंगे। वेदप्रकाश की ग्राहक संख्या इस समय १००० से अधिक है। हम चाहते हैं यह संख्या कम से कम दुगुनी हो जाये। कार्य कोई कठिन नहीं यदि प्रत्येक व्यक्ति एक एक ग्राहक नया बना दे तो एक ही मास में यह संख्या २००० से भी ऊपर हो सकती है। ग्राहक संख्या बढ़ते ही वेद प्रकाश की पृष्ठ संख्या भी बढ़ने लगेगी और साथ ही विशेषांकों की संख्या भी बढ़ जायेगी। जो व्यक्ति वेदप्रकाश के पांच ग्राहक बनायेंगे उन्हें एक वर्ष तक पत्र निशुल्क भेजा जायेगा।

समाजों के मन्त्रियों से

मन्त्री जी !

साधारण पाठकों की अपेक्षा मन्त्री का उत्तरदायित्व अधिक है। आपकी तनिक सी प्रेरणा और प्रार्थना पर बहुत से व्यक्ति सदस्य बन सकते हैं। यदि प्रत्येक मन्त्री ५—८ नये ग्राहक बना दें तो समाज के लिए एक वर्ष तक वेदप्रकाश निःशुल्क जाता रहेगा।

आगामी विशेषाङ्क

जनवरी मास का विशेषाङ्क "राधा स्वामी मत आलोचन विशेषाङ्क" होगा। भारी संख्या में आर्डर दीजिए। समाजों को मगाकर प्रचारार्थ बांटना चाहिए।

"विद्यार्थी"

अवैतनिक सह० सम्पादक— जगदीश चन्द्र "विद्यार्थी"

गुरुदत्त लेखावलि पर सम्मति

श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक

अध्यक्ष महर्षि दयानन्द स्मारक अनुसंधान विभाग टंकारा

ऋषि दयानन्द के पीछे आर्य समाज में कोई अग्रगण्य सर्वतः व्यक्ति हुआ है तो वह निस्सन्देह श्री पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी हैं। श्री पं० गुरुदत्त जी पाश्चात्य विज्ञान के तो अद्भुत प्रतिभाशाली विद्वान् थे ही, साथ ही उन्होंने ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के स्वाध्याय तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन से संस्कृत के विशेषकर वैदिक साहित्य के अधिकारी व्यक्ति बन गए थे।

श्री पं० गुरुदत्त जी ने पाश्चात्य विद्वानों द्वारा वैदिक साहित्य के विषय में उत्पन्न की गई भ्रान्तियों के उत्तर देने का जो विशिष्ट कार्य आरम्भ किया था जिसे आर्य समाज सामूहिक रूप से ७७ वर्ष की लम्बी अवधि में भी आगे न बढ़ा सका यह बड़े खेद की बात है। इतना ही नहीं, श्री पं० गुरुदत्त जी के लेखों का संग्रह रूप यह ग्रन्थ भी लगभग २५ वर्ष से दुष्प्राप्य हो चुका था। इसी प्रकार आर्यसमाज के पुराने विद्वानों का विशिष्ट साहित्य अप्राप्य हो चुका है परन्तु हमारी शिरोमणि सभाओं को इस कार्य की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं होता। वेदप्रचार के नाम पर आर्य समाज में लक्षों रुपये प्रतिवर्ष व्यय होते हैं परन्तु वेद प्रचार कहां होता है इसका परिज्ञान ही नहीं हो पाता।

आर्य समाज की उन्नति तभी हो सकती है जब आर्य व्यक्तियों में स्वाध्याय की भावना हो और उन्हें सब प्रकार का आर्य साहित्य सुलभता से मिल सके। हम तीसरे नियम वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है उसका पढ़ना पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म है, परन्तु इस परम धर्म का पालन हम सहस्रांश भी नहीं करते। कितने आर्य परिवार हैं जिनके यहां वेद की पुस्तक देखने को मिलेगी। आज स्वाध्याय की तो यह अवस्था है कि बड़ी बड़ी आर्य समाजों के प्रधान और मन्त्री तक भी सत्यार्थ-प्रकाश से पूर्ण परिचय नहीं रखते। जिन्होंने सत्यार्थ प्रकाश एक बार पूरा पढ़ा होगा ऐसे मन्त्री और प्रधान भी विरले ही मिलेंगे। ऐसी अवस्था में समाज की उन्नति कैसे हो सकती है। आर्य समाज ने अभी तक ऐसा विशिष्ट साहित्य उत्पन्न नहीं किया जिसे हम पाश्चात्य विद्वानों तक पहुंचा कर उन्हें वैदिक विज्ञान का वास्तविक स्वरूप समझा सकें। इस कार्य के योग्य गुरुदत्त लेखावलि ही एक मात्र संग्रह है।

साहित्य के प्रकाशन का जो काम बड़ी बड़ी सम्पत्ति सम्पन्न समाजों को करना चाहिये उस महत्वपूर्ण कार्य का उत्तरदायित्व श्री महाशय गोविन्दराम हासानन्द जी ने उठाया और निरन्तर प्रतिवर्ष प्राचीन दुर्लभ साहित्य का यथा शक्ति प्रकाशन करते रहे।

वेद प्रकाश मासिक ने कई वर्षों से अपनी एक नई परम्परा स्थापित की है। यह प्रतिवर्ष प्राचीन दुर्लभ साहित्य को विशेषांक के रूप में बराबर प्रकाशित कर रहा है। इस बार उसी सिलसिले में गुरुदत्त लेखावली प्रकाशित हुई है।

शेष सम्मतियां पृष्ठ २३८ पर देखें।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष—६ : कार्तिक २०१७ वि० : नवम्बर १९६० : वार्षिक ३)
अंक—४ : दयानन्दाब्द १३६ : कार्तिक १८८२ : विदेशों से ६ शिलिंग

दान से धन नहीं घटता

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताऽशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोपदस्यत्युताऽपृणन् मर्डितारं न विन्दते ॥
ऋ० १० । १७ । ११

(देवाः) देवों ने दैवीशक्तियों ने (वै+उ) निश्चय से (क्षुधम् इत् वधम्) भूख ही वध=मौत (न ददुः) नहीं दी, [वरन्] (अशितम् उत) खाने वाले को भी (मृत्यवः) मौत, दुःखक्लेश, मृत्यु के साधन (उप+गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं । (पृणतः उतोरयिः) दानी का तो धन (न उप+दस्यति) नहीं नष्ट होता, क्षीण नहीं होता । (अपृणन्) वरन् दान न देने वाला (मर्डितारम्) सुख देने वाले [मित्र] को (न विन्दते) नहीं प्राप्त करता है ।

लोगों को यह भ्रम चित्त से निकाल देना चाहिए, कि भूख ही मारने वाली है । मौत तो भर पेट खाने वालों को भी आ पकड़ती है । प्राण छूटने के अतिरिक्त एक मृत्यु और है, वह है जीते जी दुःखी रहना, अप्रसन्न रहना । जिस ने किसी को प्रसन्न करने का, किसी को कभी सुखी करने का कभी यत्न नहीं किया, उसे प्रसन्नता वा सुख कैसे मिल सकता है ? यदि प्रसन्न होने की अभिलाषा हो, तो दूसरों को प्रसन्न करने का यत्न करो । मनुष्य मनुष्य के संसर्ग में अधिक सुखी रहता है, उसके लिए मनुष्यों का संग्रह करना चाहिये । जिन पर मनुष्य कभी दया करता है, कभी आपत्ति के समय जिनकी सहायता करता है, ऐसे मनुष्य ही समय पड़ने पर उपकारी का सुख बढ़ाने वाले बनते हैं । दान देने से धन घटता नहीं । धन का फल सुख है । सुख परोपकार से बढ़ता है, अतः मनुष्य को सदा परोपकार में लगे रहना चाहिये ।

एक शङ्का और उसका समाधान

"नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव ईश्वर है या जीव ?"

[लेखक—स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड]

शङ्का—

आर्याभिविनय में ऋषि दयानन्द ने ईश्वर का स्वरूप प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि ईश्वर "नित्य शुद्ध बुद्ध-मुक्त स्वभाव" है। परन्तु कपिलमुनि के सांख्यदर्शन में पुरुष अर्थात् जीवात्मा को "न नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त-स्वभावस्य तद्-योगस्तद्योगादृते" (सांख्ये० १-१९) सूत्र द्वारा नित्य शुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव कहा है। इस प्रकार दोनों कथन कैसे सत्य या सङ्गत हो सकते हैं।

समाधान—

सांख्यदर्शन के जीवात्मा को "नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावस्य कथन में 'नित्य' शब्द नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त का विशेषण अर्थात् नित्य शुद्ध नित्यबुद्ध नित्य मुक्त हो तो अन्त में स्वभाव शब्द व्यर्थ है क्योंकि इससे पूर्वसूत्र "प्रकृति निबन्धनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम्" (सांख्ये० १-१८) पुरुष अर्थात् जीवात्मा का बन्ध प्रकृति के द्वारा हो अर्थात् प्रकृति उसको बांधती है। ऐसा कहा जावे तो ठीक नहीं, क्योंकि प्रकृति परतन्त्र है जड़ होने से। इस पर यदि कहा जावे कि पुरुष ही स्वयं प्रकृति के साथ बन्ध जावे तो ऐसा भी नहीं हो सकता। क्योंकि पुरुष-जीवात्मा नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त है। उसका 'तद्योग' अर्थात् प्रकृतियोग प्रकृति के साथ योग नहीं हो सकता तब सूत्र में स्वभाव शब्द यहां किसी विशेषार्थ को लक्षित कराता है। वह यह है कि स्वभावना अर्थात् निज भावना आकाङ्क्षा या प्रवृति है। वह स्वभावना निजाकांक्षा या निज प्रवृत्ति नित्य अर्थात् शाश्वतिक बनी रहती है। शुद्ध-पवित्र, बुद्धज्ञानवान्, मुक्त-बन्धन रहित होने की।

आर्याभिविनय में ऋषि दयानन्द के द्वारा ईश्वर की "नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव" कथन में स्वभाव शब्द स्वसत्ता-निजसत्ता का वाचक क्योंकि इसके पूर्व का वचन है ईश्वर 'सच्चिदानन्दस्वरूप" है स्वरूप शब्द के साहचर्य से स्वभाव शब्द स्वसत्ता का अर्थ देता है। इस प्रकार ऋषि दयानन्द के द्वारा प्रयुक्त स्वभाव शब्द और कपिलमुनि के द्वारा प्रयुक्त स्वभाव शब्द भिन्न अर्थों में है उनके भिन्न-भिन्न वक्ता और भिन्न भिन्न

क्षेत्र होने से जैसा कि एक 'अज' शब्द ईश्वर, जीव, प्रकृति के साथ प्रयुक्त होने से❀ भिन्न भिन्न अभिप्राय को प्रदर्शित करता है। ईश्वर के साथ 'अज' शब्द शरीर न धारण करने वाला जीव के साथ पुन: पुन: शरीर धारण करने वाला नित्य चेतनतत्त्व, प्रकृति के साथ अकार्य-कारणरूप अर्थात् कार्य का उपादान कारण अर्थ देता है। जैसे यहां एक 'अज' शब्द होता हुआ भी भिन्न भिन्न वस्तुओं अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति के साथ भिन्न भिन्न आशय में प्रयुक्त होता है इसी प्रकार 'स्वभाव' शब्द भी ऋषि दयानन्द प्रदर्शित ईश्वर के साथ और कपिलमुनि प्रदर्शित पुरुष अर्थात् जीवात्मा के साथ भिन्न भिन्न अर्थ या अभिप्राय में प्रयुक्त है। ऋषि दयानन्द के कथन में स्वभाव शब्द स्वसत्ता के अर्थ में अर्थात् ईश्वर नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त स्वसत्ता वाला है। कपिलमुनि के कथन में स्वभाव शब्द स्वभावना निजाकाङ्क्षा के अर्थ में अर्थात् पुरुष या जीवात्मा शुद्ध-पवित्र, बुद्ध-ज्ञानवान् मुक्त-बन्धन रहित नित्य स्वभावना शाश्वतिक निजाकाङ्क्षा रखने वाला है। अतएव स्वयं प्रकृति के साथ बन्धन में आना नहीं बन सकता परन्तु यह बन्धता है न बन्धन की स्वभावना रखता हुआ भी। इसका कारण आगे कहा जाने वाला अविवेक है जो कि इसकी स्वभावना को दबा देता है।

इस प्रकार स्वभाव शब्द ऋषि दयानन्द के कथन में ईश्वर के साथ और कपिलमुनि के कथन में जीवात्मा के साथ प्रयुक्त होकर भिन्न भिन्न लक्ष्य को प्रदर्शित करता हुआ अपने अपने क्षेत्र में सार्थक और अविरोधी है।

ऋषि दयानन्द के द्वारा 'नित्य शुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव ईश्वर है 'कथन' में 'नित्य' शब्द शुद्धबुद्धमुक्त के साथ समस्त एवं सम्बद्ध है कि नित्य शुद्धबुद्धमुक्त यह स्वभाव (स्वसत्ता) जिसका है+। और कपिलमुनि के "नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव" जीव है कथन में 'नित्य' शब्द स्वभाव के साथ समस्त संबद्ध है, स्वभाव-स्वभावना निजाकांक्षा शुद्धबुद्धमुक्त होने में जिसकी है×।

सांख्यमत में जीव स्वभाव से न बद्ध है और न मुक्त है यह स्पष्ट कहा गया है "व्यावृत्तोभयरूप:" (सां० २।१६०) तथा 'नैकान्ततो बद्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते" (सां० ३।७१)।

❀अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वी: प्रजा सृजमानां सरूपा:। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य: (श्वेताश्वतर०)।

+नित्यशुद्धबुद्धमुक्त:-इति स्वभाव (स्वसत्ता) मस्य तथा भूत:—नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव: (दयानन्द प्रयुक्ते)।

× नित्य:—शुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव है (स्वभावना-निजाकांक्षा) यस्य तथा भूत:।

महर्षि दयानन्द की सम्मति में आयु प्रमाण

[लेखक—वैद्य भूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा, अमृतधारा भवन, देहरादून]

पुराणों में जो कथायें आती हैं उनमें आयु का प्रमाण हजारों वर्ष का लिखा है। कई विद्वानों का विचार है कि यहां वर्षों को दिन समझना चाहिए। वैसा करके भी हिसाब किया तो वह भी इतने वर्ष बनते हैं जो असम्भव प्रतीत होते हैं। पुराणों के अनुसार तो नारद आदि ३ ऋषियों को चिरंजीवी भी लिखा है अर्थात् वह सदा जीवित हैं।

महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि मनुष्य की आयु ४ सौ वर्ष तक हो सकती है। ऐसा तो ठीक भी प्रतीत होता है। डेढ़ दो सौ वर्ष की आयु के तो उदाहरण मिलते ही हैं। भीष्म पितामह महाभारत के युद्ध के समय १७५ वर्ष के थे और अभी तक युवा ही थे। अर्जुन भी उनका मुकाबला न कर सकता था और वह बाणों की शय्या पर भी कितनी देर जीवित पड़े रहे थे। यदि युद्ध में मृत्यु न होती तो ४ सौ वर्ष अधिक नहीं थे। कई लोग ऐसा:—प्रश्न करते हैं

कि जब आयु नियत है तो बढ़ कैसे सकेगी ? योग दर्शन का सूत्र है :—

सति मूलेत द्विपाको जाति आयुर्भोगाः।

जिसका यह अर्थ है कि जाति आयु और भोग प्रारब्ध कर्मों के अनुसार होते हैं। इसके विपरीत वेद शास्त्रों और वैद्यक शास्त्र में आयु को बढ़ाने की प्रार्थनायें और आयु बढ़ाने के उपाय भी तो मिलते हैं। तब प्रश्न होता है कि दोनों बातें कैसे सत्य हैं ?

ये दोनों सत्य हो जाते हैं यदि हम यह समझ लें कि आयु वर्षों से नियत नहीं है बल्कि प्राणों के ऊपर निर्भर है। प्राणों के कोष को हम शीघ्र भी समाप्त कर सकते हैं देर में भी।

"ब्रह्म चर्य्येण तपसा देवा
मृत्युमुपाघ्नता"

ब्रह्मचर्य और तप से देवता ने मृत्यु को परे हटा दिया। ब्रह्मचर्य से शरीर को पुष्ट करके प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि से पूर्ण तप करके आयु को बढ़ाया। परन्तु सीमा से बाहर नहीं। महर्षि दयानन्द ने वेद मन्त्र के आधार पर ही ४ सौ वर्ष तक की सीमा कर दी है। ❀ ❀ ❀

उपनिषद् का सन्देश

त्यागपूर्वक भोग

[लेखक—श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज]

अन्नं बहु कुर्वीत ।

अर्थात् प्रभूत अन्न उत्पन्न करो याद रखो, उपनिषद् केवल आत्मा और परमात्मा का ही वर्णन नहीं करते, अपितु प्रत्येक उस बात का वर्णन करते हैं और उपदेश देते हैं जिन से मनुष्य का जीवन सुखी बन सके । इसलिए उपनिषद् ने कहा—

अन्नं बहु कुर्वीत एतद् व्रतम्—प्रभूत अन्न पैदा करे, ऐसा व्रत ले ले । आगे चल कर फिर कहा—

न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत तद् व्रतम् । तस्माद् यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात् ।

किसी अतिथि को घर से खाली न जाने दे या जो अतिथि घर में रहने के लिये आया है, उसे इन्कार न करे और इस लिये जिस किसी प्रकार से बहुत अन्न को प्राप्त करे ।

'अन्न' का अर्थ केवल अनाज ही नहीं है। अनाज तो इसका केवल एक अर्थ है। इसके अतिरिक्त दूसरे अथ हैं—प्रिय वस्तु, ऐसी वस्तु जिसकी हम कामना करते हैं, संरक्षणीय वस्तु सुखप्रद वस्तु आदि । अन्न का अर्थ है—धन, सम्पत्ति, शक्ति और वे सब वस्तुएं जो सुख देने वाली हों । दूसरे शब्दों में उपनिषद् का सन्देश यह है कि सुख सामग्री संगृहीत करो और संग्रह थोड़ा नहीं, भरपूर हो ।

याद रखिये, उपनिषद् कपड़े उतार कर जंगल में जाना तथा सिर में राख डाल कर धूनी रमा लेने की बात नहीं कहती, वे कोरे वैराग्य की शिक्षा नहीं देती—अपितु कर्म करने की शिक्षा देती हैं स्पष्ट शब्दों में कहा गया है ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।

सौ वर्ष तक जीने की इच्छा कर । सौ वर्ष तक जीवित रह । किन्तु कैसे ? क्या हाथ पर हाथ रख कर ! निष्क्रिय बन कर !! नहीं, कर्म करना हुआ जी । पुरुषार्थ करते हुए, परिश्रम करते हुए, पसीना बहाते हुए जीओ । धन कमाओ, प्रभूत धन कमाओ । आप

कहेंगे, चलो हो गई छुट्टी। अब किसी अन्य बात की आवश्यकता नहीं। किसी प्रकार धन कमाओ, यही जीवन का आदर्श है। किन्तु भूलो नहीं, मेरे भाई! ऐतरेय उपनिषद् की भृगु वल्ली में केवल यही आदेश नहीं—'अन्न बहु कुर्वीत'—बहुत अन्न उत्पन्न करो, अपितु यह भी आदेश है—'अतिथि के लिए उत्पन्न करो'। ईश उपनिषद् के प्रथम मन्त्र में इस बात को बड़े सुन्दर ढंग से कहा है—त्यक्तेन भुंजीथाः। 'भुञ्जीथाः' आदेश का वचन है। इसमें परामर्श नहीं, याचना नहीं, प्रार्थना नहीं अपितु आदेश है—भोग करो, उपयोग में लाओ। संसार में जो कुछ भी है तेरे (जीव के) लिए बनाया गया है, इसका उपभोग कर। उससे मुंह मोड़ कर भूखहड़ताल करके, न बैठ जा।

लेकिन 'भुञ्जीथाः' से पहले एक और शब्द है—'त्यक्तेन'। अर्थात् भोग करो अवश्य। उपयोग में लाओ इन वस्तुओं को। किन्तु त्याग से भोग करो। आप कहेंगे, अच्छा तमाशा हुआ—भोग भी कर त्याग भी कर—ये दोनों बातें साथ-साथ कैसे हो सकती हैं? किन्तु सुनिये, त्याग से भोग करने का तात्पर्य है—भोग करो अवश्य, संसार की वस्तुओं से उपयोग लो, किन्तु उनमें फंस न जाओ।

जूं जल भीतर पदम है,
जल में डूबत नाहिं।
ज्ञानी जग में रहत भी,
लिप्तमान हो नाहिं॥

यह है त्याग से भी भोग करने का तत्पर्य। जल में रहो, परन्तु जल में डूब न जाओ। धन उपार्जन करो, वस्तु-संचय करो। परन्तु त्याग के लिये ऐसा करो। त्याग का अर्थ है—दे देना, दान देना, वितरण करना। यह जो 'वैतरणी' नदी की बात आप सुनते हैं ना, जिसके विषय में कहा जाता है कि उसे पार करके ही मनुष्य स्वर्ग में पहुँचता है—वह क्या है? यही बांटना, दे देना, दान देना। दान दिये बिना स्वर्ग में पहुँचना असम्भव है वेद भी कहता है—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वधइत् स तस्य।

अर्थात् जो व्यक्ति अन्न को प्राप्त करके अकेला खाता है, वह विष खाता है, वह आत्महत्या करता है—अपनी मृत्यु को बुला रहा है। मनु महाराज ने भी कहा है—

दानमेकं कलौ युगे।

अर्थात् कलियुग में स्वर्ग और मुक्ति को पाने का सब से बड़ा साधन दान है।

उपनिषद् ने जहाँ यह कहा—अन्नं बहु कुर्वीत—बहुत अन्न संचित करो, बहुत सम्पत्ति एकत्र करो, यहां यह भी कहा—

न वित्तेन तर्पणीयः पुरुषः।

अर्थात् धन से मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं होती। नचिकेता गया महर्षि यम के पास। यम ने कहा—वर माँग। नचिकेता ने कहा—मैं आत्मा का ज्ञान चाहता हूँ। यम ने उसे बड़े लालच दिये, कहा—धन लो, राज्य ले लो, दीर्घ आयु ले लो, हीरे,, मोती, रत्न तथा सुख सामग्री ले लो। नचिकेता ने कहा—नहीं, यमराज! मुझे ये सब कुछ नहीं चाहिए—धन, ऐश्वर्य से मनुष्य की तृप्ति नहीं होती, मुझे तो आत्मा का ज्ञान चाहिए।

उपनिषद् केवल यह भी नहीं कहती कि प्रभूत धनोपार्जन करो, केवल यही नहीं कहती कि धन से किसी की तृप्ति नहीं होती—अपितु यह भी कहती है—

मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।

अर्थात् धन का लोभ न कर। किसी का धन छीनने का यत्न न कर। इन सब बातों का अर्थ क्या है? यह कि धन उपार्जन करो अवश्य, किन्तु दूसरों के लिए करो। नेकी से पैदा करो, नेकी में खर्च करो। यह बात कभी न भूलो कि धन से किसी की तृप्ति नहीं होती। धन आवश्यक है। संसार का काम इसके बिना चलता नहीं इसलिए उसका उपार्जन अवश्य करो, संचित भी करो, किन्तु त्याग के लिए संचय करो।

धन कितना आवश्यक है, इस विषय में अपनी एक आप बीती सुनाता हूँ, मैं जब संन्यासी बना तो संकल्प किया कि अपनी जेब में एक पैसा भी नहीं रखूंगा। तब एक नगर में गया। रात के ग्यारह बजे तक वहां भाषण करता रहा। प्रातः मुझे दूसरे स्थान पर जाना था। अतः भाषण के पश्चात् मैंने मन्त्री जी से कहा—मन्त्री जी! मुझे ४ बजे की बस से जाना है। वे बोले—हां, स्वामी जी! मुझे याद है, मैं प्रातः स्वयं आपको बस पर बैठा कर आऊंगा। मैंने कहा—आप की नींद खुल जायेगी? वे बोले—वाह, भला नींद कैसे नहीं खुलेगी? मैं सवेरे उठा, बिस्तर बाँधा और बैठ गया। मन्त्री जी नहीं आये। रात को देर से सोये नींद नहीं खुली। आखिर मैंने समाज के सेवक से कहा—भाई! तू मेरा बिस्तर उठा कर बस के अड्डे पर ले चल, मुझे अड्डे का पता नहीं।

वह बिस्तर लेकर चला और मैं अड्डे पर पहुँच गया। पहले समाज मन्दिर में बैठा था, अब अड्डे पर बैठ गया। टिकट खरीदने के लिये मेरे पास पैसा नहीं था बस आई और चली गई। मै बैठा रहा तब दूसरी बस आई और वह भी चली गई, और मैं बैठा ही रहा। तब तक कुछ प्रकाश हो गया था। उस प्रकाश में डी० ए० वी० स्कूल के हैड मास्टर ने मुझे वहां देखा। मेरे पास आकर बोले—स्वामी जी आप यहाँ बैठे हैं, क्या बस पर जायेंगे? मैने कहा—जाना तो है। उन्होंने कहा—फिर टिकट ले आऊं। मैंने लम्बा साँस लेकर कहा—ले आओ अवश्य। तब तीसरी बस पर मैं सवार हुआ और तभी से मैंने निश्चय किया कि जेब में कुछ न कुछ पैसे अवश्य होने चाहिये। धन के बिना साधु का काम भी नहीं चलता।

मैं उत्तर काशी में 'तत्त्वज्ञान' नामक पुस्तक लिख रहा था। एक सज्जन को मैंने लिखा कि मैं 'तत्त्वज्ञान' लिख रहा हूं। उन्होंने उत्तर में लिखा—"ज्ञात नहीं, आप कौन से तत्त्व की बात लिख रहे हैं? संसार में आजकल एक ही तत्त्व रह गया है और वह है—धन। यदि आप इसके विषय में लिख रहे हैं। तब तो ठीक है। यदि किसी दूसरे तत्त्व के विषय में लिख रहे हैं, तो व्यर्थ है।" इसके साथ ही उन्होंने एक श्लोक भी लिखकर भेजा—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः श्रुतवान् स गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥

अर्थात् जिसके पास धन है वही इस संसार में अच्छे कुल वाला है, वही पण्डित है, वही अच्छा भाषण देने वाला है, वही देखने योग्य है, इस संसार में सभी गुण सोने के अन्दर अर्थात् धन मे छिपे रहते हैं। आजकल तो ऐसी ही बात है।

उपनिषद् कहती है कि यह ठीक नहीं। धन अर्जन करो अवश्य, किन्तु उसमें फस न जाओ। कमाओ, किन्तु अकेले न खाओ। त्याग से भोग करो। यह उपनिषद् का सन्देश है॥

[शेष २३४ पृष्ठ का]

महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि सभी राजनीतिज्ञ, समाज-सुधारक और धार्मिक नेता स्वामी जी के अन्तरंग मित्र थे।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी नित्यानन्द ने अपने प्रयत्नों से आर्यसमाज का परिचय अधिकाधिक लोगों को देने की चेष्टा की उनका भावपूर्ण व्यक्तित्व वैदिक धर्म को विश्वधर्म के स्थान पर प्रतिष्ठित करने के प्रयत्नशील रहा इसी प्रयास में उन्होंने ५३ वर्ष के अपने अल्प जीवन में ही संसार से विदा ली।

परिश्रम

—❀❀❀—

आइये, सबसे पहले अपने चारों ओर की प्रकृति से इस प्रश्न को पूछें। ये निरन्तर गूंजते हुए झरने और सरसराती हुई पवन एक ही संदेश दे रहे हैं कि उद्योग करो। प्रकाश ने हमें दृष्टि शक्ति प्रदान की है। प्रकाश सब प्राणियों का प्राणदाता है। उस प्रकाश का हमें क्या संदेश है? यह छोटी सी लैम्प जल रही है। तेल और बत्ती निरन्तर जल रहे हैं और संसार आलोकित हो रहा है। वह मुस्काता हुआ लैम्प यही कह रहा है कि अपने को मेहनत से बचाओगे तो निष्प्राण, निरालोक, निरानन्द हो जाओगे। अगर तुम शारीरिक सुख और आराम के पीछे दौड़गे, विषयों के सुख और विलास में डूबे रहोगे, तो तुम्हारे लिए कोई आशा नहीं है। अकर्मण्यता तुम्हें मृत्यु की ओर ले जावेगी, क्योंकि परिश्रम सतत परिश्रम ही प्राण है। सड़ते हुए तालाब और बहती हुई निर्मल जलधार को देखिये। गुनगुनाती हुई नील निर्मल धारा हंसती देखती बहती जाती है और उसका पानी सदा ताजा साफ पीने योग्य और आकर्षक होता है। दूसरी ओर घिरे हुए तालाब का गन्दा मैला, सड़ता हुआ बदबूदार पानी देखिये। अगर आप जीवन में सफल होना चाहते हैं तो नदी की तरह क्रियाशील और कर्मठ रहिए। वह आदमी संसार में क्या पा सकता है जो तेल और बत्ती का खर्च बचाकर इन्हें बर्बाद कर देता है। नदी के समान सदा आगे बढ़ते रहो, नई बातों को अपनाते रहो, परिस्थितिओं के अनुकूल बनते रहो और काम किये जाओ। जीवन में सफलता का पहला सिद्धांत है उद्योग—सतत उद्योग।

"चरैवेति चरैवेति" यह उपनिषदों का सन्देश है। "चलते ही चलो, चलते ही चलो—चलना ही जीवन है रुकना ही मौत"।

अगर आप इस सिद्धान्त पर चलोगे तो देखेगे कि "बड़ा बनना भी उतना ही आसान है, जितना छोटा बनना।"

———

साहित्य परिचय

श्रद्धा के फूल

लेखक—हरिश्चन्द्र वकील
प्रकाशक—साधना मन्दिर
हांसी (हिसार)
पृष्ठ ११४ मूल्य १-२५ नये पैसे।

प्रस्तुत पुस्तक में छोटे छोटे भावात्मक १०८ लेखों का संग्रह है। लेख प्रायः ईश्वर भक्ति परक हैं। वंदना अर्चना आदि के विषय में लेखक ने सराहनीय प्रयत्न किया है। लेखक बधाई के पात्र हैं।

जीवित पितर

लेखक—पं. अमरसिंह जी आर्य पथिक
प्रकाशक—अमर प्रकाश पुस्तकालय
पृष्ठ संख्या १०२, मूल्य २)

पुस्तक आर्य समाज के धुरन्धर-विद्वान् शास्त्रार्थ महारथी श्री पं०-अमरसिंह जी की लिखी हुई है।

पुस्तक में वेद, उपनिषद्, गीता रामायण, महाभारत, पुराण आदि के प्रमाणों से पितर शब्द का जीवितों से ही सम्बन्ध है मृतक से नहीं, विद्वता से सिद्ध किया गया है।

यह सभी पुस्तकें गोविन्दराम हासानन्द
४४०८ नई सड़क देहली,
से भी प्राप्त होती हैं।

हनुमानादि वन्दर थे या मनुष्य

लेखक प्रकाशक—पूर्वोक्त
पृष्ठ संख्या १५८, मूल्य १॥)

पुस्तक को एक बार पढ़ लेने से साधारण से साधारण व्यक्ति का भी भ्रमोच्छेदन हो जावेगा और वह किष्किन्धा निवासी सभी राजा-रानियों, सैनिकों, मन्त्रियों, सेवक आदि को अपने सदृश मनुष्य माने बिना न रहेगा।

भारतीय शिक्षा—दार्शनिक

लेखक—कीर्तिदेवी सेठ
एम. ए. एम. एड., डी. लिट
प्रकाशक—वैदिक प्रकाशन
३४ लूकर गंज इलाहाबाद
मूल्य ७)

आधुनिक शिक्षा पद्धति पाश्चात्य जगत् की देन है प्रस्तुत पुस्तक में लेखिका ने दयानन्द, विवेकानन्द एनीबेसेन्ट रविन्द्रनाथ ठाकुर, गाँधी तथा अरविन्द की भारतीय शिक्षा-विद् स्वीकार किया है। लेखिका ने प्रत्येक का जीवन और कार्य, जीवन दर्शन, शिक्षा दर्शन, शिक्षा संस्थायें सहायक साहित्य ५ भागों में बांटा है यह पुस्तक लेखिका की इसी विषय के शोध-ग्रन्थ के आधार पर लिखी गई है।

★ सन्ध्या विनय ★

[लेखक:—श्री नित्यानन्द जी वेदालङ्कार, एम० ए०]

प्रथम अध्याय सन्ध्या मन्त्रों का क्रम सौन्दर्य दिखाने को लिखा गया है। दूसरे अध्याय में ईश्वर के सुबोधस्वरूप का विवेचन बहुत ही मार्मिक भाषा में किया गया है। इसको पढ़ कर नास्तिक भी ईश्वर के अस्तित्व की भावना से भर जायेगा। इसके पश्चात् लेखक ने स्तुति प्रार्थना उपासना सन्ध्या आदि शब्दों पर महर्षि दयानन्द के मनन योग्य विचार संकलित कर पुस्तक की शोभा बढ़ा दी है।

तत्पश्चात् सन्ध्या के एक एक मन्त्र का शब्दार्थ, विधि तथा बहुत ही भावना-मय भाषा में विनय (प्रार्थना) लिखी है बढ़िया कागज आकर्षक छपाई मूल्य १)

पुस्तक के सम्बन्ध में—

आर्य समाज के प्रसिद्ध नेताओं की सम्मतियाँ—

प्रभु-भक्त पूज्य श्री आनन्द स्वामी सरस्वती जी लिखते हैं:—

श्री नित्यानन्द जी वेदालङ्कार एम,ए. की मीठी लेखनी का चमत्कार उनकी कृति "सन्ध्या विनय" में देखा, सन्ध्या के हर मन्त्र के पदार्थों के पश्चात् कितनी सुन्दर प्रार्थनायें लिखी गई हैं, जो हृदय में उतरने वाली है। अपने ढंग की यह अनूठी पुस्तक है। सन्ध्या करने वाले नर-नारी, सन्ध्या के साथ यदि इन प्रार्थनाओं को पूरी मस्ती के साथ पढ़ें तो उनके चित्त पर प्रभु-भक्ति का सुन्दर रंग चढ़ेगा।

श्री पूज्यपाद पं० सातवलेकर जी की सम्मति

आपकी 'सन्ध्या विनय' पुस्तक पढ़ी, मन को बड़ा समाधान हुआ। आपने इस पुस्तक में सन्ध्या का 'हृदय' बताया है। महाभारत में श्री भीष्म पितामह जी ने कहा है—

'ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः'

आपने इस कथन को सिद्ध करके दिखा दिया है। जो आर्य आपकी इस पुस्तक के अनुसार दीर्घकाल तक रोज सन्ध्या करेंगे उनका हृदय और मन आत्मिक बल से सामर्थ्यवान बनेगा, और वे निःसन्देह दीर्घ जीवी बनेंगे।

आर्यों को महर्षि दयानन्द जी ने यह सन्ध्या दी और आर्यों पर बड़े उपकार किये। आपने इस सन्ध्या के मंत्रों का रहस्य बताकर अनुष्ठान करने की आर्यों को उत्तेजना दी है। सब आर्य जो इस पुस्तक को पढ़ेंगे आपके धन्यवाद गायेंगे।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, देहली।

—❀❀❀—

आत्मज्ञानी ही भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं

[लेखक—श्री स्वा० गंगागिरि जी महाराज, आचार्य गुरुकुल महाविद्यालय, रायकोट]

मनुष्यों में एक तो "ऋषि" होते हैं, दूसरे "साध्य" और तीसरे "देव" होते हैं। जो किसी पदार्थ का साक्षात्कार कर लेते हैं, उसके ज्ञातव्य और और ज्ञेयतत्त्व को जान लेते हैं. उन्हें "ऋषि" कहते हैं। जब वे ही महात्मा उस तत्त्व का अपने तथा लोकों के कल्याण के लिए प्रयोग करते हैं, तब उन्हें अपनी कोई चिन्ता नहीं रहती, कोई कामना नहीं रहती, तब वे "देव" हो जाते हैं। ऐसे देव मनुष्य सब को मोह लेते हैं। उनकी निष्काम-कर्म-भावना, सबका भला करने की उनकी भव्य भावना लोगों को उनकी ओर खेंचती हैं। जब प्राप्तव्य प्राप्त हो जाता हैं, और कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता, तब मनुष्य के अन्दर निष्काम-कर्म की प्रवृत्ति होती है क्या उस अवस्था में मनुष्य कर्म त्याग देता ? वेद इसका उत्तर देता है:—"युञ्जा देवाः पुरुधायजन्त"। कर्म का त्याग असम्भव है। गीता में कहा भी है—

"नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।"

अर्थात्—कोई मनुष्य एक क्षण के लिए भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता है। खाना-पीना-मलमूत्र का त्याग करना, देखना, नेत्र झपकना, आदि कर्म तो छूट नहीं सकते जीवन्मुक्त भी इन सब कर्मों को करता है। भोगपूर्त्ति के लिए उसे सारे कर्म करने ही पड़ते हैं। वह महात्मा अनुभव करता है कि मैं तो अपने प्राप्तव्य को प्राप्त कर चुका हूं। संसारी मनुष्य इधर-उधर भटक रहे हैं। इनका किसी प्रकार उद्धार होना चाहिए। जिस उपाय का आलम्बन करके मैं अपना कल्याण कर सका हूं। वह उपाय इन अबोध जीवों को भी बताऊं, ताकि ये भी अपना कल्याण कर सकें। उस अवस्था में वह महात्मा अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार घूम-

घूम कर या किसी स्थान में बैठकर विशेष रूप से वाणी द्वारा अथवा लेख द्वारा लोगों को उपदेश देने लगता है। उनका कर्म अपने लिए नहीं होता है, वह तो परोपकार के लिए और जनसाधारण के कल्याण के लिए होता है। "इदं न मम" यह मेरा नहीं है कि पवित्र भावना लगी होती है। अत: उस महात्मा का यह जीवन कर्म यज्ञ बन जाता है। वेद के शब्दों में 'गोरंगी पुरुधा-यजन्त" मनुष्यों को समझाने के लिए अनेक प्रकार की युक्तियों एवं अनेक दृष्टान्तों का प्रयोग करता है। ऋषि-यों के बनाए उपनिषद्, मुनियों के रचे हुए दर्शन, शास्त्रियों के अनुशिष्ट शास्त्र इस बात के उज्ज्वल प्रमाण हैं। ऋषियों की बात जाने दीजिये—परमेश्वर तो आप्तकाम है, उसे तो कुछ भी प्राप्त नहीं करना है; वह भी निरन्तर कर्म करता है। सृष्टि की रचना, पालन करना आदि नाना कर्म वह निरन्तर करता रहता है। सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य के हितार्थ वेद का उपदेश करता है। समय समय पर जब मनुष्य किसी पाप कर्म में प्रवृत्त होते हैं तो उनकी आत्मा में विराजमान भगवान् उन्हें रोकते हैं। इस प्रकार परमात्मा निरन्तर जीव हितकारी कर्म करता रहता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में एक स्थान पर लिखा है कि—

"प्रजापतिरात्मनो वपामुदखिदत्।"

अर्थात्—प्रजापति ने अपनी वपा निकाली और अग्नि में डाल दी। मूर्ख लोग अति गम्भीर बात को न समझ कर परमात्मा का अनुकरण करने के लिए पशुओं की वपा=चर्बी को यज्ञवेदी में डालने लगे। यह भूल उनसे 'वपा' शब्द का अर्थ न समझने के कारण हुई। वपा शब्द 'वप' धातु से बनता है। 'वप' का अर्थ है "बीज का बोना" दूसरा अर्थ है 'वप' का "काटना" इससे "वपा" शब्द का अर्थ बोना और काटना होता है। जो बोया जाता है, उसे काटना भी आवश्यक है। किसान अन्न बोता है और समय आने पर उसे काटता भी है। ब्राह्मण वचन का अर्थ हुआ—"भगवान् ने अपनी प्रकृति की गति दी और उसे जीवों के अर्पण कर दिया" इसी प्रकार परमात्मा को मिलने के अभिलाषियों को चाहिये कि अपनी प्राकृतिक सम्पत्ति यथा-सम्भव, यथाशक्ति, जीवों के अर्पण कर देनी चाहिये। यह कार्य है तो कठिन, परन्तु है अनिवार्य। इसके बिना परमात्मा को मिलने का और कोई उपाय नहीं है।

जिस प्रकार जीवों के कल्याण के लिये नाना विध कर्म करता हुआ भी परमात्मा कर्मबन्धन में नहीं पड़ता है—इसी प्रकार प्राणियों के उद्धार के लिये निष्काम भाव से नानाविध कर्म करने वाले यह पुरुष=महात्मा को भी कर्म नहीं बांधता। वेद में कहा भी है।

"न कर्म लिप्यते नरे"। य० ४०।२।

निष्काम कर्म करने वाले मनुष्य को कर्म लिप्त नहीं करता है। अर्थात्–मनुष्य के बन्धन का कारण नहीं बनता है। अतः वे महात्मा निरन्तर सत्कर्म करते रहते हैं मनुष्यों के कल्याण के लिए। इसलिए इन महात्माओं ने निष्काम कर्म करने की युक्ति और शक्ति, सर्वज्ञान-निधान सर्वशक्तिमान भगवान् से ही प्राप्त की है। अतः वे सदा परमात्मा के संग में रहते हैं। इसी तत्त्व को वेद ने कहा है—

'मुग्धा देवा उत शुनायजन्त''

परमात्मा से सम्बन्ध बनाए रखने के दो साधन हैं। प्रथम=योगाभ्यास, द्वितीय=वेद का स्वाध्याय। दोनों का सांझा नाम है "ब्रह्मयज्ञ"। जो सज्जन परमात्मा से अपना सम्बन्ध बनाए रखना चाहें, उन्हें प्रतिदिन बिना नागा ब्रह्मयज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए। ब्रह्मयज्ञ कभी किया, कभी न किया, कभी बला टाल दी, इस अव्यवस्थित एवं अनियमित रीति से करने पर यह अभीष्ट लाभ नहीं देता। वरन योगीराज पतंजलि के शब्दों में—

"स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः"॥

इसका भाव यह है कि वह तो दीर्घ काल तक, लगातार श्रद्धाभक्ति पूर्वक, अनुष्ठान करने से दृढ़ होता है। लोकोपकारार्थ शास्त्र-रचना भी ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत है। ब्रह्मयज्ञ के इस सूक्ष्म रहस्य को बहुत थोड़े सज्जन जानते हैं। समझने वाले तो और भी कम हैं। हमें तो उसका पता बताओ—

"य इमं यज्ञं मनसा चिकेत"

जो इस ब्रह्मयज्ञ को मन से विचार करना जानता है और करता है अर्थात् जिसने इस यज्ञ की सारी प्रतिक्रिया को समझ लिया है, वही दूसरों को समझा सकता है। अतः ऐसे महात्मा की खोज करनी चाहिए। उससे ब्रह्मयज्ञ की विधि सीखनी चाहिए। देवयज्ञ से हवन से वायु की शुद्धि हो कर वर्षा होती है। ब्रह्मयज्ञ से आत्मा में पवित्रता

आती है। शरीर तो अनित्य है। बाल, यौवन, वृद्धावस्था, रूप और परिवर्त्तन इसकी अनित्यता का प्रमाण है। देवयज्ञ में अग्नि में भौतिक पदार्थ=घृत-सामग्री-समिधा आदि भौतिक द्रव्य डालने होते हैं। ये सब अनित्य हैं। देवयज्ञ को द्रव्य-यज्ञ भी कहते हैं। ब्रह्मयज्ञ में घी-सामग्री आदि का कोई प्रयोजन नहीं—वहां तो परमात्मारूपी अग्नि में आत्मा की हवि देनी होती है—अर्थात् आत्मा का समर्पण करना होता है। आत्मविस्मृति के बिना आत्मसमर्पण करना असंभव है। अतः द्रव्ययज्ञ की अपेक्षा ब्रह्मयज्ञ कठिन और उत्कृष्ट है। क्योंकि द्रव्ययज्ञ से वायु की शुद्धि होती है और ब्रह्म यज्ञ से आत्मा की पवित्रता से ब्रह्म सम्बन्ध प्राप्त होता है। इसी कारण वेद ने देवयज्ञ की अपेक्षा ब्रह्मयज्ञ को उत्तम बताया है।

"यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत। अस्तु नु तस्मादोजीयो यद् विहव्येनेजिरे" ॥

विद्वान् लोग जो पुरुषरूप हवि से यज्ञ करते हैं, यह यज्ञ उसकी अपेक्षा अधिक ओज वाला होता है और बलवान् होता है। वे हव्य हवन सामग्री विविध प्रकार से करते हैं। अपना आपा देने की अपेक्षा घी और सामग्री देना सहल और सरल है। अपना आपा देने में बल चाहिए। इसी कारण हव्ययज्ञ=द्रव्ययज्ञ=देवयज्ञ की अपेक्षा पुरुषयज्ञ=अर्थात् ब्रह्मयज्ञ ओजीय है=अधिक बलशाली है। इस मन्त्र के उत्तरार्ध में एक संकेत किया है, द्रव्ययज्ञ का एक प्रकार नहीं है। अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय, आप्तोर्याम, ज्योतिष्टोम, अग्निष्टोम, दर्शपौर्णमास, वैश्वदेव आदि नाना यज्ञ हैं। वेद में लिखा है "पुरुकामो हि मर्त्यः" मनुष्य में नाना कामनाएं हैं। उन नाना कामनाओं की सिद्धि के लिए नाना प्रकार के यज्ञ किए जाते हैं। उनमें विधिभेद का होना स्वाभाविक और अनिवार्य है। किन्तु ब्रह्मयज्ञ की विधि एक है।

किसी को यह भ्रम न हो जाय कि देवयज्ञ अकर्त्तव्य है। नहीं, नहीं कदापि नहीं। जिस प्रकार जीवन्मुक्त को भी शरीरयात्रानिर्वाह के लिए खाना पीना होता है। इसी प्रकार शरीर जीवन के लिये, अत्यावश्यक वायु जल आदि की शुद्धि के लिए द्रव्य यज्ञ भी आवश्यक है। रोगी शरीर वाला ब्रह्मयज्ञ को कर नहीं सकता है। योगदर्शन में लिखा

है कि रोग ईश्वर-प्रणिधान में पहला विघ्न है। अतः शरीर और शरीर के साधनों को शुद्ध रखना भी मनुष्य का कर्त्तव्य है। अतः शरीर और शरीर के साधन वायु, जल आदि की शुद्धि के लिए देवयज्ञ भी करना आवश्यक है।

शरीर आत्मा के लिये है। आत्मा के सुख-दुःख भोगने का साधन शरीर है। इसमें रह कर आत्मा इन्द्रियों द्वारा प्रिय-अप्रिय पदार्थों के संयोग और वियोग के कारण इष्ट और अनिष्ट को प्राप्त करता है। इस आत्मा का यह भी उपकरण है। उपकरण की सत्ता दूसरे के लिए होती है। इसलिए शरीर भी आत्मा के लिए है। प्रारब्ध कर्मों के फल भोगने के लिए है। अतः आत्मा सबसे उत्कृष्ट है और उसका कल्याणकारी ब्रह्मयज्ञ है जो कि शरीर हितकारी देवयज्ञ से ऊंचा है। श्रेष्ठ है। अतः निष्काम कर्म करने वाले विद्वान् इस ब्रह्म यज्ञ के द्वारा उस परम-सुखधाम परमानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं॥

गुरुदत्त लेखावलि पर सम्मतियाँ

(१) "आर्य समाज ने पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी जैसा परम उच्च कोटि का स्कालर पैदा करके पाश्चात्य ओरिएन्टल स्कालर को कड़ी चुनौती दी है। आज पश्चिमी पंडितों का अनुकरण करके वेद का अर्थ करने वाले भारतीय स्कालरों को पं० गुरुदत्त विद्यार्थी की शैली से प्रेरणा प्राप्त कर उनका अनुसरण करना चाहिए। इस प्रकाशन से पश्चिमी सभ्यता में रगीं हुई हिन्दी भाषी जनता का उपकार होगा और वह महर्षि के सिद्धान्तों का रहस्य समझ सकेंगे।" **कर्मवीर श्री पं. आनन्द प्रिय जी बड़ौदा**

(२) "स्व० पं० गुरुदत्त की प्रतिभा से कौन परिचित नहीं। ऐसे उच्च-कोटि के साहित्य अध्ययन से पाठकों के हृदय में वैदिक धर्म के प्रति प्रेम उत्पन्न होगा ऐसा निश्चित विश्वास है।" **आचार्य विश्वश्रवा जी**

(३) "प्रस्तुत अंक पं० गुरुदत्त जी के लेखों का उपलब्ध हिन्दी अनुवाद अंकित है। वेदप्रकाश प्रति वर्ष कोई महत्व पूर्ण पुस्तक विशेषांक के रूप में प्रस्तुत करता है। उसकी यह योजना स्तुत्य है।" **सार्वदेशिक मासिक दिल्ली**

(४) 'यह अंक पठनीय है ज्ञान वृद्धि का सहज उपाय है। प्रकाशक का उद्योग सराहनीय ही नहीं अनुकरणीय है।" **परोपकारी मासिक अजमेर**

वार्षिक मूल्य ३) देकर आप भी ग्राहक बन जाइये।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क देहली।

स्वामी नित्यानन्द और देशी राज्य

[लेखकः श्री पं० भवानीदयाल जी एम० ए०]

[सितम्बर मास में श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज की जन्म शताब्दी उनके जन्मस्थान जालोर ग्राम में राजस्थान प्रतिनिधि सभा की ओर से मनाई गई थी। महर्षि दयानन्द के पश्चात स्वामी नित्यानन्द जी ने वैदिक धर्म की वह दुन्दुभी बजाई थी जिसने भारत के सभी नरेशों को आकर्षित किया था। लेखक ने इस लेख में स्वामी जी व नरेशों के सम्बन्ध का उल्लेख किया है —सम्पादक]

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने देशोत्थान के लिए स्वदेशस्थ नरेशों को जागरूक और कर्तव्योन्मुख करने का स्पृहणीय प्रयास किया। उनकी यह धारणा थी कि यदि राजाओं का चरित्र सुधर जायगा और वे अपनी प्रजा के प्रति अपने अपने कर्तव्य पालन में दत्तचित्त हो जायेंगे तो राष्ट्र के जागरण में अधिक समय नहीं लगेगा। इसी दृष्टिकोण को दृष्टिपथ में रखकर स्वामी जी ने राजस्थान के राजाओं को प्रभावित किया। जिन नरेशों ने स्वामी जी की शिक्षाओं को शिरोधार्य कर उन्हें अपना गुरु समझा उनमें उदयपुर नरेश महाराणा सज्जनसिंह जी, जोधपुर नरेश के अनुज ईडर नरेश महाराजा सर प्रतापसिंह, शाहपुराधीश राजाधिराज श्री नाहरसिंहजी आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार रायपुर, मसूदा के अन्यान्य छोटे बड़े ठाकुर तथा जागीरदार भी उनके शिष्य बने।

स्वामी जी के आकस्मिक देहान्त से उनकी योजना पूर्णतया क्रियान्वित नहीं हो सकी। परन्तु हमें यह देखकर संतोष होता है कि इसी राजस्थान की पुण्यभूमि में उत्पन्न एक अन्य आर्यसंन्यासी ने महर्षि के इस शेष कार्य का दायित्व अपने सुपुष्ट कंधों पर लिया और नरेन्द्र मण्डली को प्रभावित करने के लिए सन्नद्ध हो गया। इस प्रातः स्मरणीय संन्यासी का नाम है स्वामी नित्यानन्द ब्रह्मचारी। मारवाड़ के जालोर नामक कस्बे में आज से १०० वर्ष पूर्व एक श्री माली ब्राह्मण पं० पुरुषोत्तम के घर में बालक रामदत्त ने जन्म लिया। श्री मालियों के कट्टरपन्थी (orthodox) कुल में जन्म लेकर भी

बालक रामदत्त संसार के समक्ष सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परमहंस परिव्राजक श्री स्वामी नित्यानन्द के रूप में आया और उसने आर्य जगत का अपनी अपूर्व प्रतिभा, मेधा और कर्तव्यनिष्ठा से नेतृत्व किया।

स्वामी नित्यानन्द का देशी राज्यों से तथा उनके नरेशों से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रहा है। सर्व प्रथम आर्य नरेश श्री-नाहरसिंह जी शाहपुराधीश उनके तेजस्वी व्यक्तित्व ओजस्वी चरित्र और वैदुष्य की ओर आकृष्ट हुए। जिस समय स्वामी नित्यानन्द और उनके चिरबन्धु स्वामी विश्वेश्वरानन्द ने आर्यसमाज का कार्य करना स्वीकार किया उस समय शाहपुराधीश को कितनी प्रसन्नता हुई होगी उसका अनुमान ही लगाया जा सकता है।

सर्वप्रथम हम स्वामी जी के बड़ौदा नरेश अत्यन्त सुधार प्रिय स्व० महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़ से सम्बन्ध की चर्चा करेंगे। स्वामी जी का बड़ौदा नरेश से परिचय महामति महादेव गोविंद रानाडे ने कराया। रानडे के परिचय पत्र से ही स्वामी जी की महाराजा से प्रथम भेंट ता० २७-१०-१८९५ में हुई। प्रथम भेंट में ही महाराजा पर स्वामीजी की योग्यता का प्रभाव पड़ा और उनकी चिरस्थायी मित्रता हो गई। बड़ौदा राज्य में जितने सुधार कार्य स्व० सयाजीराव गायकवाड़ के द्वारा हुए हैं उनके पीछे स्वामी नित्यानन्दजी की प्रेरणा कार्य कर रही थी, यह निश्चय है। स्वामी जी के लिए बड़ौदा राजभवन के द्वार सदा खुले रहते थे। वे अन्तःपुर में उपदेशों के लिए साग्रह आमन्त्रित किये जाते। यदा कदा महाराजा साहब स्वामी जी के साथ ही भोजन भी करते। स्वामी जी की प्रेरणा से ही महाराजा ने आर्य धर्म परिषद् की अध्यक्षता ग्रहण की और उसमें वैदिक सिद्धांतानुकूल भाषण दिया था। राज्य में अनिवार्य शिक्षा, दलितोद्धार, पुरातन संस्कृत ग्रंथों का प्रकाशन, पौरोहित्य शिक्षण आदि आदि के महत्वपूर्ण कार्य हुए उनमें स्वामी जी का ही प्रमुख हाथ रहा है। महाराजा साहब को जब तब स्वामी जी के परामर्श की आवश्यकता होती वे तुरन्त उन्हें स्मरण करते। उनका पत्र व्यवहार तो महाराजा के विलायत जाने पर भी चलता रहता था। स्वामी जी के द्वारा प्रकाशित वैदिक कोष के प्रकाशन के कार्य का महत्व अनुभव करते

हुए बड़ौदा राज्य कीओर से १५००० रु० दिये गये थे।

बड़ौदा के पूर्व स्वामी जी का मैसूर नरेश से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था। २८ नवम्बर १८९४ को स्वामी जी की मैसूर नरेश से प्रथम भेंट हुई। महाराजा की सम्मति से एक वैद्धिक धर्मवर्धिनी सभा की स्थापना हुई जिसके संरक्षक स्वयं मैसूर नरेश बने। स्वामी जी के व्याख्यानों को महाराजा ने रिकार्ड करवा लिया ताकि उनको यथावसर सुना जा सके। उन्होंने तो स्वामी जी के लोकोपकार के कार्य से प्रभावित होकर अपने (house hold controller,) गृह विभाग के प्रबन्धक को स्पष्ट आज्ञा दी "स्वामी जी के सामने सब खजाना खोल दो"

इन्दौर नरेश भी स्वामी जी के अनन्य भक्त थे। तत्कालीन शासक स्व० शिवाजीराव होलकर ने स्वामी जी से निवेदन किया कि राज्य की ओर से उन्हें १००० रु० प्रतिमास भेंट के रूप में मिलेगा और वे केवल इन्दौर राज्य में ही प्रचार करें। परन्तु 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ध्येय रखने वाला संन्यासी एक राज्य को ही अपना कार्य क्षेत्र कैसे बना सकता था। श्री शिवाजीराव होलकर के पुत्र श्री तुकोजीराव होलकर भी स्वामी जी की योग्यता से अत्यन्त प्रभावित थे। इन्होंने वैदिक कोष के निर्माणार्थ, जब तक कार्य पूरा न हो जाय, ४८०० रु० प्रति वर्ष देने की आज्ञा की थी।

शाहपुराधीश से स्वामीजी का जो प्रेम भाव था, उसकी तो चर्चा करना ही अनावश्यक है क्योंकि वे तो सर्वतोभावेन वैदिक धर्मावलम्बी थे और स्वयं महर्षि दयानन्द द्वारा दीक्षित हो चुके थे। स्वामी नित्यानन्द ने काश्मीर की कौन्सिल के प्रधान राजा अमरसिंह जी को कादियानी सम्प्रदाय के प्रभाव से मुक्त किया। हैदराबाद दक्षिण में स्वामी जी के भाषणों पर वहां के असहिष्णु शासक ने प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें राज्य से निर्वासित कर दिया था, जिसकी समाचार पत्रों में कटु आलोचना हुई। इसी प्रकार बूंदी के महाराज ने अपने साम्प्रदायिक पक्षपात के कारण बूंदी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ के पश्चात् स्वामी जी को अपने राज्य की सीमा से बाहिर कर दिया। परन्तु इस प्रकार के धार्मिक पक्षपातपूर्ण युक्त कार्य के लिए उनकी सर्वत्र निन्दा ही हुई।

उदयपुर नरेश स्व० महाराणा फतहसिंह जी ईडर नरेश महाराजा सर प्रतापसिंह जी, नाभा नरेश

स्व० हीरासिंह जी, नरसिंहगढ़ नरेश आदि भी स्वामी जी के भक्त थे। मौरवी के ठाकुर साहब और प्रिन्स हरभाम जी से आपने महर्षि दयानन्द के जन्म स्थान का पता लगाने का यत्न किया था। यद्यपि उन्हें इसमें उचित सफलता नहीं मिली। इसी प्रकार नेपाल के प्रिन्स नरसिंह राणा, अवध (प्रतापगढ़) की रानी रामप्रिया, बाराबंकी के राजा पृथ्वीपालसिंह जी आदि भी स्वामी जी के प्रति आदरभाव रखते थे और उनके उपदेशों के लिये लालायित रहते थे।

छोटे मोटे राज्यों, ठिकानों, जागीरों तथा ताल्लुकों के स्वामी भी स्वामी जी के प्रति उतने ही आकृष्ट थे जितने बड़े नरेश। स्वामी जी के ऐसे भक्तों में जोवनेर के ठाकुर कर्णसिंहजी का नाम उल्लेखनीय है। ये ठाकुर साहब स्वामी जी को संस्कृत में ही पत्र लिखते थे। जोवनेर के वर्तमान ठाकुरराव नरेन्द्रसिंह जी भी आर्यसमाज के भक्त हैं। इसी प्रकार मसूदा के ठाकुर श्री बहादुरसिंह जी तथा कोटा राज्य के अन्तर्गत कुनाड़ी ठिकाने के श्री विजयसिंह जी भी स्वामी जी के अनुरक्त भक्त थे। जापान में होने वाले धर्म सम्मेलन में वैदिक धर्म के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित होने के लिये उक्त ठा० विजयसिंह जी ने स्वामी जी से प्रेरणा की थी।

इसी प्रकार देवास, नरसिंहगढ़, दांता, झालावाड़ आदि अन्य कितने ही राज्यों के शासक स्वामी जी के भक्त थे। स्वामी जी का मुख्य निवास स्थान शिमला में शान्तकुटी नामक आश्रम था।

शिमला प्रवास के कारण स्वामी जी अनेकों यूरोपियन अधिकारियों और भारत में भ्रमण के लिये आने वाले विद्वानों और यात्रियों के सम्पर्क में आते रहते थे।

भारत के तत्कालीन प्रसिद्ध नेताओं तथा समाजसुधारकों से भी ब्रह्मचारी नित्यानन्द की घनिष्टता थी। न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे, जस्टिस चन्दावरकर, भारतीय राजनीति के भीष्मपितामह दादाभाई नौरोजी, प्रसिद्ध सुधारक पारसी बहराम जी मेहरबान जी मलबारी, प्रसिद्ध पत्रकार और लेखक सन्त निहालसिंह, मदनमोहन मालवीय, ब्राह्म समाज के नेता

(शेष पृष्ठ २३० पर)

[गताङ्क से आगे]

व्याख्यान माला

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना ।
काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥ ८ ॥

गृहस्थी का कर्तव्य है कि वह प्रातःकाल और सायंकाल अतिथि का सत्कार करे। चाहे अतिथि भोजन के समय में आये या असमय में उसे बिना खिलाये घर में न ठहराये उसे भोजन जरूर कराये ॥ ८ ॥

यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनि वर्तते ।
श्रान्तायादृष्टपूर्वाय तस्य पुण्यफलं महत् ॥ ९ ॥

जो सज्जन व्यक्ति मार्ग में चलते हुए थके हुए दुखी मुसाफिर को अन्न देता है, और जिस से पूर्व परिचय न हो ऐसे को अन्न देने वाले व्यक्ति को बड़ा भारी पुण्य मिलता है यह कार्य बड़े पुण्य का है ॥ ९ ॥

नावमन्येदभिगतं न प्रणुद्यात्कथञ्चन ।
अपि श्वपाके शुनि वा न दानं विप्रणश्यति ॥ १० ॥

अतिथि का कभी भी तिरस्कार न करे और न उसे किसी प्रकार का कष्ट देवे। क्योंकि चाण्डाल आदि को दिया हुआ दान भी नष्ट नहीं होता है। अतिथि का सत्कार ही करे ॥ १० ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ ११ ॥

तृण, भूमि, जल, और सरल ऋतभाषी वाणी यह चारों सज्जनों के घर से कभी पृथक् नहीं होतीं। सज्जनों के पास यह सदा वर्तमान रहती हैं ॥ ११ ॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ।
तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ १२ ॥

सन्यासी और ब्रह्मचारी यह दोनों ही पकाये हुए भोजन के अधिकारी हैं। यदि कोई इन दोनों को न देकर भोजन करता है तो वह प्रायश्चित्त के लिये चान्द्रायण व्रत का आचरण करे। इसलिये यति और ब्रह्मचारी का सबसे पहले ध्यान रखना चाहिये ॥ १२ ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ।
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥ १३ ॥

आसन देते समय आसन का, तथा शय्या करने के समय बिस्तर का, आने के समय आदर सत्कार का ध्यान रखना चाहिए कि जो उत्तम श्रेष्ठ पुरुष हो तो उसको उत्तम आसनादि दे जो हीन हो उससे हीन जैसा वर्ताव करे तथा जो बराबर का हो उसके साथ बराबर का व्यवहार करे ॥ १३ ॥

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च ।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥ १४ ॥

जो मनुष्य आदर सत्कार किये जाने पर ही अर्चित वस्तु ग्रहण करता है और जो पूजा किये जाने पर अर्चित व्यक्ति को ही दान देता है। वह दोनों स्वर्ग जाते हैं तथा जो इससे विपरीत आचरण करते हैं वह नरक में जाते हैं ॥ १४ ॥

काष्ठभारसहस्रेण घृतकुम्भशतेन च ।
अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः ॥ १५ ॥

जिस व्यक्ति के घर से अतिथि निराश होकर लौटता है। वह व्यक्ति यदि हजारों मन समिधा जलाकर और सैकड़ों घड़े घृत की आहुति देकर भी यज्ञ करता है तो वह यज्ञ भी उसका निरर्थक हो जाता है ।१५।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥ १६ ॥

जिस गृहस्थी के घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है वह अतिथि उसके लिए सम्पूर्ण दुष्कर्मों का फल देकर और उसके सब पुण्यों को लेकर चला जाता ॥ १६ ॥

अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥ १ ॥

जो मनुष्य केवल अपने ही निमित्त भोजन पकाकर खाता है वह समझो पाप का भक्षण कर रहा है। क्योंकि यज्ञ करके उससे शेष का ही भोजन करना चाहिए क्योंकि वही सज्जनों का सत्य है ॥ १७ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १८ ॥

जो मनुष्य यज्ञ शिष्ट का ही भक्षण करने वाले हैं वह सब पापों से छूटकर आनन्द पाते हैं। और जो केवल अपने ही लिये पचन करने वाले हैं वह केवल पाप का ही भोग करते हैं ॥ १८ ॥

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ १९ ॥

जो गृहस्थी निर्बुद्धि होकर बिना विचारे ही दूसरों के अन्न का सेवन करते हैं। वह उस अपने किये के कारण अन्नदाताओं के पशु बनते हैं। पशुता को प्राप्त होकर अन्नदाताओं के घर रहते हैं ॥ १९ ॥

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादि ॥ २० ॥

अप्रचेता मूर्ख मनुष्य व्यर्थ ही अन्न को प्राप्त करता है। यह सत्य है कि वह अन्न ही उसकी मृत्यु का कारण बनता है। वह मूर्ख न तो श्रेष्ठ पुरुषों का ही उससे पोषण करता है और न मित्रों का ही पोषण करता है। जो अकेला भक्षण करता है वह पाप ही खाता है। वह पापी होता है ॥ २० ॥

न्यायागतेन द्रव्येण कर्तव्यं पारलौकिकम् ।
दानं हि विधिना देयं काले पात्रे गुणान्विते ॥ २१ ॥

जो द्रव्य या अन्न हमारे पास न्यायपूर्वक आये हैं उनसे हमें पारलौकिक पुण्य कर्म करने चाहियें। समयानुसार गुणों से युक्त योग्य पात्र को विधि पूर्वक दान भी देना चाहिये। २१ ॥

न क्लेशेन विना द्रव्यं न द्रव्येण विना क्रिया ।
क्रियाहीने न धर्मः स्याद्धर्महीने कुतः सुखम् ॥ २२ ॥

क्लेश पाये बिना द्रव्य प्राप्ति नहीं होती और द्रव्य के बिना श्रेष्ठ कर्म भी नहीं होने पाते। जब कर्तव्य ही न करें जायेंगे तो धर्म भी नहीं हो सकता। धर्म से हीन होने पर सुख कहां। धर्म करने से ही सुख मिलता है ॥ २२ ॥

स जीवति य एवैको बहुभिश्चोपजीव्यते ।
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः ॥ २३ ॥

जीवित पुरुष वही माना जाता है जो अपने साथ और भी बहुत से मनुष्यों को पालता है जिसको अन्य पुरुष भी जिलाना चाहे। किन्तु

जो मनुष्य केवल अपने ही पेट भरने के लिये जीते हैं वह जीवित होते हुए भी मरे हुए ही हैं ॥ २३ ॥

माता पिता गुरुर्भार्या प्रजा दीनः समाश्रितः ।
अभ्यागतोऽतिथिश्चापि पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ २४ ॥

माता, पिता, गुरु, पत्नी, सन्तान, दीन, और अपने आश्रित छोटे जन, तथा आया हुआ अतिथि यह पोष्यवर्ग में हैं इनका पोषण करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है ॥ २४ ॥

सार्वभौतिकमन्नाद्यं कर्तव्यं तु विशेषतः ।
ज्ञानविद्भ्यः प्रदातव्यमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ २५ ॥

सब प्राणिमात्र के लिये यह सार्वभौतिक अन्न देना उचित है तथा इसका भी संग्रह करना उचित है । किन्तु विशेषकर ज्ञानवान् विद्वानों को उसका दान देना चाहिये । यदि मूर्खों को दिया जायेगा तो नरक की प्राप्ति होगी ॥ २५ ॥

न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वह्निशुश्रूषया तथा ।
गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चातिथिपूजनात् ॥ २६ ॥

गृहस्थी लोग बहुत बहुत यज्ञ करके भी तथा बहुत दक्षिणा देकर भी दक्षिणापूर्वक यज्ञ करने से भी उतने स्वर्ग सुख विशेष को नहीं प्राप्त करते । जितना कि अतिथि की सेवा सत्कार से सुख प्राप्त होता है । २६ ।

यदि योगी तु संप्राप्तो भिक्षार्थी समुपस्थितः ।
योगिनं पूजयेन्नित्यमन्यथा किल्विषी भवेत् ॥ २७ ॥

यदि कोई योगी अपने घर पर आया है और भिक्षा के लिये उपस्थित हुआ है तो गृहस्थी का कर्तव्य है कि योगी की पूजा अवश्य करे उसका सत्कार करे अन्यथा पापी बनता है ॥ २७ ॥

यथा भस्म तथा मूर्खो विद्वान्प्रज्वलिताग्निवत् ।
होतव्यं च समिद्धेऽग्नौ जुहुयात्को नु भस्मनि ॥ २८ ॥

जैसे भस्म राख होती है इसी प्रकार भस्म के समान ही मूर्ख होता है और अच्छी तरह प्रज्वलित अग्नि के समान विद्वान् होता है । इसलिये प्रज्वलित अच्छी तरह समिद्ध अग्नि में ही यज्ञ किया जाता है राख में कौन आहुति डालता है । इसी तरह मूर्ख को दान न देकर विद्वान की सेवा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ।
सर्वेषामेव जन्तूनां यतस्तज्जीवितं परम् ॥ २६ ॥

सब प्रकार के दानों में अन्न का दान ही परम श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि सभी प्राणि मात्र उसी अन्न के सहारे जीते हैं अन्न के द्वारा ही जीवन धारण करते हैं ॥ २९ ॥

कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते ।
अपहन्यात् क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः ॥ ३० ॥

जो क्षीण पुरुष हैं उसके लिये, स्नातक के लिये, जिसकी वृत्ति नहीं है उसके लिये, और दुखी के लिए, अन्न का दान देकर जो इनकी क्षुधा को शान्त करना है। उस दाता पुरुष के समान और कोई दाता नहीं है ॥ ३० ॥

—❀❀—

ब्रह्मचर्यम्

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्य के तप के द्वारा ही राजा राष्ट्र की रक्षा तथा पालन करता है। और आचार्य भी अपने ब्रह्मचर्य के द्वारा ही ब्रह्मचारी की इच्छा करता है उसे चाहता है ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्य के तप के द्वारा ही देवता लोग मृत्यु का उल्लंघन कर जाते हैं मृत्यु को भी दूर कर देते हैं। इन्द्र भी अपने ब्रह्मचर्य के तप से ही देवताओं पर शासन करता है और ब्रह्मचर्य के तप से ही देवताओं को सुख देता है ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीषति ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्य के द्वारा ही कन्या युवा श्रेष्ठ पति को प्राप्त करती है। बैल तथा घोड़े अपने ब्रह्मचर्य से ही घास का भक्षण करते हैं और पचाकर शक्तिशाली बनते हैं ॥ ३ ॥

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम् ।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्य्यमेकान्तनिर्मलम् ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्य ही सबसे श्रेष्ठ तथा पवित्र है। यह ब्रह्मचर्य ही यश की आयु की तथा धर्म की प्राप्ति कराने वाला है यह दोनों लोकों के लिये रसायन हैं इसलिये हम इसी का अनुमोदन करते हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्य्यं परं शौचं ब्रह्मचर्य्यं परन्तपः ।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणास्ते दिवं गताः ॥ ५ ॥

ब्रह्मचर्य ही सबसे श्रेष्ठ परम पवित्र है और ब्रह्मचर्य ही परम तप है। जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं यह मर कर मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

समुद्रतरणे यद्वदुपायो नौः प्रकीर्तिता ।
संसारतरणे तद्वद्ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम् ॥ ६ ॥

जैसे समुद्र को पार करने के लिये नौका ही सब से श्रेष्ठ उपाय है उसी प्रकार इस संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिये ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ उपाय है ॥ ६ ॥

नीरोगः कान्तिसम्पन्नः सर्वदुःखविवर्जितः ।
ब्रह्मचारी भवेल्लोके पाप्मना च विवर्जितः ॥ ७ ॥

जो ब्रह्मचारी होता है वह नीरोग रहता है कान्ति से सम्पन्न रहता है और सब दुखों से दूर रहता है। इस संसार में सदा पाप कर्मों से दूर रहता है ॥ ७ ॥

किं बहूक्तेन लोकेऽस्मिन्साधनं यद्धि विद्यते ।
ब्रह्मचर्ये तु तत्सर्वमन्तर्भवति सर्वथा ॥ ८ ॥

अधिक बतलाने से क्या लाभ है इस संसार में सुख पाने के जो भी साधन हैं उन सब से श्रेष्ठ परम साधन ब्रह्मचर्य ही है और सब साधन भी इसी में समा जाते हैं ॥ ८ ॥

यथा गजपदे सर्वे पादा अन्तर्भवन्ति हि ।
नैतस्मादधिकं किञ्चिद् ब्रह्मचर्याद्धि विद्यते ॥ ९ ॥

इस ब्रह्मचर्य से बढ़कर इस संसार में कोई भी साधन नहीं है इस से उत्तम कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है जैसे हाथी के पैर में सब पैर समा जाते हैं इसी तरह सब साधन इसी में समा जाते हैं ॥ ९ ॥

सर्वसाधनसम्पन्ना ब्रह्मचर्यविवर्जिताः ।
क्लेशं हि मुनयो भेजुर्विद्वांसोऽपि च कोटिशः ॥ १० ॥

जो विद्वान तथा मुनि सर्व प्रकार के साधनों से युक्त थे और ब्रह्मचर्य से वे रहित थे तो ऐसे करोड़ों विद्वानों ने तथा मुनियों ने कष्ट ही प्राप्त किया । ब्रह्मचर्य रहित होने से कष्ट में ही रहे सुख प्राप्त न हुआ ।१०।

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥ ११ ॥

मन से वाणी से तथा कर्म से सर्वथा सभी अवस्थाओं में तथा सर्वत्र ही मैथुनों का त्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है । अष्ट प्रकार के मैथुनों का हर अवस्था में सदा त्याग करना ही ब्रह्मचर्य्य माना जाता है ॥ ११ ॥

आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह ।
न तस्य किञ्चिदप्राप्यमिति विद्धि नराधिप ॥ १२ ॥

इस संसार में जो मनुष्य जन्म से लेके मृत्यु पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उन ब्रह्मचारियों के लिये कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं होती । वह सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं ॥ १२ ॥

ये तपश्च तपस्यन्ति कौमारा ब्रह्मचारिणः ।
विद्यावेदव्रतस्नाता दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ १३ ॥

जो कुमार ब्रह्मचारी हैं और जो तपस्या करने वाले हैं । तथा जो विद्या के वेद के और व्रत के स्नातक हैं वह सम्पूर्ण दुःसह दुखों को पार कर जाते हैं । उन्हें कोई दुख नहीं होता ॥ १३ ॥

सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते ।
सुखं पर्य्येति लोकांश्च मनश्चास्य प्रसीदति ॥ १४ ॥

जो संयमी पुरुष है वह सुख से सोता है तथा सुखपूर्वक ही प्रातः

उठता है। सुखपूर्वक सब लोकों में घूमता है। इसका मन प्रसन्न रहता है ॥ १४ ॥

अदान्तः पुरुषः क्लेशमभीक्ष्णं प्रतिपद्यते ।
अनर्थांश्च बहूनन्यान् प्रसृजत्यात्मदोषजान् ॥ १५ ॥

जो पुरुष अदान्त है इन्द्रियां वश में नहीं रखता है वह सदा बड़े-बड़े दुःखों को भोगता रहता है। और बहुत से आत्मा के दोष से पैदा हुए अनर्थों का करने वाला होकर दुख ही पाता रहता है ॥ १५ ॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ १६ ॥

इन्द्रियों का स्वभाव है कि वे सदा विषयों की तरफ दौड़ती हैं उन विषयों में विचरने वाली इन्द्रियों को विद्वान् यत्न करके इस प्रकार संयम में रखे जिस प्रकार अच्छा सारथी घोड़ों को रखता है ॥ १६ ॥

आपदां कथितः पंथाइन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥ १७ ॥

इन्द्रियों का संयम न करना उन्हें खुली छोड़े रखना यह मार्ग आपत्ति का बताया है। और इन्द्रियों का दमन करके उन्हें वश में रखना यह मार्ग सम्पत्तियों का सुख देने वाला बताया है। जो अच्छा हो उसी पर चलना चाहिये ॥ १७ ॥

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः ।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥ १८ ॥

जो मनुष्य धर्म का और अर्थ का परित्याग करके इन्द्रियों के पीछे ही चलता है उनके वश में रहता है। वह जल्दी ही लक्ष्मी से प्राणों से धन से और स्त्री से रहित हो जाता है ॥ १८ ॥

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः ।
क्षयो ह्यस्य बहून्दोषान्मरणं चाधिगच्छति ॥ १९ ॥

इस हमारे भोजन का शुक्र ही एक मुख्य अंश है इसकी प्रयत्न से रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि इसके नष्ट करने से मनुष्य बहुत से दोषों को यहां तक कि मृत्यु को भी प्राप्त करता है ॥ १९ ॥

नवदम्पति को भेंट देने योग्य अनुपम

★ उपहार ★

भारतीय स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण व चिरस्थायी बनाने के लिये आज भारत को कर्मवीर, बुद्धिमान् व शौर्य-सम्पन्न युवकों की आवश्यकता है। उस आवश्यकता की पूर्ति आपके हाथों में है।

क्या आप चाहते है कि आपकी सन्तान समाज में सम्मान प्राप्त करे यदि हां! तो उसके लिए प्रयत्न करना आपका कर्त्तव्य है।

किस प्रकार ?

यह जानने तथा अनेक कर्त्तव्य से परिचित होने के लिए

इच्छानुसार संतानोत्पत्ति

यह पुस्तक मँगा कर अवश्य पढ़िए। पुस्तक पढ़ कर आप अनुभव करेंगे कि 'पुत्र या पुत्री, धर्मात्मा या पापी, शासक या चोर, जितेन्द्रिय या व्यभिचारी, गौर या श्याम वर्ण की" सन्तान का निर्माण तथा बर्थ कन्ट्रोल अपने ही हाथों में है।

इसकी महत्ता पढ़ने से ही विदित होगी

सजिल्द मूल्य २।।) डाक व्यय पृथक—

लेखकः—

वीरेन्द्र गुप्त

प्राप्ति स्थान—**वीरेन्द्रनाथ अश्विनी कुमार**

प्रकाशन मन्दिर, बाजार चौक, मुरादाबाद।

स्वाध्याय उपयोगी पुस्तकें

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	४॥)
वाल्मीकि रामायण (शुद्ध संस्करण)	१२)
उपनिषदार्य्य भाष्य (आठ उपनिषदें)	६)
बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला	३)
ओंकार निर्णय	१॥)
सृष्टि का इतिहास	२)
वैदिक प्रार्थना	१॥)
वैदिक सिद्धान्तों पर बहनों की बातें	१।)
कर्तव्य दर्पण	१)
आर्य समाज क्या है ?	॥।)
वैदिक सन्ध्या रहस्य	।=)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
दर्शनान्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध	५)
दयानन्द चित्रावली	२॥)
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या	॥)
नास्तिकवाद	॥)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
विवाह और विवाहित जीवन	२॥)
ब्रह्मचर्य जीवन-वीर्य नाश मृत्यु	।=)
वैदिक गृहस्थाश्रम	५)
ऋषि गाथा महाकाव्य	४)
संस्कार विधि विमर्श	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
तत्त्वज्ञान - म० आनन्द स्वामी	३)
प्रभु दर्शन "	२॥)
प्रभु भक्ति "	१॥)
आनन्द गायत्री कथा "	॥≡)।
एक ही रास्ता "	॥।-)
सत्यनारायण व्रत कथा "	॥=)
भगवान शंकर और दयानन्द "	॥)
मानव जीवन गाथा या जीवन गीत "	१)
भक्त और भगवान "	१)
स्वाध्याय संग्रह (स्वामी वेदानन्द)	२)
वेद परिचय "	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्य समाज का इतिहास	१।=)
आर्षयोग प्रदीपिका	३[illegible])
घर गृहस्थी	३॥)
गीत श्रद्धांजलि (भजन)	१)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१)
आदर्श सुधारक दयानन्द	॥=)
गृहस्थाश्रम (दयानन्द)	[illegible])
बाल शिक्षक "	।=)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)
स्वामी दयानन्द और वेद	।)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
आर्य सत्संग गुटका	-।)
विश्व विज्ञान परमात्मा बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	॥)
मांस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	=।)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	-।)

चित्र	चित्र	चित्र
महर्षि दयानन्द	२० × ३०	१)
गुरु विरजानन्द	"	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	"	१)
पण्डित लेखराम	"	१)
महात्मा हंसराज	"	१)

सचित्र जीवन [illegible] × २[illegible]

महर्षि दयानन्द [illegible] महत्ता २० × ३०

मोटोज साइज १[illegible] × [illegible]२ मूल्य प्रत्येक

सन्ध्या मन्त्र, प्रार्थना मन्त्र, संगठन सूक्त,

यम नियम व्याख्या

मोटोज साइज ११ × १४ मूल्य प्रत्येक =)

सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र, दीर्घ जीवन की प्रार्थना सत्यंवद धर्मं चर।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस में छपवाया।

✽ ओ३म् ✽

वेद प्रकाश

हमारा आगामी विशेषांक

आदरणीय पाठकगण !

जैसा कि गत अङ्क में सूचना दी थी हमारा जनवरी मास का अङ्क **"राधा स्वामी मतालोचना अङ्क"** होगा। आज आर्य समाज की शिथिलता से, आर्य समाज के सभासदों के स्वाध्याय न करने से, आर्य नेताओं के अन्य झगड़ों में उलझे रहने से मत और मतान्तरों की बन आई है। नये नये मत फिर सिर उठा रहे हैं। पुराने भी अगंड़ाई लेकर उठने लगे हैं उन में से एक है राधा स्वामी मत। आज राधा स्वामी मत के सत्संगों में इतनी भीड़ होती है कि आर्य समाज के वार्षिकोत्सवों में भी नहीं होती। इस का कारण है सस्ती मुक्ति। राधा स्वामी मत क्या है यह स्वयं जाने वालो को भी पता नहीं। क्या आप जानना चाहते हैं कि राधा स्वामी मत क्या है? इनके सिद्धान्त क्या हैं? इसके गुरु कौन थे? इनकी पुस्तकों में वेद, शास्त्र ऋषि मुनियों की कैसी निन्दा की गई है? इनकी पुस्तकों में किस प्रकार के बिना सिर पैर के गपोंड़े हांके गये हैं? यदि आप ये और इसी प्रकार की अन्य अनेक बातें जानना चाहते हैं तो आज ही "वेद प्रकाश के राधा स्वामी मतालोचना अङ्क" की अपनी प्रति सुरक्षित करा लीजिये। स्वयं पढ़िये और दूसरे लोगों को पढ़ाइये। इसका प्रचार कीजिये और कराइये। इस पाखण्ड से स्वयं बचिये और अन्य लोगों को बचाइये।

एक अङ्क का मूल्य ।) २५ प्रतियें मंगाने के लिये ५) भेजें, ५० प्रतियों के लिए १०) भेजें १०० प्रतियां मंगाने के लिये १८) भेजें। यह मूल्य हर हालत में कार्यालय में १५ दिसम्बर से पूर्व पहुँच जाना चाहिये अन्यथा आपको निराश होना पड़ेगा।

वेद प्रकाश का वार्षिक मूल्य ३) रुपया है। वार्षिक ग्राहक बनने वालों को यह अङ्क और इस वर्ष का मुख्य विशेषाङ्क **"गुरुदत्त लेखावली"** वार्षिक मूल्य में ही मिलेगी। "विद्यार्थी"

अवैतनिक सह सम्पादक **जगदीशचन्द्र 'विद्यार्थी'** प्रभाकर, साहित्यरत्न

महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट के लिए आप क्या दे रहे हैं?

महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा के प्रधान जस्टिस श्री मेहर चन्द जी महाजन की कोठी पर १३-नबम्बर को ट्रस्ट का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ।

सेठ नान जी भाई कालीदास मेहता ने डेढ़ लाख रुपये के दान से टंकारा में एक विशाल राजमहल खरीद कर दिया। अब उन्होंने ७० फीट ऊंचा पर पच्चीस हजार रुपये की लागत घण्टाघर भी बनवा दिया है।

ट्रस्ट ने पिछले दो वर्षों के थोड़े समय में कई महत्वपूर्ण कार्य किये हैं जिनमें से मुख्य मुख्य विभाग अनुसंधान विभाग, टंकारा पत्रिका दयानन्द विविध लक्षी विद्यालय महर्षि दयानन्द गौशाला, ब्रह्मचर्याश्रम, आदि हैं।

परन्तु मुख्य कार्य टंकारा ट्रस्ट का है एक सर्व सम्पन्न उपदेशक विद्यालय। पिछले वर्ष के देहली अधिवेशन में श्री महाजन जी ने घोषणा की थी कि टंकारा में हम एक ऐसा उपदेशक विद्यालय बनायेंगे जहां उच्च कोटि के अनेक भाषा विद् उपदेशक तैयार कर सकें। उनकी योजना के अनुसार उन उपदेशकों से कार्य भी टंकारा ट्रस्ट लेगा और उन्हें अच्छा वेतन तथा पेन्शन आदि भी देगा। और इस का वार्षिक खर्च एक लाख रुपये से आरम्भ होगा। और इस एक लाख रुपये की राशि को एकत्रित करने के लिए उन्होंने एक हजार ऐसे ऋषि भक्तों को आह्वान किया जो एक मुश्त १०००) देकर दस लाख रुपये की स्थिर निधि बना दे। इस दस लाख रुपये का वार्षिक ब्याज एक लाख रुपया उन्हें खर्च के लिए प्राप्त होता रहेगा।

पिछले वर्ष श्री महाजन जी ने लगभग डेढ़ लाख रुपयों के वायदे ले लिये थे। उन्हें विश्वास है कि आर्यसमाज में ऐसे एक हजार व्यक्ति नहीं बल्कि दस हजार व्यक्ति निकल आवेंगे जो एक-एक हजार रुपया देकर महर्षि दयानन्द के मिशन को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करेंगे।

मेरा यह निश्चित विश्वास है कि वेदप्रकाश के पाठकों में भी ऋषि भक्तों की कमी नहीं हैं। दो चार दस नहीं बल्कि सैकड़ों वेदप्रकाश के पाठक एक एक हजार रुपये इस उपदेशक विद्यालय के लिए देंगे। यदि वे स्वयं नहीं दे सकते तो एक-एक हजार रुपये इकट्ठे करके देंगें।

उपदेशक विद्यालय के अतिरिक्त टंकारा ट्रस्ट इस समय ३०००) मासिक खर्चा कर रहा है। एक-हजार मासिक तो किसी न किसी प्रकार प्राप्त हो जाता है। शेष दो हजार के लिए हमेशा चिन्ता रहती है। इस प्रकार पिछले कुछ ही महीनों में ट्रस्ट पर १७, १८ हजार का कर्ज भी हो गया है।

आर्य समाजियों के लिए यह सोचने की बात है। यदि भविष्य में आर्य समाज की ज्योति जगमगाती रहे, यह इच्छा आप में है तो टंकारा ट्रस्ट के हाथ मजबूत कीजिये।

वेदप्रकाश कार्यालय में प्राप्त टंकारा ट्रस्ट की राशि हर महीने वेद प्रकाश में प्रकाशित करेंगे।—सम्पादक

❀ ओ३म् ❀

वेद प्रकाश

संस्थापकः—स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

वर्ष—६ : मार्गशीर्ष २०१७ वि० : दिसम्बर १९६० : वार्षिक मूल्य ३)
अंक—५ : दयानन्दाब्द १३६ : मार्गशीर्ष १८८२ : विदेशों से ६ शिलिंग

बांट कर खाना चाहिए

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥

॥ ऋ० १०।११७।६ ॥

(अप्रचेताः अन्नम्) मूर्ख, बे समझ मनुष्य अन्न को (मोघम् विन्दते) व्यर्थ ही प्राप्त करता है। (सत्यम् ब्रवीमि) सच कहता हूँ (सः तस्य) वह [धन लाभ] उसके लिए (वधः इत्) मौत, हत्या ही [है] [जो] (न) न तो (अर्यमणम्) माननीय की, उत्तम मान वाले की (पुष्यति) पुष्टि करता है, पालन करता है [और] (न) न ही (सखायम्) मित्र की [पालना करता है] (केवलादी) अकेला खाने वाला (केवलाघः) केवल पापी ही (भवति) होता है।

जिसे धन की चंचलता, अस्थिरता का बोध नहीं है, उसे वेदमन्त्र में अप्रचेताः=बेसमझ कहा गया है। समझदार जानता है कि एक दिन धन चला जाएगा। अतः वह इस का मित्रों, धर्मात्माओं और पात्रों में विनियोग करके सुखसाधन जुटाता है इसके विपरीत जो कंजूस किसी दुःखी के दुःख दूर करने का यत्न नहीं करता, उसके लिए यही धन विपत्ति और मृत्यु का कारण बन जाता है। धनी सदा ही भयभीत रहता है। उस का आत्मिकबल और मानसिक सामर्थ्य धन के भार से दब कर नष्ट हो जाते हैं। अकेले खाना पाप खाना है। जैसे भय, लज्जा और संकोच के कारण पापी मनुष्य पाप के लिए एकान्त स्थान खोजता है, किसी के सामने पाप करने का साहस नहीं करता इसी प्रकार अकेला खाने वाला भी मानो, पापी है, अन्यथा वह अकेला न खाता, साथ खाता, बांट के खाता।

सम्पादकीय टिप्पणियां

आर्य विद्वानों की शोचनीय दशा

'नवनीत' नवम्बर १९६० में एक संकलन छपा है "मेरी प्रिय पुस्तक" 'नवनीन' ने देश के मनस्वी चिन्तकों, साहित्यकारों एवं पत्रकारों से प्रश्न किया था, "सात दिन के प्रवास में आप किन दो पुस्तकों को साथ रखना पसन्द करेंगे।" पत्रिका में ४९ व्यक्तियों के नाम छपे है उनमें से आर्य विद्वानों के उत्तर ये हैं—

(१) श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार	आउट लाइन आफ हिस्टरी, रंगभूमि।
(२) श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	भगवत्‌गीता, शरत की कहानियों का संग्रह।
(३) श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	भगवत्‌गीता, उत्तर राम-चरित
(४) श्री नरदेव जी शास्त्री, वेदतीर्थ	पञ्चदशी, गीता
(५) श्री सन्तराम बी० ए०	पुरुष, प्रकृति
(६) श्री हरिशंकर शर्मा	रामचरित मानस का गुटका, गीता का गुटका

दूसरे विद्वान् कुछ भी कहें और कुछ भी लिखें हमें कोई दुःख नहीं परन्तु आर्य विद्वानों के इन उत्तरों को पढ़ कर प्रत्येक आर्य को वेदना होगी ही। जब विद्यालंकार, विद्यावाचस्पति और वेदतीर्थ वेद नहीं पढ़ते तो दूसरे तो पढ़ेंगे किस प्रकार। महर्षि दयानन्द वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म बताये हैं। परन्तु जब गुरुकल कांगड़ी जैसी संस्था के भूतपूर्व उपकुलपति स्वर्गीय श्री इन्द्र जी ही वेद नहीं पढ़तें तो विद्यार्थियों से वेद पढ़ने की आशा कैसे की जा सकती है? आचार्य नरदेव जी का तो वेदतीर्थ करना भी व्यर्थ ही रहा। उपाधि लेने का महत्व नहीं है वेद पाठ करने का महत्व है। जिस विद्यालय का आचार्य जो दूसरों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत करता है वह ही वेद नहीं पढ़ते तो उनके छात्रों से क्या आशा की जा सकती है। वेदतीर्थ जी का उत्तर तो वैसे ही कमाल का है। जिस पञ्चदशी का महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में खण्डन किया है आपने उसको ही पढ़ना अपना परम कर्तव्य माना है। इसी प्रकार श्री चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार ने उत्तर-रामचरित पढ़ने के लिये लिखा है

जिसमें यह सिद्ध किया गया हैं कि प्राचीन समय में आर्य मांस खाते थे। श्री सन्तराम जी डी० ए० वी० कालिज के छात्र रहे हैं और आर्य जगत् में साहित्य सृजन का कार्य कर रहे हैं, आपने भी वेद के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों का ही नाम लिख मारा है। श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा का उत्तर भी आश्चर्य चकित करने वाला है। श्री हरिशंकर जी आर्य जगत् के नेता माने जाते हैं। आप आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० के भूतपूर्व प्रधान भी हैं। आपने गीता और रामायण का गुटका रखने की बात लिखी है। स्मरण रहे स्वामी जी महाराज ने तुलसी रामायण को भी कपोलकल्पित और जाल ग्रन्थों में माना है।

यह है आर्य विद्वानों की दशा। जब वेदी पर आकर बैठते हैं तो वेद पढ़ने की दुहाई देते हैं परन्तु स्वयं वेद नहीं पढ़ते यही कारण है आज उपदेशों का प्रभाव भी नहीं होता। एक कवि ने ठीक ही कहा है—

तालीम का शोर इतना तरक्की का जोर इतना।
बरकत जो नहीं होती नियत की खराबी है॥

वेदी पर बैठ कर वेद पढ़ने की बात और घर में बैठ कर गीता, पञ्चदशी, उत्तरराम चरित और रामारण पढ़ना—ठीक है हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और।

जाल ग्रन्थों को छोड़ वेद पढ़ो, वेद का स्वाध्याय करो तभी कल्याण है।

कवि सम्मेलन या वेद सम्मेलन

जिस समय महर्षि दयानन्द भारतीय रंगमञ्च पर आये उस समय वेद एक दबी हुई पुस्तक थी। महर्षि ने जर्मनी से वेद मंगवाये और वेदाध्ययन का आदेश दिया। महर्षि वेद के कार्य को मुख्य समझते थे। जो कार्य महर्षि दयानन्द को इतना प्रिय था वह आर्य समाज को भी इतना ही प्रिय होना चाहिए था परन्तु बात सर्वथा विपरीत है। आर्य समाज में वेद सम्मेलनों का आयोजन होना चाहिए था। उचित तो यह था कि महर्षि की भावना के अनुकूल प्रत्येक आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर वेद सम्मेलनों का आयोजन होता परन्तु आज वेद सम्मेलनों को तिलाञ्जलि देकर कवि-सम्मेलन हो रहे हैं। ये कवि सम्मेलन क्या है वस्तुतः तो कपि सम्मेलन हैं। एक संस्कृत के कवि ने वहुत सुन्दर कहा है—

विद्वत्कवयः कवयः केवल काव्यस्तु केवलं कपयः।

अर्थात् विद्वान् कवि ही वास्तव में कवि है इसके विपरीत विद्या रहित कवि तो केवल कपि ही है। और यदि मुझे क्षमा किया जाये तो मैं

सत्य कहता हूँ कि इन सम्मेलनों में विद्वान् कवि तो आते ही नहीं केवल कपि ही आते हैं। यदि कोई विद्वान् आ भी जाये तो उसे मन्त्री और प्रधान जो अपने आपको समाज का ठेकेदार समझते हैं, बोलने ही नहीं देते। अभी पिछले दिनों आर्य समाज करौल बाग के वार्षिकोत्सव पर वहां के कवि-सम्मेलन में एक संन्यासी ने कहा कि यह कवि सम्मेलन वेद मन्त्रों से आरम्भ होना चाहिए आप मुझे ५ मिनट दे दें तो मैं कुछ वेद मन्त्र और दो श्लोक महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में बोलूं। पाठक सोचते होंगे स्वामी जी को ५ मिनट तो अवश्य मिले होंगे परन्तु नहीं, ऐसा नहीं हुआ। स्वामी जी को दो मिनट का समय भी नहीं दिया गया।

मैं आर्य समाज के सदस्यों से, अधिकारियों से और नेताओं से पूछना चाहता हूँ कि क्या आर्य समाज का काम कवि सम्मेलन करना है? आज समाज के उत्सवों में न सिद्धान्तों पर व्याख्यान होते हैं और न वेद मन्त्रों पर। वेद के नाम पर पैसा इकट्ठा करके बर्बाद किया जाता है। विज्ञापन छपता है कि वेद कथा होगी परन्तु स्मृति या चाणक्य नीति के किसी श्लोक की व्याख्या हो जाती है। वेद न पढ़ने वाली साधारण जनता को क्या पता कि वेद की कथा हो रही है या संस्कृत के वाक्य बोले जा रहे हैं।

ये कवि सम्मेलन और वेद से इतर ग्रन्थों की व्याख्या तो अन्य मतावलम्बी भी कर लेंगे। कवि सम्मेलन तो नानक पन्थी, दादू पन्थी, कबीर पन्थी भी कर लेंगे परन्तु वेद सम्मेलन आर्य समाज और केवल मात्र आर्य समाज ही कर सकता है। अतः आर्य समाज को अपनी शक्ति वेद सम्मेलनों की ओर ही लगानी चाहिये। वेद का प्रचार और प्रसार कराना चाहिये। यदि आगामी वर्ष देहली की कुछ भी समाजों ने कवि सम्मेलनों के स्थान पर वेद सम्मेलनों का आयोजन किया तो मैं अपने इस परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

अनुकरणीय प्रयास

भारत ग्लास कम्पनी के मालिक ला० गणेशदास जी श्रद्धालु आर्य सज्जन हैं। आप के घर दैनिक यज्ञ तो होता ही है इसके अतिरिक्त प्रति दिन क्रमवार किसी न किसी वेद के मन्त्रों से विशेष आहुतियां दी जाती हैं और वेद की समाप्ति के समय एक उत्सव रचाया जाता है। ऐसे उत्सव वर्ष भर में तीन चार तो अवश्य ही होते हैं। २० नवम्बर से ४ दिसम्बर तक उनके यहां अथर्ववेद से यज्ञ हो रहा है। इसी उत्सव के उपलक्ष में २७।११।६० को उनके यहां एक वेद पाठ प्रतियोगिता भी हो रही है जिस में शुद्ध एवं सस्वर पाठ में प्रथम आने वाले व्यक्ति को सौ रुपये का पुरस्कार या गोल्ड मैडल दिया जायेगा। पुरस्कार की कुल राशि ५००) तक होगी।

इस प्रतियोगिता में कोई भी स्त्री पुरुष भाग ले सकेगा। इस अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय आयोजन पर मैं श्री गणेशदास और उनके परिवार को हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वे इसका आयोजन करते हुए वेद के प्रति लोगों की रुचि को बढ़ाते रहेंगे।

आज गीता का प्रचार बहुत अधिक है। क्या आपने कभी सोचा कि ऐसा क्यों? मेरे विचार में इसका कारण गीता सम्मेलनों और जयन्तियों का आयोजन करना है। इन आयोजनों में जिन्हें गीता कण्ठस्थ होती है उन्हें स्वर्ण एवं रजत पदक दिये जाते हैं। उन्हें और भी अन्य प्रकार के पुरस्कार दिये जाते हैं। मैंने यहां तक देखा है कि यदि एक व्यक्ति ने एक श्लोक भी सुना दिया तो उसे भी एक गीता की प्रति दे दी जाती है।

वेद हमारा परमधर्म है। परन्तु वेद के प्रति दूसरों की तो बात ही क्या आर्यों में ही रुचि नहीं हैं और न आर्य समाज के कर्णधार, नेता और समाज के अधिकारी गण इस ओर ध्यान देते हैं। यदि ला० गणेश दास जी की भांति अन्य धनी मानी व्यक्ति और आर्य समाजें भी इस पद्धति को अपनाएं, शुद्ध और सस्वर वेद पाठ करने वाले को सम्मानित करें, उन्हें पुरस्कार दें तो आर्य जगत् में कुछ ही समय में अनेक सस्वर वेद पाठ करने वाले विद्वान् बन सकते हैं और यह प्रथा चलती रहे तो वह दिन दूर नहीं जब पुनः वेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी और चतुर्वेदी भी आर्य जगत् में हो सकते हैं।

यदि इस प्रणाली को अपनाया जाये तो सचमुच इससे बड़ा लाभ हो सकता है। क्या मैं आशा करूं कि समाजों के अधिकारी और सम्पन्न व्यक्ति इस ओर ध्यान देंगे?

दयानन्द मौडल स्कूल:—

अन्य आर्य समाजों की भांति आर्य समाज बेयर्ड रोड (अनारकली) अब रीडिंग रोड के अन्तर्गत भी एक विद्यालय चल रहा है जिस का नाम है "दयानन्द मौडल स्कूल" जिस समय यह विद्यालय खुला था तब मैंने ५००० पोस्टर छपवा कर वितरित कराये थे। पोस्टर विद्यालय में होने वाली सहशिक्षा के विरुद्ध लिखा गया था। आज इसी विद्यालय के सम्बन्ध में फिर लिखना पड़ रहा है। अभी १९-२० नवम्बर को आर्य समाज रीडिंग रोड का वार्षिकोत्सव था। रविवार को "दयानन्द मौडल स्कूल" की कन्याओं ने भी एक गायन प्रस्तुत किया। उन में से प्रत्येक लड़की ने दो दो चोटियां की हुई थी। सब के सिर नग्न थे। आर्य समाज के उत्सवों में सभी व्यक्ति तो आर्य नहीं होते? भले घर की बेटियों को दूसरों के समक्ष नचाना क्या यह कोई गौरव की बात है? एक ओर तो आर्य

समाज की वेदी से कांग्रेस द्वारा जो नाचने गाने और तबला बजाने वाले लोगों के सांस्कृतिक मिशन भेजे जाते हैं उनका खण्डन किया जाता है दूसरी ओर महर्षि दयानन्द की वेदी पर लड़कियों से गाने गवाये जाते हैं यह विडम्बना नहीं तो और क्या है ? मैं पूछना चाहता हूँ क्या लड़कियों के गाने से आर्य समाज के सिद्धान्तों का अधिक प्रचार होता है। यदि होता हो तो फिर उपदेशकों के भरती करने की क्या आवश्यकता है सब उपदेशकों को निकाल कर लड़कियों की ही भरती कर लेनी चाहिये और उनके ही भजन होने चाहिये। कुछ ही दिन में आर्य समाज चमक उठेगा (?) क्यों ठीक है न ?

दयानन्द मौडल स्कूल में से सह शिक्षा का बहिष्कार करके उसमें आदर्श शिक्षा दो अन्यथा इस पर से दयानन्द नाम हटा कर इसका नाम "मौडल स्कूल" रख दो फिर लड़कियों से गवाओ या उन्हें नचाओ कोई आर्य समाजी न कुछ कहेगा न लिखेगा।

सुनिये महर्षि दयानन्द गान विद्या के सम्बन्ध में क्या लिखते हैं—

"गान्धर्ववेद कि जिस को गान विद्या कहते हैं उसमें स्वर राग रागनी, समय, ताल, ग्राम, वादित्र नृत्य गीत आदि को यथावत् सीखें परन्तु मुख्य करके सामवेद का गान वादित्र वादन पूर्वक सीखे और नारद संहिता आदि जो जो आर्ष ग्रन्थ हैं उन को पढ़ें परन्तु भड़वे वेश्या और और विषयासक्ति कारक वैरागियों के गर्दभ शब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें।" सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास

इन पंक्तियों को अपने समक्ष रख कर सोचिये कि जिस महापुरुष के नाम पर आप स्कूल चला चला रहे हैं क्या वह स्कूल उनके वेद प्रतिपादित सिद्धान्तों और मन्तव्यों के अनुकूल है यदि है तो ठीक यदि नहीं है तो उसके लिये दो ही मार्ग हैं या तो इन के साथ महर्षि का नाम मत जोड़िये अथवा इन्हें बन्द कर दीजिये जो शिक्षा आप दे रहे हैं। वर्तमान कांग्रेस सरकार भी तो वही शिक्षा दे रही है।

दो शब्द में बालकों के माता पिताओं से भी कहना चाहता हूँ। आज का वातावरण बहुत दूषित है, अपने बच्चों को दूसरों के सामने गाने से रोकिये अन्यथा यह प्रवृत्ति भयंकर से भयंकरतम हो सकती है।

"विद्यार्थी"

दान

[लेखक:—महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज]

धन कमाओ। वस्तु संग्रह करो, परन्तु त्याग के लिए ऐसा करो। त्याग का अर्थ है, विभक्त करना, दान करना, बांटना। संस्कृत में इसे 'वितरण' करना कहते हैं। यह जो वैतरणी नदी की बात आप सुनते हैं ना! जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उसे पार करके ही व्यक्ति स्वर्ग में पहुँचता है वह है क्या? यही बांटना, दे देना, दान देना। दान दिये बिना सुख प्राप्त होना असम्भव है। वेद भी कहता है!

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्य ब्रवीमि वध इत्स तस्य।

(ऋ० १०।११७।६)

जो व्यक्ति अन्न को संग्रह करके अकेला खा जाता है उसके लिये वेद भगवान् कहता है कि वह विष खाता हैं। वह आत्महत्या कर रहा है। मृत्यु को बुला रहा है और साथ ही पूरी शक्ति से कहता है 'सत्यं ब्रवीमि' मैं सत्य कहता हूँ इसमें सन्देह के लिये स्थान नहीं। और फिर मनु जी महाराज ने भी कहा है—

दानमेकं कलौ युगे।

कलियुग में स्वर्ग और मुक्ति पाने का सब से बड़ा साधन है दान! कई लोग पूछते है कि आनन्द स्वामी! यह आसन, प्राणायाम, यम नियम तो बहुत कठिन हैं। और ये प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधि और भी कठिन हैं। क्या ईश्वर को पाने का कोई सरल मार्ग नहीं? तो सुनो मेरे भाई। सरल मार्ग भी है।

दानमेकं कलौ युगे।

दान करो। ऐ धनिको! अपना धन दूसरों को दो, जहां वह समा[ज] के काम आये। इस को (Fixed-Deposit) स्थिर निधियां न बना[ते] जाओ। ये फिक्स डिपोजिट रहें[गे] नहीं। कोई उन्हें रहने नहीं देगा। अपनी आवश्यकताओं को कम करो। बढ़ाओ नहीं। थोड़ी वस्तुओं से निर्वा[ह] करने का स्वभाव बनाओ। योग की भाषा में इस को अपरिग्रह कहते हैं। अर्थात् संग्रह न करना। अंग्रेजी [में] जिसे Hoarding कहते हैं वह न करना। पांच धोतियों और पांच कुर्तों में यदि निर्वाह होता है तो पांच ट्रं[क] एकत्रित करने का लाभ क्या है। [ये] ट्रंक साथ तो जायेंगे नहीं। अन्त [में] यहीं रह जायेंगे। तब इसके लि[ये] अपने आप पर और मन पर बो[झ] क्यों डालते हो।

आई अजल* तो आप अकेले चले ग[ये]।

अन्त में तो सब कुछ छोड़ कर चले जाना है। पहले किसी को ए[क]

* मृत्यु

वस्तु भी देना नहीं चाहता। जब मृत्यु आती है तो एक भी वस्तु को साथ नहीं ले जा सकता—

आई अजल तो आप अकेले चले गये।
घर में जमा था सब कुछ मगर कुछ न ले गये॥

आज तक कोई ले नहीं गया। आप के मौहल्ले में या ब्लाक में कोई ले गया हो तो मुझे बताओ। नहीं, आज तक कोई लेकर नहीं गया। कोई लेकर नहीं जा सकता। यह सब कुछ यहीं रह जाता है।

पाकिस्तान बनने से पूर्व एक दिन मैं मुलतान से आगे जा रहा था। डेरा इस्माईल खाँ पहुँचना था। दरिया से नौका में बैठ कर नदी को पार करना था। गाड़ी जा रही थी बहुत तेज। तभी बहुत जोर से धक्का लगा। कई लोग अपनी सीटों से नीचे आ गिरे। गाड़ी रुक गई। गाड़ी के रुकते ही कई लोग शोर मचाने लगे, टक्कर हो गई। मैं भी नीचे उतरा। इंजन की ओर चला यह देखने की टक्कर किस वस्तु से हो गई है। कुछ लोग मुझ से पूर्व इंजन के पास हो आये थे। उन से मैंने पूछा, "क्या हुआ?" तो वे बोले, "रेल की लाइन पर पहाड़ आकर बैठ गया है।" मैंने आश्चर्य से कहा, "पहाड़ कैसे आकर बैठ गया है?" उन्होंने कहा, "स्वयं जाकर देखो! रेत का पहाड़ रेल की पटड़ी पर बैठा है।" और मैंने वहां जा कर देखा कि वस्तुतः रेत का एक ऊंचा टीला पटड़ी के ऊपर है। चकित होकर मैंने कहा, "यह टीला पटड़ी के ऊपर आ गया है या कि पटड़ी टीले के नीचे चली गई है?" वहाँ उस प्रदेश के कुछ लोग भी थे। उन्होंने कहा, पटड़ी टीले के नीचे नहीं, टीला पटड़ी के ऊपर आ गया है। यह रेतीला प्रदेश है। तीव्र आँधी चलती है तो रेत के पहाड़ उड़ने लगते हैं। उड़ते-उड़ते कभी-कभी पटड़ी के ऊपर आ बैठते हैं।" मैंने पूछा, "क्या वर्ष भर ये पर्वत इसी प्रकार उड़ते रहते हैं?" उन्होने बताया, "नहीं, जब वर्षा हो जाये तब नहीं उड़ते। तब रेत भी नहीं उड़ती। उस समय मुझे शास्त्र की बात स्मरण ही आई कि यह धन रूपी पहाड़ उड़ने वाला है। एक स्थान पर बहुत समय तक नहीं रहता। दान रूपी वृष्टि इस पर हो जाये तो फिर नहीं उड़ता।

ओ धनिको! दान की वर्षा करो इस धन पर। नहीं तो स्मरण रक्खो कि यह पर्वत उड़ कर कहीं अन्यत्र चला जायेगा। यह उड़ने वाला पर्वत है।

और फिर मरने वाले का सब से बड़ा मित्र भी दान ही है। दिया हुआ दान उसके साथ जाता है। दबाया हुआ तो कभी जाता नहीं। स्थिर निधि और भवन भी नहीं जाते। इसलिए वेद भगवान् ने कहा "त्याग से भोग कर।"

—❀❀❀—

वेद पर्यालोचन

[लेखक—आचार्य द्विजेन्द्रनाथ विद्यामार्त्तण्ड मेरठ]

वर्त्तमान युग, विज्ञान विकास का युग है आज विज्ञान, विकास के शिखर पर पहुँचा हुआ प्रतीत होता है। पाश्चात्य विद्वानों का तो यह पूर्ण विश्वास है, कि मनुष्य मस्तिष्क ने प्रकृति पर अद्भूत विजय प्राप्त कर ली है। जल, स्थल, गगन सभी पर वैज्ञानिकों का अपूर्व साम्राज्य है। अब चन्द्र आदि लोकान्तरों पर अनवरत्त आक्रमण हो रहे हैं। और अदूर भविष्य में लोक-लोकान्तरों पर उन्हें विजय अवश्य मिल जायगी। उनका कथन है कि यह वैज्ञानिक उन्नति उसी क्रमिक विकास का परिणाम है। जिसका स्वाभाविक अंकुर आदिम मनुष्यों के कोमल मस्तिष्कों में अंकुरित हुआ था।

और डर्विन का विकासवाद, इसी थियूरी की मूलभित्ति पर खड़ा हुआ है।

परन्तु इस मान्यता का भवन भूमिसात् हो जाता है जब हम वेदों का पर्यालोचन करते हैं, और उनमें उन विचित्र मौलिक सिद्धान्तों को देखते हैं। जो आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों से भी कहीं आगे बढ़े हुए प्रतीत होते हैं, तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता।

वेदों में जब साहित्य के उच्चतम सिद्धान्तों का वर्णन पाते हैं, तो विकासवाद के प्रसिद्ध क्रमिक विकास-सिद्धान्त की धज्जियां उड़ जाती है। साहित्य क्षेत्र के, छन्द, अलङ्कार गणित, ज्योतिष, काव्य, दर्शन तत्व ये मूल्यवान् अंग, पूर्ण विकसित मस्तिष्कों की ही देन होती है। इसी प्रकार राजनीति, समाज शास्त्र, आचार शास्त्र आदि सभी विकास प्राप्त व्यक्तियों के मस्तिष्क की ही उपज है। परन्तु हम देखते हैं वेदों में उक्त सभी विज्ञानों का मूल मिलता है। सृष्टि को उत्पन्न अरबों वर्ष हुए। सृष्टि सव्वत् या आर्य सव्वत् अथवा वेद सव्वत्सर जो सृष्टि के आदि से चला आ रहा है लगभग १९७२९४-९०६१, वर्ष हुए यही सृष्टि सव्वत् कहा जाता है। तो इतने प्राचीन काल में उत्पन्न हुए वेदों में जब हम उक्त तत्त्वों के उच्चतम सिद्धातों का बीज रूप से वर्णन पाते है, तब तथा कथित विकासवाद स्वयं उड़ जाता है।

गणित शास्त्रः—गणित अंक शास्त्रोक्त सूक्ष्म सूक्ष्म सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है। संख्याओं का पूर्ण वर्णन विश्व को वेदों की ही देन है

यजुर्वेद में ही सर्व प्रथम इकाई दहाई के उपदेश दिया है।

इमा च अग्न इष्टका धेनव सन्तु······ एका च दशच दशच, शतञ्चा शतंच। सहस्रञ्च सहस्रायुतश्च निकुतञ्च। नियुतञ्च प्रयुतञ्चा र्बुदञ्च। समुद्रश्च मध्यञ्चान्तश्च परार्द्धञ्चेति।

इसका भाव यह है—

१×१०=१०, १०×१०=१००, १००×१०=१०००, १०००×१०=१००००, १००००×१०=१०००००, १०००००×१०=१००००००, १००-००००×१०—इसी प्रकार परार्द्धच यह अन्तिम संख्या है। इसी में सम्पूर्ण अङ्क विद्या निहित है। गणित शास्त्र का अध्ययन करने से पता चलता है, विश्व को गणित-शास्त्र की देन भारत की है। इसी लिए इसको इल्महिंदसा कहा जाता है।

इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र का बहुत सुन्दर वर्णन वेदों में मिलता है। खगोल विज्ञान भी तारा नक्षत्र राशि आदि का भी आकर्षक प्रति-पादन किया गया है। जिसका इस लघु लेख में विस्तृत वर्णन करना सम्भव नहीं है। आश्चर्य है वेद के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पं० सत्यव्रत सामश्री जो कलकत्ता की यूनिवर्सिटी वेद के प्रमुख अध्यापक थे। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ त्रयीपरिचय की भूमिका में उनके निम्न लेख को देखा—

'Our opinion is that in vedic times our country has made extra ordinary progress. In those days Scinee of Geology Astronomy & Chemistry were called अधिदैविक विद्या & those of Physiology Psychology & Theology (अध्यात्मिक विद्या)··· ···in Vedic works of those scinces having been widely Rnown in thaese days".

जिसका भाव यह है कि हमारी सम्मति में वैदिक काल में हमारा देश बहुत समुन्नत था उस समय में भूगर्भ शास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, रसा-यन शास्त्र, जिसे अधिक दैविक विद्या कहा गया है, शारीरिक शास्त्र, मनो-विज्ञान, धर्मशास्त्र, जो अध्यात्म विद्या कहलाती थी, पर्याप्त उन्नत थे, तो विकासवादियों का क्रामिक विकास का सिद्धान्त कहां रहा ? प्राचीन ऋषि मुनियों की तरह हमारा भी यह विश्वास हो गया है कि निश्चय ही वेद समस्त ज्ञान विज्ञान की खान है। जैसा वेद स्वयं कहता है:—

यस्मात् कोशादुद्भराम वेदं,
तस्मिन्नन्तरवदध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण
तेन मा देवास्त पसावतेह॥
(अथर्व १६।७२।१॥)

जिस कोश में से हमने वेदरूपी ज्ञान की प्राप्ति किया है। जो परमा-त्मा की शक्ति से ज्ञान विज्ञान से पूर्ण

(शेष पृष्ठ २६२ पर)

सिद्धान्त चर्चा:—

सृष्टि की आयु

[श्री पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार, पाली रत्न, आचार्य गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ]

वर्तमान युग के क्रान्तदर्शी ऋषि दयानन्द ने विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि सृष्टि की आयु चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष है। उनकी इस स्थापना का आधार था वेद, और वेदमूलक संपत्ति और गीता आदि, मनुस्मृति में सृष्टि की आयु गणना इस प्रकार की गई है—४ लाख ३२ हजार वर्ष का सब से छोटा युग कलि है। इससे दुगना द्वापर, त्रिगुना त्रेता और चौगुना सत्य या कृत युग अर्थात् कलि के काल को दस गुना करने से (१-२-३-४-१०) चतुर्युग या महायुग का काल बना। यह हुए ४३ लाख २० हजार वर्ष। एक हजार महायुगों का जो काल बनता है, वह सृष्टि की आयु है। इस प्रकार ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष सृष्टि की आयु मनुस्मृति में दर्शायी गयी है।

इसी प्रकार गीता में भी यही आयु सृष्टि की प्रतिपादन की गयी है और फिर सृष्टि को दिन और प्रलय को रात्रि संज्ञा दी गयी है। इन्हीं संज्ञाओं को "अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिशतो वशी" आदि एक वेद मंत्रों ने प्रमाणित किया है। और सृष्टि और प्रलय की आयु में एक समान बतलायी गयी है।

आयुर्वेद अध्याय १५ मंत्र ५-६ में "सहस्रस्य प्रभा असि" वचनों द्वारा कहा गया है–"हे परमेश्वर! तू सहस्र युग परिमित मार्ग और प्रलय का प्रमाता (निर्माता) है।"

दूसरा मंत्र अथर्ववेद के काण्ड ८, सूक्त २ का २१ वां है—

शतंतेऽयुतं हायनान द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्यः। इद्राग्नी विश्वेदेवास्ते नु मन्यन्तामहृणीयमानाः।

मैं (ते) उन अहोरात्रौ अर्थात् सर्ग और प्रलय को (शतं अयुतं हायनान) हजार वर्ष गुणा सौ, अर्थात् १० लाख के शून्यों ०,००,००,०० से पहले वत्सलः क्रमशः (द्वे त्रीणि चत्वारियुगे) दो, तीन, चार अंक रखने पर ४,३२,००,००,००० (४ अरब ३२ करोड़) आयु वाले (कृण्मः) करता हूँ। (इन्द्राग्नी) ब्राह्मण और क्षत्रिय. तथा (विश्वेदेवाः) वैश्य, ये सब द्विज विद्वान् (आहृणीयमानाः) शान्तचित्त होकर (ते नु) उन सर्ग प्रलय रूपी अहोरात्रौ को (मन्यन्ताम्) विचारें।

परन्तु आज कल का युग विज्ञान

युग है। वह प्राचीन ऋषियों के तत्व-दर्शन को नहीं मानता। अपितु, आपाततः उसका उपहास करता है। यही कारण है कि किसी ने सृष्टि की आयु हजारों तक बतलायी, तो किसी ने लाखों तक। परन्तु अन्ततोगत्वा सचाई प्रकट हुये बिना नहीं रहती। आगे बढ़ते २ अब वैज्ञानिक लोग उसी सत्य सिद्धान्त की ओर पहुँच रहे हैं, जिसके दर्शन क्रान्तदर्शी ऋषियों ने पहले ही कर लिये थे।

२५ दिसम्बर १९५५ का वाशिंगटन (अमेरिका) का समाचार उन्हीं दिनों दिल्ली के अमरीकी दूतावास द्वारा प्रकाशित होने वाले अमेरिकन रिपोर्टर पत्र में छपा था कि अमरीकी वेधशालाओं के प्रमुख ज्योतिषियों ने हाल में घोषणा की है कि "पृथ्वी की आयु पांच अरब चालीस लाख वर्ष निकलती है। परन्तु साथ ही उनका यह भी कहना है कि इस गणना में बीस प्रतिशत की भूल हो सकती है। सही आयु निकालने में अभी कई वर्ष और लगेंगे।"

वैज्ञानिकों की इस गणना में यदि ४० लाख की जगह ४० करोड़ प्रतिशत की भूल मान ली जावे तो पाठक हैरान हुए बिना न रहेंगे कि पृथ्वी की आयु शत-शतिशत वहीं निकलती है, जिसे भारत के तत्ववेताओं ने बतलाया था।

सो, देखिये, यह किस प्रकार? ५ अरब ४० करोड़ का २० प्रतिशत हुआ, १ अरब ८ करोड़। ५ अरब ४० करोड़ में से १ अरब ८ करोड़ कम कर देने से शेष ४ अरब ३२ करोड़ रहा। बस, ठीक यही सृष्टि की आयु है।

देखिये, अब हुई न भारतीय ऋषियों के तत्वदर्शन की विजय। और हुआ वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक सो किया कीजिये वेद का स्वाध्याय; सत्य की प्राप्ति के लिये। ❀ ❀ ❀

[शेष २६० पृष्ठ का]

भरा हुआ है उससे हम पूर्ण लाभ उठावें।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि ज्ञान विज्ञान के मन्त्र दाता ईश्वरीय ज्ञान में ही निहित है। यह भी इससे ध्वनित होता है। मनुष्य मात्र के लिए सभी उपयोगी विद्याओं का बीजरूप से वेदों में निर्देश है। तभी तो मनुमहाराज अपने धर्मशास्त्र में स्पष्ट घोषित किया है—

भूतं भव्यं भविष्यच्च।
सर्वं वेदात् प्रसिध्यति॥ मनु॥

अर्थात् जो कुछ भूत भव्य और भविष्यत् जो ज्ञान फैला है वह सब वेद से ही प्रसिद्ध हुआ है। हां उसी को समुन्नत और परिष्कृत, मानव मस्तिष्क कर सकता है। परन्तु मूल ज्ञान ईश्वर की ही देन है। ❀ ❀ ❀

—❀❀❀—

वादे वादे जायते तत्वबोधः—

"शंख ध्वनि की वैदिकता"

[ले० वैदिक गवेषक आचार्य शिवपूजन सिंह कानपुर]

सम्प्रति पौराणिकवर्ग कथा-वार्ता, पूजा, पाठ, आरती आदि के समय शंख ध्वनि करना धार्मिक कर्तव्य समझता है। संभवतः आर्य समाज में शंख ध्वनि नहीं होती है। पाकिस्तान बनने से पूर्व लाहौर के दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय में सन्ध्योपासन के पश्चात् छात्रों को शंखध्वनि करते हुए मैंने स्वयं देखा था। अधिकांश आर्य समाजी शंखध्वनि इसलिए नहीं करते हैं कि इससे पौराणिकता प्रकट होती है। कुछ लोग कहते हैं कि हड्डी मुंह से लगायी जाती है, पर ऊहापोह से स्वाध्याय करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होती है कि शंखध्वनि वैदिक प्रणाली है। सन्ध्या के पश्चात् शंखध्वनि पौराणिकता नहीं है। वेदादि सच्छास्त्रों में शंखध्वनि का आदेश है। यथा वेदों में—अथर्ववेद कांड ४ सूक्त १०, मंत्र १ से ७ तक में शंख की चर्चा है और इस सूक्त का देवता "शंखमणि शुक्तयो" है।

"वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि।
स नो हिरण्यजाः शंखः कृशनः पात्वंहसः ॥ १ ॥"

अर्थ—"वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत व सूर्यरूप ज्योति से उत्पन्न होने वाला तथा सुवर्ण तेज से उत्पन्न वह हिरण्यरूप शंखमुक्ता हमें रोग, पीड़ा आदि से रक्षा करे।"

सागर के भीतर शंख में मोती केवल सागर के कारण ही नहीं होता परन्तु अनुकूल वृष्टि से वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत, सूर्य तथा सुवर्णादि तेज का सम्बन्ध भी होता है अतएव वह रोग, पीड़ा से रक्षा कर सकता है।

इस मन्त्र में कई विद्वानों ने "कृशनः शंखः" का अर्थ—हिरण्यरूप सुनहरी शंखमणि शंखमुक्ता, शंख का मोती "कृशनहिरण्यम्" निघण्टु १।८ अर्थ किया है। किसी ने शंख व किसी ने शंख के दृष्टान्त से आत्मा का वर्णन किया है।

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे।
शंखेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे ॥ २ ॥

अर्थ—"जो सागर के भीतर से चमकीले पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ उत्पन्न होता है। उस शंख का नाद बजा कर योद्धा राक्षसों और चोरों पर विजय

पाता है अथवा राक्षसों (दृश्य घातक जन्तुओं) को रक्त, मांस प्रभृति शरीर की आन्तरिक धातुओं के खाने वाले कृमियों को मार कर विजय पाता है।"

शंखेनामीवाममतिं शंखेनोत सदान्वाः ।
शंखो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ॥ ३ ॥

अर्थ—शंख से सब रोगों को, भोगवासना को तथा शंख से सदा कष्ट देने वाली दुष्ट आन्तरिक, मानसिक रोग, वेदनाओं को दूर करे। वही शंख हमारे सब रोग पीड़ाओं की एक मात्र औषधि है। वह हमें रोग, दोष से रक्षा करे।"

दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शंख आयुष्प्रतरणो मणिः ॥ ४ ॥

अर्थ—द्युलोक में प्रकट हुए भास्कर के सदृश या सागर से उत्पन्न हुआ हिरण्य तत्वों से सम्पन्न शंखमणि समुद्र से मिलते हुए नदमुख से अनुसंधान से लाया हुआ हमारे लिए आयु की वृद्धि करने वाला हो।

शंखमुक्त-शंखमणि को आयुवर्धक, सूर्य के सदृश तेजवाला, समुद्र में बड़े नद के मुख पर प्राप्त हो सकता है, ऐसा मन्त्र का तात्पर्य है।

समुद्राज्ञातो मणिर्वत्राज्ञातो दिवाकरः ।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातुहेत्या देवासुरेभ्य : ॥ ५ ॥

अर्थ-समुद्र से प्रकट हुआ शंखमणि शंखमोती बादल से प्रकट हुए सूर्य के समक्ष हैं वह विषयवासना जनित घातक क्रिया से दैविक और आसुरी उपद्रवों से हमें सब ओर से रक्षा करे।

हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्रण आयूंष तारिषत् ॥६॥

अर्थ—"हे शंखमणि। तू देदीप्यमान होने वाले सुनहरी पदार्थों में से एक है तू चन्द्रमा से उसके प्रभाव से उत्पन्न हुआ है। तू युद्ध रूप में दर्शनीय है। तू तरकस में देदीप्यमान होने वाला है हमारी आयु की वृद्धि कर।"

देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वन्तः ।
तत्त बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु: ॥ ७ ॥

अर्थ—शंखमणि शंखमुक्ता देवताओं की सुनहरी हड्डी है। वह आत्मा वाला ही पानी के भीतर विचरण करता है उस शंखमुक्ता को तेरे तेज के लिए, जीवन के लिए, बल के लिए, दीर्घायु के लिए, सौ वर्षों तक जीवित रहने के लिए उस सुनहरे शंख से निकला मोती है। रोगी तुझे रोग से रक्षा करे।

इस मंत्र में जीवन, तेज, बल, दीर्घायु और रोगों से रक्षा के लिए

शंखमणि को बांधने, मुद्रिका या अन्य आभूषणों में जड़ित कर धारण करने का विधान है ।

"अवरस्पराय शंखध्मं" यजु० ३०।१९

अर्थात्—आसपास और दूर के लोगों को बुलाने के लिए शंख बजाने वाले को नियुक्त करो । महर्षि दयानन्द जी महाराज इसका अर्थ करते हैं । नीचे के शत्रुओं के अर्थ शंख बजाने वाले को उत्पन्न वा प्रकट कीजिए ।

श्रीमद्भगवद्गीता और शंखध्वनि—रणक्षेत्र में शंखध्वनि आवश्यक है । महाभारत युद्ध में सभी महारथियों के शंखों का वर्णन गीता के प्रथम अध्याय के निम्न श्लोकों में आया है जिसका भावार्थ यहां दिया जा रहा है ।

अर्थ—संजय बोले—(दुर्योधन के मन को) हर्षित करने के लिए प्रतापी, कौरवों में वयोवृद्ध (भीष्म) पितामह ने ऊंचे स्वर से सिंहनाद करते हुए अपना शंख बजाया ।

"इसके बाद अनेक शंख, नौबतें, डंके, मृदंग और गोमुख नामक बाजे एकदम बजने लगे । वह ध्वनि बहुत ही प्रचण्ड हुई" ।। १३ ।।

इसके बाद श्वेत घोड़ों वाले बड़े रथ में विराजमान हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन ने भी अपने दिव्य शंख बजाए ।। १४।। श्री कृष्ण ने पांचजन्य नामक शंख, अर्जुन ने देवदत्त शंख और भयानक कर्म करने वाले भीमसेन ने पौण्ड्र नामक महान् शंख बजाया ।।१५।। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्टिर ने अनन्तविजय नामक महान् शंख, और नकुल ने सुघोष तथा सहदेव ने मणिपुष्पक नामक शंख बजाये ।।१६।। बड़े धनुषधारी काशिराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, राजा विराट, कभी पराजित न हुए सात्यकि राजा द्रुपद, द्रोपदी के सब पुत्र, सुभद्रा पुत्र महाबाहु अभिमन्यु, आदि सबों ने अपने २ शंख बजाये ।।१७, १८।। वह भय उत्पन्न करने वाला शंखनाद आकाश और पृथिवी में गूंजने लगा और उसने धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादिकों के हृदय को फाड़ डाला ।।१९।।

इस प्रकार शंखध्वनि की प्राचीनता सिद्ध होती है ।

शंखध्वनि और विज्ञान:—सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक श्री जगदीश चन्द्र वसु ने अपने प्रयोगों से सिद्ध किया है कि "जहां तक शंख ध्वनि जाती है, वहां तक संक्रामक रोगों के अनेक विषाक्त कीटाणु स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं, वहां का वायुमंडल विशुद्ध हो जाता है ।" लोगों का विश्वास है कि "प्रातः सायं शंखध्वनि से कीटाणुरूपी भूत भाग जाते हैं ।" गूंगापन

और हकलापन दूर करने के लिए निरन्तर शंखध्वनि श्रवण करना ए महौषधि है। सदा शंखध्वनि करने वाले व्यक्ति को फेफड़े के रोग नहीं हो सकते। काश, दमा, ऊरुक्षत, यकृत, प्लीहा, बहुव्यापक सर्दी (इन्फ्लूंजा) जैसे रोगों के पूर्व रूप में शंखध्वनि लाभदायक है। शंखध्वनि और आयुर्वेद "आयुर्वेद प्रकाश" नामक ग्रन्थ में मोती की योनि अर्थात् मोती की उत्पत्ति स्थान शंख बतलाया है।—

"शुक्तिः शंखो गजः क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः।
वेणुश्चाष्टौ समाख्याताः सुज्ञैर्मौक्तिकयोनयः॥" अ० ५।१३॥

यहां सीपी, शंख, हाथी, सुअर, सर्प, मछली, मेंढक, बांस ये आठ मोती की उत्पत्ति के स्थान है।

शंख भस्म से संग्रहणी, नेत्रफूला, पेटदर्द, तारुण्य पीडिका (यौवनावस्था में मुँह पर छोटी २ फुंसियां निकलती हैं) यकृत, प्लीहा वृद्धि, गुल्म अजीर्ण, मन्दाग्नि प्रभृति रोग दूर होते हैं। इस भस्म में कैलशियम का अंश अधिक रहता है अतः कैलशियम की कमी से शरीर के अन्दर जितने विकार उत्पन्न होते हैं, उनमें यह बहुत लाभ पहुंचाता है। मन्दाग्नि में तथा बच्चों के ब्राको न्यूमोनिया में (पसली चलना) में शृंग भस्म के साथ शंख भस्म देने से लाभ होता है शंख भस्म ग्राही स्तम्भनकारक होता है।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि शंखध्वनि, वेद, आयुर्वेद, गीता तथा विज्ञान से युक्त होने से आर्यों के लिए उपयोगी है। यदि सन्ध्या अग्निहोत्र के पश्चात् शंखध्वनि की जाय तो मेरे मत से कोई सैद्धान्तिक हानि नहीं है। आशा है आर्य जगत् के सैद्धान्तिक विद्वान् इस पर प्रकाश डालेंगे।

सन् १६६१ की जनगणना में

आर्य जन क्या लिखाएँ ?

१—राष्ट्रीयता	आर्य
२—धर्म	आर्य धर्म
३—मातृ भाषा	जिसे आर्य सदस्य मानता हो
४—अन्य कोई भाषा	हिन्दी और संस्कृत

रघुवीरसिंह शास्त्री
मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली

"गाय पालें अथवा भैंस", गाय ही क्यों ?

[लें०—श्री हृदयराम अरोरा, उपसंचालक पशुपालन विभाग, लखनऊ]

—❀❀❀—

गौर्मे माता वृषभः पिता मे
दिवं शर्म जगती मे प्रतिष्ठा।"

वेदों में लिखा है गाय माता है और सांड पिता है। ये संसार में ही स्वर्ग का सुख प्रदान करने वाले हैं। इसलिये हर घर की गोशाला में विचरें और सुख से रहें। वे बहुत से बछड़े बछिया उत्पन्न करें और दूध देती रहें जिससे हमारा शरीर हृष्ट-पुष्ट हो।

भगवान् श्री कृष्ण ने गाय को ...तना महत्व दिया तथा गायों की कितनी सेवा की यह सर्व विदित है। महात्मा गांधी ने गाय को भारत की सुख समृद्ध की जननी माना और कहा कि जहां गाय है वहीं सभ्यता, वहां पृथ्वी उपजाऊ तथा घर अच्छे बनते हैं और मनुष्य सम्पन्न होते हैं। गाय जितना खाती है उसका सौ गुना ...ने देती है। गाय से ही बैल उत्पन्न होते ... जो हमारे खेतों के लिये प्रधान साधन हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से गाय सर्वोत्तम है। खेती की उर्वराशक्ति बढ़ाने के लिये गोबर एवं मूत्र के खाद के समान कोई रसायनिक खाद नहीं हो सकता। सारांश यह है कि गाय बिना मनुष्य का जीवन सुखी नहीं हो सकता।

हमारे देश में कुछ वर्षों से भैंसें पालने का शौक बढ़ रहा है। कारण केवल इतना है कि इसका दूध गाढ़ा तथा बिक्री के लिये अच्छा समझा जाता है। किन्तु अनुभव से यह पता चलता है कि गाय के समान भैंस उपयोगी नहीं बन सकती। इसके पड़वे भी कृषि कार्य में बैलों की समानता नहीं कर सकते। यदि पशु पालक के पास १० भैंसें हैं तो कुछ वर्षों के बाद इन दसों की सन्तान का पाना दुर्लभ है किन्तु १० गायों के बछड़े बछिया जीवित रह सकते हैं और उनकी संतति घर में बराबर पाई जाती है। भैंस की संतति नहीं चलती और प्रायः हर चौथे पांचवे वर्ष एक नई भैंस दूध के लिये खरीदनी पड़ती है। भारत के कृषकों की आर्थिक दृष्टि से चारा तथा चरागाह की कमी को देखते हुए यह आवश्यक है कि अनु-उत्पादक पशुओं को हटाकर चारा बचाया जाय। प्रश्न यह है कि क्या हम दूध के लिये भैंस और खेतों के लिये गाय पृथक--पृथक पालें या केवल गाय ही पालें और उसकी पूरी तौर से देख रेख करें ताकि गाय

दोनों कामों के लिये उपयोगी बन जाय। खेतों के लिये मजबूत बैल पैदा करें और दूध की मात्रा भी बढ़ाई जाय। जिससे हमारी संतान हृष्ट-पुष्ट हों।

केन्द्रीय फार्म चक गंजरिया लखनऊ पर १२ वर्ष के अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि गाय भैंस की अपेक्षा ड्योढ़ा दूध दे सकती है और उसकी संतान दिनों दिन बढ़ाती ही रहती है केवल आवश्यकता है उसके प्रति श्रद्धा और देखरेख की।

भैंस गाय से दूना खाती है, कहा जाता है कि गाय भूखी रह कर भी दूध दे सकती है किन्तु भैंस बिना भरे पेट दूध नहीं दे सकती। भैंस गन्दी रहती है और अधिक बीमार पड़ती है। गाय के मुकाबले में भैंस पर ऋतुओं के फेर बदल का अधिक प्रभाव पड़ता है। जिस से इसकी देख रेख पर तथा बीमारियों पर अधिक खर्च पड़ता है। ज्यादा दिनों में ब्याती है। और ज्यादा दिन सूखी रहती है। इस के बच्चे मौत के शिकार होते रहते हैं जिससे पशु पालकों को बड़ी हानि पहुँचती है। पड़वे खेती कार्य नहीं कर पाते हैं और हांफते रहते हैं।

कृपया निम्नलिखित बातों पर ध्यान देकर स्वयं निश्चित करें कि गाय का ही पालना क्यों आवश्यक है।

गाय

१—बछिया १॥। साल में जवान होती है।

२—बछिया २॥ साल में ब्या जाती है।

३—साल के हर मास में गर्म होकर गाभिन हो जाती है।
२४ से ३६ घन्टे तक गर्म रहती है जिससे सांड़ का प्रबन्ध आसानी से हो सकता है।

४—(अ) साल के किसी मास में ब्या सकती है। साल में एक बार बच्चा देती है और केवल ९० दिन सूखी रहती है।
(ब) २८६ दिन में ब्याती है।

भैंस

१—पड़िया २॥। साल में जवान होती है।

२—पड़िया ३॥ साल में ब्याती है।

३—केवल बरसात और जाड़े में गर्म होती है गर्मी में गाभिन नहीं होती है केवल १८ घण्टे तक गर्म रहती है जिससे सांड का प्रबन्ध कठिन होता है।

४—(अ) १३-१४ महीने बाद बच्चा देती है और इस तरह लगभग ११६ दिन सूखी रहती है।
(ब) ३१० दिन में ब्याती है।

गाय	भैंस
५—७५ प्रतिशत बछड़े बछिया जीवित रहते हैं।	५—केवल २५ प्रतिशत पड़िया, पड़वे जीवित रहते हैं।
६—बच्चा मर जाने पर भी आसानी से दूध देती है।	६—अकस्मात् बच्चा मर जाने पर दूध बन्द कर देती है।
७—पानी केवल पीने और सफाई के लिए चाहिए।	७—केवल पानी ही में रहना पसन्द करती है।

गाय का दूध मधुर शीतल वायु पित्त तथा कफ विकार को नाश करता है। फेंफड़े के लिये लाभकारी हैं। क्षय रोग को दूर करने वाला है। धारों का दूध अमृत तुल्य है। भैंस का भारी, गर्म, वीर्य वर्द्धक चिकना, अपचनीय, कफ और वायुकारक है।

गाय का दूध पीने वाले बच्चे पुष्ट, स्वस्थ्य, फुर्तीले और बली होते हैं। बीमार नहीं पड़ते और बीमार पड़ने पर भी शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। इसके विपरीत भैंस का दूध बच्चे से हजम नहीं होता और दस्त आ जाते हैं। मनुष्य मोटे तो जरूर हो जाते हैं लेकिन बुद्धितीव्र नहीं होती शरीर में आलस्य रहता है। ❀ ❀ ❀

वैदिक गृहस्थाश्रम

[लेखक—प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार]

स्व० श्री स्वामी वेदानन्द जी की सम्मति—

"प्रो० विश्वनाथ विद्यालङ्कार वेदों के अच्छे विचारक विद्वान् हैं आप जो कुछ लिखते हैं बहुत सुलझा कर लिखते हैं। वैदिक गृहस्थाश्रम उनके परिपक्व वेदानुशीलन का परिणाम है। वैदिक सुक्तों के प्राय ३०० मन्त्रों की शृंखला बद्ध व्याख्या के द्वारा इसमें गृहस्थ सम्बन्धी प्रायः सभी कर्तव्यों का निर्देश किया गया है। नये पुराने सभी गृहस्थों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है।" मूल्य ५)

ऋषि गाथा महाकाव्य

[रचियता—श्री विमलचन्द्र शर्मा विमलेश]

अनेक आकर्षक चित्रों सहित महर्षि दयानन्द का काव्यमय जीवन चरित्र। अनेक विद्वान् नेताओं की सम्मतियों में से एक सम्मति।

महात्मा आनन्द स्वामी—श्री विमलेश की काव्य शक्ति में ओजस्विता है। और ऋषि दयानन्द जैसे उत्ताद महात्मा की जीवनी में इसका प्रयोग अत्यन्त ही सुरम्य हो गया है। मूल्य ४)

दोनों पुस्तकों का ९) आ जाने पर डाकखर्च माफ।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, देहली।

विद्वानों के लिखे ट्रैक्ट प्रचारार्थ मंगावें

मूल्य -) प्रति, ४) सैकड़ा

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० सम्वाद
५ पितृश्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ वैदिक सन्ध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ. स. उन्नति के साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी
३९ वैदिक काल में बन्दूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाइयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्णव्यवस्था
५० कर्मव्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ. स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्रा
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त
६२ जीवन की समस्याओं का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वंतः स्वयमार्यम
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर सब जगह है
७२ ईश्वर में अविश्वास
७३ चरित्र निर्माण
७४ यज्ञोपवीत महत्त्व
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण
७६ नास्तिकों को सन्देश
७७ वैदिक धर्म ही क्यों
७८ विद्यार्थी और सदाचार
७९ दयानन्द की महानता
८० आर्य क्यों बने ?
८१ श्राद्धमीमांसा

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

[गताङ्क से आगे]

व्याख्यान माला

स्वाध्याय

मिमीहि श्लोकम् पर्जन्य इव ततनः ।
गाय गायत्रमुकथ्यम् ॥ १ ॥

हे विद्वान् तू वेदवाणी को मुख में धारण कर और उस वेदवाणी को मेघ की तरह गर्जन करते हुए दूर दूर तक फैला। उसका उपदेश कर। और गायत्री मन्त्र में कहे हुए वेद के वचनों का स्वयं गान कर और दूसरों को भी पढ़ा ॥ १ ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥ २ ॥

ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह यथा अवसर आलस्य रहित होकर वेद का ही अभ्यास करे क्योंकि यही ब्राह्मण का मुख्य और परम धर्म है अन्य सब कर्तव्य इसके उपधर्म कहलाते है ॥ २ ॥

वेदाभ्यासो हि विप्राणां परमं तप उच्यते ।
ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः षडङ्गसहितस्तु यः ॥ ३ ॥

वेद का पढ़ना पढ़ाना ही ब्राह्मणों का सब से श्रेष्ठ परम तप कहलाता है। अंगों सहित जो वेदो का अध्ययन किया जाता है वही ब्रह्मयज्ञ कहलाता है ॥ ३ ॥

वेदमेव सदाऽभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ ४ ॥

तपस्या में लगा हुआ ब्राह्मण नित्य प्रति वेदों का अध्ययन करे उनका अभ्यास कदापि न छोड़े। क्योंकि वेद का पढ़ना ही ब्राह्मणों का परम तप कहलाता हैं ॥ ४ ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितञ्च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनञ्चैव वाङ्मयन्तप उच्यते ॥ ५ ॥

किसी को दुःख न देने वाला वाक्य बोलना, सत्य बोलना, प्रिय और हितकारी वाक्य बोलना और स्वाध्याय का नित्य अभ्यास करना यह सब वाणी का तप कहलाता है। वाणी से इन कर्मों के करने को वाङ्मय तप कहते हैं ॥ ५ ॥

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ ६ ॥

शक्ति के अनुसार वेदाभ्यास करना, महायज्ञ करना तथा क्षमा करना यह तीनों कर्म महापातक रूपी कर्म से उत्पन्न हुए बड़े बड़े पापों को भी शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं ॥ ६ ॥

अधीत्य यत्किञ्चिदपि वेदार्थाधिगमे रतः ।
स्वर्गलोकमवाप्नोति धर्मानुष्ठानविद्द्विजः ॥ ७ ॥

जो धर्म का अनुष्ठान जानने वाला तथा धर्माचरण करने वाला ब्राह्मण है वह यदि थोड़ा अध्ययन करके भी वेदों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है उनमें यत्न करता है वह स्वर्गलोक को जाता है ॥ ७ ॥

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः ।
तस्य नित्यं क्षरत्येव पयो दधि घृतं मधु ॥ ८ ॥

स्वाध्याय करने का इतना फल है कि जो द्विज नित्य प्रति विधि-पूर्वक पवित्र होकर एक वर्ष तक स्वाध्याय करता है तो उसे नित्य प्रति दूध दही घी शहद मिलता है उसको इनका अभाव नहीं होता ॥ ८ ॥

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ ६ ॥

वेद के पठन-पाठन में तथा नित्य के स्वाध्याय करने में और नित्य के यज्ञ करने में कभी अनध्याय नहीं करना चाहिये। यह काम नित्य प्रति करने आवश्यक हैं। छोड़ने नहीं चाहियें ॥ ६ ॥

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् ।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ १० ॥

स्वाध्याय करता हुआ मनुष्य योग का अनुष्ठान करे और योग से स्वाध्याय का मनन करे योग के साथ साथ स्वाध्याय करता रहे। इस प्रकार स्वाध्याय और योग की शक्ति के सामर्थ्य से प्रभु का ज्ञान होता है ॥ १० ॥

दान धर्म

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ १ ॥

हे सर्व प्रकाशक दानशील प्रभो ! आप आत्मसमर्थक उपासक के लिये सदा कल्याणकारी सुख और ऐश्वर्य प्रदान करते हो। हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड

के अंग २ में व्यापक ! यह सब कुछ तेरा ही दिया हुआ है। आपका दान सुखप्रद तथा सद्गुणों का देने वाला है। इस लोक तथा परलोक दोनों में सुख देने वाला है ॥ १ ॥

दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुखमश्नुते ।
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः ॥ २ ॥

दान से ही स्वर्ग प्राप्त किया जाता है और दान से ही सुख का [illegible] किया जाता है। और दान के कारण ही मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में पूजनीय होता है ॥ २ ॥

दानेन भूतानि वशीभवन्ति दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम् ।
परोऽपि बन्धुत्वमुपेति दानैर्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति ॥ ३ ॥

दान से सब प्राणी वश में हो जाते हैं दान से बैरी भी सब समाप्त हो जाते हैं, कोई बैरी नहीं रहता। दान से दूसरे भी बन्धु बन जाते हैं पराये अपने हो जाते हैं। और दान ही सब प्रकार के व्यसनों को नष्ट करने वाला है। दान करने वाला व्यसनों में नहीं फंसता ॥ ३ ॥

गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात् ।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः ॥ ४ ॥

दान करने से मनुष्य को गौरव की प्राप्ति होती है धन संचय करने से गौरव नहीं मिलता। स्वयं ही देखो जल देने वाले बादल ऊपर ही विराजते हैं और जल संचय करने वाले समुद्र नीची स्थिति में पृथ्वी पर वास करते हैं ॥ ४ ॥

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ ५ ॥

धन की तीन ही गतियां होती हैं प्रथम दान करना, दूसरे भोग करना, तीसरे नाश होना। जो मनुष्य न तो धन का दान करता है और न भोग करता है उसके धन की तीसरी गति अर्थात् नाश ही होता है ॥ ५ ॥

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम् ।
धनवन्तमदातारं दरिद्रञ्चातपस्विनम् ॥ ६ ॥

हे राजन् यह दो पुरुष जल में डुबो देने चाहिये इनके गले में बहुत बड़ी दृढ़ शिला बांध कर डुबोना चाहिये। एक तो वह जो धनवान् होकर भी दान नहीं करता और दूसरा वह जो दरिद्र होकर भी तपस्या नहीं करता ॥ ६ ॥

पात्रे दानं स्वल्पमपि काले दत्तं युधिष्ठिर ।
मनसा हि विशुद्धेन प्रेत्यानन्तफलं स्मृतम् ॥

चाहे दान थोड़ा भी क्यों न हो यदि वह यथा समय और योग्य पात्र को दिया जाये तो हे युधिष्ठर ! वह दान अपने शुद्ध विचार व मन से देने वाले को मरने के बाद अनन्त फल देता है। ऐसा दानी अनन्त फलों को पाता है ॥ ७ ॥

अपात्रेभ्यस्तु दत्तानि दानानि सुबहून्यपि ।
वृथा भवन्ति राजेन्द्र भस्मन्याज्याहुतिर्यथा ॥ ८ ॥

हे राजेन्द्र ! अयोग्य पुरुषों को यदि बहुत अधिक मात्रा में भी दान दिया जाये तो वह इस प्रकार निष्फल होता है जिस प्रकार राख में आहुतिडालनी निष्फल होती है ॥ ८ ॥

सार्थ. प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः ।
आतुरस्य भिषङ्मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः ॥ ९ ॥

दूर देश में रहने वाले का धन ही मित्र है और घर में रहते हुए का मित्र भार्या है। और रोगी का मित्र औषधि है। तथा मरने वाले का मित्र दान है ॥ ९ ॥

हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ।
एतानि वै पवित्राणि तारयन्त्यपि दुष्कृतम् ॥ १० ॥

सुवर्ण का दान, गौ का दान, और पृथ्वी का दान यह तीनों दान श्रेष्ठ तथा पवित्र दान हैं यह तीनों दान दाता को सब कठिनाइयों से छुड़ा कर सुख देने वाले हैं ॥ १० ॥

स्त्री धर्म

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥ १ ॥

भार्या वही कहलाने योग्य है जो गृहकार्य में कुशल हो। जो सन्तान वाली सुजननी हो उसे भार्या कहते हैं जो अपने प्राणों के समान पति को समझती हो वह भार्या श्रेष्ठ है। जो पतिव्रता हो अपने व्रत पर स्थिर रहे वह भार्या श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

भर्ता हि परमं नार्या भूषणं भूषणैर्विना ।
एषा विरहिता तेन शोभमाना न शोभते ॥ २ ॥

नारी का अन्य भूषणों के बिना भी पति ही सब से उत्तम भूषण हैं। यदि पत्नी पति से विहीन हो जाये इस परम भूषण से विहीन हो तो अन्य आभूषणों से शोभित होती हुई भी शोभा नहीं पाती ॥ २ ॥

श्वश्रुश्वशुरयोः पादौ जोषन्ती सुगुणान्विता ।
मातापितृपरा नित्यं या नारी सा तपोधना ॥ ३ ॥

जो नारी श्रेष्ठ गुणों से युक्त रहती हुई सास और ससुर के पावों को सदा पूजती है और अपने माता पिता की भी सेवा में तत्पर है वही नारी तपोधना और श्रेष्ठ कहलाती है ॥ ३ ॥

भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं भजेत्सती ॥ ४ ॥

पति ही नारी का देवता है पति ही नारी का गुरु है और पति सेवा ही नारी का धर्म तीर्थ और व्रत है। इसलिए सती नारी का कर्तव्य है कि अन्य सब धर्मों को छोड़ कर केवल पति की सेवा किया करे ॥ ४ ॥

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य प्रदातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥ ५ ॥

पिता भी स्वल्प देने वाला है भाई भी मात्रा में ही देता है। और पुत्र भी स्वल्प ही देता है। फिर ऐसी कौन पत्नी होगी जो सर्वस्व देने वाले भर्ता की पूजा न करे ॥ ५ ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ६ ॥

पत्नी को सदा प्रसन्न रहना चाहिये और गृहकार्यों में चतुर होना चाहिये। तथा पाकादि सब विद्याओं से सुसंस्कृता होना चाहिये और व्यय करने में मुक्तहस्त न रहे मितव्यय करे उचित व्यय करे अनुचित न करे ॥६॥

नास्ति यज्ञः स्त्रियः किञ्चिन्नव्रतं नोपवासकम् ।
या हि भर्तुश्च शुश्रूषा तया स्वर्गं जयत्यसौ ॥ ७ ॥

स्त्रियों के लिए पति सेवा से भिन्न कोई भी यज्ञ नहीं हैं और न इस से भिन्न कोई व्रत वा उपवास है। किन्तु जो पत्नी भर्ता की सेवा करती हैं वह भर्ता की सेवा द्वारा स्वर्ग पर भी जय प्राप्त कर लेती है ॥ ७ ॥

कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा ।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री षाड्गुण्यमेतद्धि पतिव्रतानाम् ॥ ८ ॥

जो पत्नी कार्यों में मन्त्री की तरह सलाह दे। जो कार्य करने में दासी की तरह बर्ताव करे। भोजन खिलाने में माता के समान रहे। और

जो शयन समय रम्भा अप्सरा की तरह रहे। जो धर्म में अनुकूल हो। तथा जो क्षमा करने में पृथ्वी के समान क्षमाशील हो। यह छः गुण जिन स्त्रियों में हैं वही पतिव्रता कहलाती हैं। यह छः गुण पतिव्रताओं के हैं ॥ ८॥

पत्यौ जीवति या योषिदुपवासव्रतं चरेत् ।
आयुः सा हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति ॥ ९ ॥

जो भार्या पति के जीवित होते हुए भी उपवासादिव्रतों का अनुष्ठान करती है वह भपने पति की आयुक्षीण करती है और स्वयं नरक में जाती है ॥ ९ ॥

यस्य भार्या शुचिर्दक्षा भर्तारमनुगामिनी ।
नित्यं मधुरवक्त्री च सा रमा न रमा रमा ॥ १० ॥

जिस पति की भार्या सदा पवित्र रहती है और सब कार्यों में दक्ष है। और सदा जो पति की आज्ञानुकूल चलने वाली है। सदा प्रिय और मधुर वचन बोलने वाली है वह भार्या रमा देवी ही है सर्वत्र रमन कराने वाली स्त्री कही है। रमा देवी की तरह हीं वह पूज्या होती है ॥ १७ ॥

नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमा गतिः ।
नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसंग्रहे ॥ ११ ॥

भार्या के समान पति का कोई भी बन्धु नहीं है और न भार्या के समान कोई कल्याण करने वाला है। धर्म के संग्रह करने में भार्या के समान कोई भी सहायता करने वाला नहीं है ॥ ११ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥ १२ ॥

जिस कुल में स्त्रियाँ सदा शोक करती रहती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है और जिस कुल में यह प्रसन्न रहती हैं वह कुल वृद्धि को प्राप्त होता रहता है ॥ १२ ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ १३ ॥

जिस घर में भार्या से पति सन्तुष्ट रहता है और उसी प्रकार भर्त्ता से जहाँ भार्या प्रसन्न रहती है जिस कुल में ये दोनों बातें हों उस कुल का कल्याण निश्चित है ॥ १३ ॥

अहिंसा

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयञ्च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवस्तानितो नाशयामसि ॥ १ ॥

जो कच्चा मांस खाते हैं। और जो मानुष का मांस खाते हैं। और जो लम्बे केश वाले मायावी लोग गर्भों तक को खा जाते हैं। उन सब दुष्ट प्राणियों को हे परमात्मन् यहां से आप नष्ट करते हो ॥ १ ॥

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धायितुमिच्छति ।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात्स नृशंसतरो नरः ॥ २ ॥

जो मनुष्य दूसरे प्राणी का मांस खाकर अपना मांस बढ़ाना चाहता है उस मनुष्य से क्षुद्रतर और नृशंस कोई नहीं हैं वह सब से नीच और नृशंस कहलाता है ॥ २ ॥

यदि चेत्खादको न स्यान्न तदा घातको भवेत् ।
घातक. खादकार्थाय तद्घातयति वै नरः ॥ ३ ॥

यदि कोई मनुष्य मांस खाने वाला ही न हो तो घातक का क्या काम ? घातक भी न रहेगा। क्यों कि घातक व्यक्ति खाने वालों के लिए ही तो पशुओं का घात करता है। इसलिए खाने वाला भी घातक है ॥ ३ ॥

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥ ४ ॥

मारने की सलाह देने, मांस के काटने, पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिए खरीदने और बेचने, मांस के पकाने, परसने और खाने वाले यह आठों मनुष्य घातक कहलाते हैं। यह आठों पापकारी हैं ॥ ४ ॥

जीवितं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽन्यं प्रघातयेत् ।
यद्यदात्मनि चेच्छेत्ततत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥ ५ ॥

जो प्राणी स्वयं अपने लिए जीवन की इच्छा रखता है वह दूसरों का हनन क्यों करे। क्योंकि जो अपनी आत्मा को इच्छित है वही दूसरों के लिए भी सोचना चाहिये अपनी आत्मा जैसी दूसरों की समझें ॥ ५ ॥

मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिकाः ।
जन्मप्रभृति मद्यं च सर्वे ते मुनयः स्मृताः ॥ ६ ॥

जो धार्मिक लोग मद्य तथा मांस कभी सेवन नहीं करते, उनसे दूर रहते हैं और जो शराब का सारी आयु सेवन नहीं करते वह मुनि कहलाते हैं ॥ ६ ॥

जीवितसाफल्यम

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ १ ॥

जिस मनुष्य को धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों में से किसी एक की भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। इन चारों में से जिसके पास एक भी नहीं है उस मनुष्य का जीवन बकरी के गले केस्तन के समान निरर्थक है ॥ १ ॥

दानोपभोगरहिता दिवसा यस्य यान्ति वै ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥ २ ॥

जिस मनुष्य के दिन दान करने और भोग करने के बिना ही बीतते हैं वह मनुष्य तो लोहकार की धौंकनी की तरह श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं है ॥ २ ॥

यास्मिन् जीवति जीवन्ति बहवः स तु जीवति ।
काकोऽपि किन्न कुरुते चंच्वास्वोदरपूरणम् ॥ ३ ॥

जिसके जीने के कारण अन्य बहुत से प्राणी जीवन पाते हैं वही मनुष्य जीवित माना जाता है। अन्यथा कौवा भी तो अपनी चोंच से ही अपना पेट भर लेता है। जो अपने लिये जीता है वह तो निष्फल ही है ॥३॥

आत्मार्थं जीव लोकेऽस्मिन्को न जीवति मानवः ।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति ॥ ४ ॥

अपने आपके लिये इस जीव लोक में कौन मनुष्य नहीं जीवित होता है। अर्थात् सभी जीवित रहते हैं। परन्तु जो मनुष्य परोपकार के लिये जीता है असल में जीवित वही कहलाता है ॥ ४ ॥

रविश्चन्द्रो घना वृक्षा नद्यो गावश्च सज्जनाः ।
एते परोपकाराय युगे दैवेन निर्मिताः ॥ ५ ॥

सूर्य, चन्द्रमा, बादल, वृक्ष, नदियां, गौवें और सज्जन पुरुष, इन सब को ही परमात्मा ने संसार में परोपकार के लिये बनाया है। इसीलिये यह सब सदा परोपकार में ही रत रहते हैं ॥ ५ ॥

कृते प्रत्युपकारो यो वणिग्धर्मो न साधुता ।
तत्रापि ये न कुर्वन्ति पशवस्ते न मानुषाः ॥ ६ ॥

अपने साथ जो अच्छा वर्ताव करे उसके साथ प्रत्यपकार करना बनिया धर्म है यह सज्जनता नहीं है। जो लोग उपकारी को भी उपकार नहीं करते वे तो पशु हैं मनुष्य नहीं हैं ॥ ६ ॥

गुरुदत्त लेखावलि पर सम्मतियां

श्री पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती सम्पादक आर्योदय जालन्धर

आर्य समाज के प्रसिद्ध वाग्मी विद्वान् स्व० पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० ने इंगलिश में कुछ उपयोगी लेख लिखे थे। हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० सन्तराम जी बी० ए० तथा श्री पं० भगवद्दत जी बी० ए० ने इसका अनुवाद किया है। पुस्तक के विषय में कुछ भी लिखना अनावश्यक है। पुस्तक सर्वथा उपादेय है। हम प्रत्येक आर्य भाई बहिन से अनुरोध करते हैं कि वेदप्रकाश के इस विशेषांक को अवश्य मंगा कर पढ़ें। पुस्तक १७२ पृष्ठ की है। वेदप्रकाश का वार्षिक मूल्य ३) रुपये है। उसी में यह विशेषांक मिल जावेगा।

श्री पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, सम्पादक गुरुकुल पत्रिका

आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए तथा अन्य सभी शिक्षित वर्ग के लिए यह गुरुदत्त लेखावलि नितान्त उपयुक्त है। हम उसकी यथेष्ट प्रचार की कामना करते हैं।

आर्यमित्र साप्ताहिक लखनऊ

महर्षि दयानन्द के पश्चात् आर्य समाज की ओर से पश्चिमीय विद्वानों को विद्वता पूर्ण एवं युक्तियुक्त उत्तर देने का जो कार्य पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० ने किया वह सदैव स्मरणीय रहेगा। उनकी रचनाओं का अध्ययन करना प्रत्येक आर्य के लिए उपयोगी और आवश्यक है।

यदि आप अभी तक वेदप्रकाश के स्थाई ग्राहक नहीं बने हैं तो आज ही ३) भेज कर ग्राहक बन जाइये। गुरुदत्त लेखावलि विशेषांक आपको इसी मूल्य में प्राप्त होगा।

पिछले वर्षों के विशेषांक भी ग्राहक बन जाने पर रियायती मूल्य में मिलेंगे:—

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	...	४॥),	रियायती मूल्य ३॥)
वाल्मीकि रामायण	...	१२),	" " ६)
सृष्टि का इतिहास	...	२),	" " १॥)
बृहदारण्यक उपनिषद् कथा माला		३),	" " २॥)
महर्षि से पूर्व का भारत	...	२),	" " १॥)

वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, देहली।

नवदम्पति को भेंट देने योग्य अनुपम

★ उपहार ★

भारतीय स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण व चिरस्थायी बनाने के लिये आज भारत को कर्मवीर, बुद्धिमान् व शौर्य-सम्पन्न युवकों की आवश्यकता है। उस आवश्यकता की पूर्ति आपके हाथों में है।

क्या आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान समाज में सम्मान प्राप्त करे यदि हां ! तो उसके लिए प्रयत्न करना आपका कर्त्तव्य है।

किस प्रकार ?

यह जानने तथा अनेक कर्त्तव्य से परिचित होने के लिए

इच्छानुसार संतानोत्पत्ति

यह पुस्तक मँगा कर अवश्य पढ़िए। पुस्तक पढ़ कर आप अनुभव करेंगे कि 'पुत्र या पुत्री, धर्मात्मा या पापी, शासक या चोर, जितेन्द्रिय या व्यभिचारी, गौर या श्याम वर्ण की" सन्तान का निर्माण तथा बर्थ कन्ट्रोल अपने ही हाथों में है।

इसकी महत्ता पढ़ने से ही विदित होगी

सजिल्द मूल्य २।।) डाक व्यय पृथक—

लेखक:—

बीरेन्द्र गुप्त

प्राप्ति स्थान—**वीरेन्द्रनाथ अश्विनी कुमार**

प्रकाशन मन्दिर, बाजार चौक, मुरादाबाद।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली में छपवाया।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

आर्य जगत् के महान् सन्त, परम तपस्वी, वीतराग स्वामी आत्मानन्द जी का स्वर्गवास

यह लिखते हुये हृदय फटता है और लेखनी रुकती है कि आर्य जगत् के महाधन और गौरव स्वामी आत्मानन्द जी महाराज का १२ दिसम्बर १९६० को गुरुकुल झज्झर जिला रोहतक में देहान्त हो गया।

स्वामी जी महाराज त्याग और तप की मूर्ति थे। वेद और दर्शनों के प्रकाण्ड विद्वान् थे, प्रभु के परम भक्त और योगी राज थे। आप सौम्यता और सरलता की प्रतिमा और बलिदान पथिक के सच्चे पथ-प्रदर्शक थे।

स्वामी विशुद्धानन्द जी की मृत्यु को आर्य जगत् भूल भी नहीं पाया था कि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी चल बसे। हम अभी अपने आंसू भी न पोंछ पाये थे कि स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ का देहावसान हो गया और हम अभी सम्भल भी न पाये थे कि स्वामी जी के रूप में एक सच्चा नेता, पथ प्रदर्शक और नाविक चल बसा। आप के स्वार्गवास से आर्य जगत् को जो क्षति हुई है उसका पूर्ण होना कठिन है।

सह सम्पादक— —जगदीश चन्द्र विद्यार्थी प्रभाकर, साहित्यरत्न

हमारे पाठक क्या कहते हैं ?

दिसम्बर के वेद प्रकाश में आप की टिप्पणियां पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। वस्तुतः 'नवनीत' में जब मैंने भी आर्य विद्वानों की प्रिय पुस्तकों के नाम पढ़े तो मुझे बड़ा खेद हुआ। आप की सभी टिप्पणियां उचित और अनुकूल है।
—भवानीलाल भारतीय एम० ए० सिद्धान्त वाचस्पति

वेद प्रकाश के इस अङ्क का सम्पादकीय लेख पढ़ा। कवि सम्मेलन पर टिप्पणी बहुत उत्तम है। और आर्य जनता के लिये रुचिकर है। वेद सम्मेलनों का सुझाव समाजें मान लें तो आर्य समाज वैदिक संस्था हो जावे। सम्प्रति भानमती का पिटारा है जिस में वेदातिरिक्त सब कुछ मिल सकता है।
—पं० वीरसेन जी वेदश्रमी इन्दौर

यह जानकर वस्तुतः हर्ष हुआ कि आप 'वेद-प्रकाश' के सम्पादन में सहयोगी हैं। आपके द्वारा वेद प्रकाश उन्नति करेगा ऐसी आशा है।
—ठाकुर अमरसिंह जी आर्य पथिक

"वेद प्रकाश" का मार्गशीर्ष का अङ्क मिला—आप की टिप्पणी पढ़ी। आप ने यह टिप्पणी लिखकर विद्वानों के साथ तुच्छ व्यवहार किया है।
—आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेद तीर्थ

[मैंने जो कुछ लिखा था वह एक ध्रुव सत्य था। क्या सत्य कहना भी तुच्छ व्यवहार है ? विद्यार्थी]

राधास्वामी मतालोचन विशेषांक

कई कारणवश जनवरी का राधा स्वामी मतालोचन अङ्क तैयार न कर सके। यह अङ्क आगामी मास में मिलेगा। मुख्य कारण मूल पुस्तक 'सार वचन' न मिलने का तथा अभी तक प्रचारार्थ मंगाने वालों का आर्डर प्राप्त न होने का है। अपने अमूल्य आर्डर आज ही भेजें। २५ प्रतियां ५), ५० प्रतिया १०) तथा १०० प्रतियों के लिए १८) भेजिये।
—व्यवस्थापक

❀ ओ३म् ❀

वेद प्रकाश

संस्थापकः—स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

वर्ष—६ : पौष २०१७ वि० : जनवरी १९६१ : वार्षिक मूल्य ३)

अंक—६ : दयानन्दाब्द १३६ : पौष १८८२ : विदेशों से ६ शिलिंग

ईश्वर का स्तवन

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥

इन्द्राय । साम । गायत । विप्राय । बृहते । बृहत ।
धर्म कृते । विपश्चित । पनस्यवे ॥

(विप्राय) = मेधावी, जगत को विशेष बल और विविध पदार्थों से पूर्ण करने वाले ।
(बृहते) = महान्
(धर्म कृते) = जगत के धारण करने योग्य प्रबन्ध को करने वाले ।
(विपश्चिते) = समस्त ज्ञानों और कर्मों को जानने वाले ।
(पनस्यवे) = स्तुति के योग्य ।
(इन्द्राय) = परम ऐश्वर्यवान, एवं ज्ञान दृष्टि से, समाधि द्वारा साक्षात् दर्शनार्थ परमेश्वर के ।
(बृहत साम) = महत्व सूचक "बृहत" नामक साम स्तुति गान का ।
(गायत) = गान करो ।

हे मनुष्यो !

मेधावी ! जगत को विशेष बल और विविध पदार्थों से पूर्ण करने वाले महान जगत के धारण करने योग्य प्रबन्ध को करने वाले, समस्त ज्ञानों और कर्मों को जानने वाले स्तुति के योग्य, परम ऐश्वर्यवान, एवं ज्ञान दृष्टि से, समाधि द्वारा साक्षात् दर्शनार्थ परमेश्वर के स्तुति गान को गाया करो ।

सम्पादकीय टिप्पणियां

क्या दयानन्द निर्भ्रान्त थे ?

इस विषय को लेकर पत्रों में पर्याप्त आलोचनाएं हुई हैं। इस प्रश्न में तथ्य कुछ नहीं हैं हां ऋषिवर की छीछालेदर अच्छी प्रकार की गई है। इतिहास में कदाचित् ही कोई उदाहरण देखने को मिले जहां किसी आचार्य के शिष्यों ने स्वयमेव अपने आचार्य के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा हो। क्या ऋषि दयानन्द के विरुद्ध इस प्रकार का प्रश्न उठाने वाले स्वयं निर्भ्रान्त हैं? जिन्हें स्वयं सिद्धान्तों का परिज्ञान नहीं, जिन्होंने अपनी पुस्तकों में वहुत सी अशुद्ध बातें लिख दी हों उन्हें ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के संशोधन से पूर्व अपने ग्रन्थों का संशोधन अवश्य कर लेना चाहिये। विदेह जी का वेद व्याख्या ग्रन्थ निकला। उसके प्रथम पुष्प में पृष्ठ १९ पर लिखा है "ममैव इदं सर्वम्—मेरा ही यह सर्वस्व। मयि एव इदं सर्वम्—मुझ में ही है यह सब।" यह स्पष्ट और निश्चित रूप से नवीन वेदान्त है परन्तु इस प्रश्न को उठाने वाले श्री उपाध्याय जी ने उन्हें अपनी सम्मति में लिखा—"पुष्प सुगन्धित है।" जब आप ने ये शब्द लिखे थे तब भी आप को उसे बुद्धि पर परखना चाहिये था। जहां आप को सुगन्ध आ रही है वहां मुझे पौराणिकता और नवीन वेदान्त की दुर्गन्ध आ रही है। यदि इस प्रकार की बातें करके ऋषि के ग्रन्थों में संशोधन किये गये तो ऋषि के ग्रंथ चूं चूं का मुरब्बा बन जायेंगे। यदि ऋषि के ग्रन्थों में अशुद्धियां हैं तो आप उन सब को छांट छांट कर पुस्तक का रूप दे दीजिये। जहां इतने ग्रन्थ आप ने लिखे हैं वहां यह भी सही। यदि दयानन्द के किसी सैनिक में, दयानन्द के किसी भक्त में शक्ति होगी तो आप को उत्तर दे दिया जायेगा। कृपया दयानन्द को इस प्रकार पत्रों में न घसीटें।

यह कैसी पूजा ?

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध संन्यासी, परम तपस्वी, वीतराग श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज का १२ दिसम्बर को देहावसान हो गया। श्री

आचार्य भगवान् देव की अनिच्छा पर भी उनका शव दाह कर्म के लिये देहली लाया गया। बहुत से सज्जनों ने इसे पाखण्ड कहा, बहुतों ने धन का अपव्यय भी बताया। परन्तु यह सब कुछ क्यों हुआ ? इसलिये कि कुछ लोग अपनी लीड़री चमकाना चाहते थे, स्वामी जी के शव के साथ अपने चित्र खिचवाना चाहते थे। कारण स्पष्ट है, जो लोग शव को यहां लाये यदि उन्हें स्वामी जी में श्रद्धा और प्रेम होता तो उन के दाह कर्म के लिये चन्दन की लकड़ियां एकत्रित करते। इस पर अधिक से अधिक १०००) खर्च होता। इतना धन तो "सार्वदेशिक सभा' भी दे सकती थी। यदि झज्झर से घी न आता तो देहली वाले लीडरों ने तो केवल दो कनस्तर घी का प्रबन्ध किया था। लकड़ियां भी थोड़ी थी आचार्य भगवान् देव जी ने कह कर पुनः मंगवाई थी। शव यात्रा के साथ जाने वाले व्यक्तियों ने स्वामी जी पर फूल मालाएं चढ़ाई जिन की कोई उपयोगिता नहीं थी। यदि फूल मालाओं के अतिरिक्त एक एक छटांक सामग्री भी ये लोग ले जाते तो सामग्री का ढेर लग जाता।

आर्य जगत् के विद्वान् उठते जा रहे हैं और नवयुवक आ नहीं रहे हैं कारण लोगों में सच्ची श्रद्धा नहीं। आर्यो सच्ची पूजा करो, मरने पर अपनी लीडरी चमकाने के लिये झूठी श्रद्धा मत दिखाओ।

लीडरों के पीछे मरना छोड़ो ?

कुछ लोग अपने तुच्छ राजनैतिक स्वार्थों के कारण जब भी कोई बड़ा उत्सव हो तो उस के प्रधान पद के लिये किसी राजनैतिक लीडर को पकड़ते हैं फिर चाहे वह आर्य समाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध ही क्यों न बोले। मुझे सन् तो स्मरण नहीं, यह तो केन्द्रिय सभा वालों की फाइलों में होगा परन्तु यह ध्रुव सत्य है कि सत्यआवां स्कूल में ऋषि बोधोत्सव मनाया जा रहा था और उसके अध्यक्ष थे श्री कैलाशनाथ जी काटजू। आप ने अपने भाषण में कहा था "स्वामी जी मूर्ति पूजा को नहीं मानते थे परन्तु मैं मानता हूँ।" प्रबन्धकों के लिये यह चेतावनी थी परन्तु इसके पश्चात् भी लीडरों को बुलाया जाता रहा। कल २५।१२।६० को श्रद्धानन्द बलिदान जयन्ती के अवसर पर सेठ गोविन्ददास जी को सभा प्रधान बनाया गया। आपने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, "मैं सनातनी हूँ, मूर्तिपूजक हूँ और श्राद्ध में भी निष्ठा रखता हूँ।" यह आर्य समाज की वेदी से महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित और स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा अनुमोदित, समर्थित और प्रचारित सिद्धान्तों का प्रचार हो रहा है ?

अपने संन्यासियों और विद्वानों को मान और सम्मान दो। वैदिक

सिद्धान्तों के मर्मज्ञों को व्यास वेंदी पर बैठाओ। अन्य व्यक्ति को यदि बुलाना है तो सभा पति कदापि मत बनाओ। पार्टी बाजी छोड़कर अपनों को आगे बढ़ाओ, लीडरों के पीछे मरना छोड़ो इसी में गौरव है और इसी में आर्य समाज की उन्नति सन्निहित है।

आर्य समाज के पुस्तकाध्यक्ष

आर्य समाज के पुस्तकाध्यक्षों का जो कर्तव्य है प्रायः पुस्तकाध्यक्ष उनका पालन नहीं करते। पुस्तकाध्यक्षों का कर्तव्य केवल पुस्तकें देना ही नहीं है। उन का यह भी कर्तव्य है कि वे यह देखें कि वेद अथवा शास्त्रों के सम्बन्ध में इस मास कौन सा नया ग्रन्थ छपा है और फिर उसे पुस्तकालय में मंगवाएं। अपने सदस्यों से सम्पर्क स्थापित करें और यदि वे प्रतिसप्ताह पुस्तकें न लेते हों तो उन्हें उनकी रुचि के अनुकूल साहित्य देने का प्रयत्न करें। इनके अतिरिक्त निमोपनियमों में पुस्तकाध्यक्ष का यह कर्तव्य भी लिखा है कि वे पुस्तकें बेचें। प्रत्येक समाज में वेद, सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, संस्कारविधि, व्यवहार भानु आदि ग्रन्थ तो विक्रयर्थ होने ही चाहिये। इनके साथ अन्य ग्रन्थ भी रक्खे जा सकते हैं। आज जब कि डाक व्यय बहुत अधिक बढ़ गया है प्रत्येक पुस्तकालय के साथ एक पुस्तक विक्रय विभाग होना ही चाहिये। यदि २०-२५ पुस्तकें रेल द्वारा मंगवाई जायें तो २॥) अथवा ३) रुपया खर्च आयेगा परन्तु यदि डाक द्वारा एक एक प्रति मंगवाई जाये तो एक प्रति पर ही लगभग एक रुपया खर्च हो जाता है। यदि पुस्तक का मूल्य २) हो और एक रुपया डाक व्यय लग जाये तो बहुधा इच्छा होते हुए भी पुस्तक नहीं मंगवाई जाती। अतः समाजों में इस विभाग की अत्यावश्यकता है।

क्या मैं आशा करूं कि पुस्तकाध्यक्ष महोदय अपने अधिकार के साथ साथ अपने कर्तव्य का भी पालन करेंगे।

"विद्यार्थी"

सन्ध्या विनय : [लेखक:—प्रिंसिपल नित्यानन्द वेदालङ्कार एम. ए.]

सन्ध्या के प्रत्येक मन्त्र पर भावपूर्ण प्रार्थना, सुन्दर छपाई, बढ़िया कागज आकर्षक आवरण पृष्ठ सं० १२८ मूल्य १) मात्र। **आचार्य अभयदेव जी विद्यालङ्कार** लिखते हैं। "मन्त्रों पर लिखी सुन्दर भावपूर्ण विनयों को पढ़ कर प्रसन्नता हुई। मुझे आशा है ये विनय बहुत से भाइयों को शान्ति और स्फूर्ति दे सकेगी।

आर्य जगत की महती क्षति

[लेखक—श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती]

श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के देहावसान के कारण आर्य समाज को अपार क्षति पहुंची है। यह निश्चित मत है कि कोई किसी का स्थान नहीं ले सकता, महात्माओं के स्थान की तो बात ही क्या है ? स्वर्गीय स्वामी जी ने सदा आर्य समाज के गौरव को सुरक्षित रखा। उनकी तेजस्विता के दर्शन सामान्य रूप से उत्तर भारतीयों और विशेष रूप से पंजाब वासियों ने उस समय किये जब कि उन्होंने हिन्दी रक्षा आंदोलन का नेतृत्व किया। आप की उच्चस्थिति का आदर करते हुये ही पंजाब सरकार ने आपको आदर पूर्वक उन के वैदिक साधन आश्रम में ही छोड़ा। एक बार नहीं अधिक बार।

आप क्या थे—यह बताना साधारण बात नहीं। फिर भी उनके कुछ विशिष्ट गुणों पर प्रकाश डालते हैं।

१. वीतराग संन्यासी—संन्यासी का यह प्रमुख लक्षण है कि वह लोक—वित्त—पुत्र इन तीनों प्रकार की एषणाओं से परे हो, जिसको लौकिक मान-अपमान प्रभावित न कर सकें। धनैश्वर्य की आसक्ति न हो। कुटुम्ब परिवार का मोह बन्धन में न डाल सके। लोकहित के रूप में समवृत्ति धारण करके कार्य करे। यह गुण स्वर्गीय स्वामी जी महाराज में प्रत्यक्ष दिखाई देता था।

२. विद्या—आप में संस्कृत विद्या का अगाध पाँडित्य था। वेद व्याकरण, दर्शन और साहित्य विषयों पर साधिकार लिखते और बोलते थे। संस्कृत और उर्दू में भावपूर्ण कविता भी करते थे। आपने अनेक ग्रन्थ लिखे। 'मनोविज्ञान और शिव संकल्प' ग्रन्थ में आपका वैज्ञानिक पांडित्य भली प्रकार प्रकाशित हुआ है। गुरुकुल पोठोहार आदि कई संस्थाओं का संचालन किया। सभा के दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय के आचार्य पद को विभूषित किया।

३. जन सेवा—इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि पंजाबी मुसलमान, पठान और काश्मीरी मुस्लिम आपको 'पीर' के रूप में मान देते थे। १९४७ के भीषण संघर्ष के समय रावलपिंडी शिविर से एक एक हिन्दू-सिख को भारत भिजवा कर सब से पीछें भारत में पहुँचे।

४. योगाभ्यास—स्वयं योगारूढ़ होकर जनता में योग प्रणाली के प्रचार के लिए अनेक शिविरों का आयोजन किया। प्रतिवर्ष वैदिक साधन आश्रम यमुना नगर में योग शिविर लगाते रहे।

५. सभा प्रधान—पाकिस्तान बनने से आर्य समाज की शक्ति बिखर गई। इसका प्रभाव आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब पर पड़ना अनिवार्य था। वेदप्रचार की स्थिर निधि समाप्त हो गई। ऐसे समय सभा के प्रधानपद को आप ने सम्भाला और सभा की गिरती हुई साख को बचा ही नहीं लिया, अपितु उन्नति के मार्ग पर अग्रसर कर दिया।

६. हिन्दी रक्षा आंदोलन—वृद्धावस्था होने और रक्तचाप से रुग्ण होने पर भी जिस तन्मयता से हिन्दी रक्षा आंदोलन का संचालन किया, उसकी अमिट छाप प्रत्येक हिन्दी प्रेमी के हृदय पर लग गई।

आप के इन गुणों के कारण कुछ स्वार्थी लोग आपकी सच्चरित्रता से अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे, परन्तु आप समदृष्टि होने पर उनका भी भला ही करते रहे।

वैदिक साधनाश्रम यमुना नगर आप की उपस्थिति के कारण आर्य तीर्थस्थल बना रहा। रुग्णावस्था में वैदिक साधन आश्रम और दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय के निवासियों ने आपकी सब प्रकार की सेवा की। अधिक सेवा करने की भावना से श्री आचार्य भगवान् देव जी यमुना नगर से श्री स्वामी जी महाराज को गुरुकुल झज्झर ले आये और सेवा, औषधि तथा उपचार आदि में कोई कसर उठा नहीं रखी। परन्तु परमेश्वर के अटल नियमों की व्यवस्था के आधीन श्री स्वामी जी महाराज १२ दिसम्बर ६० को प्रातः ६। बजे इस नश्वर शरीर से प्राणों को निकाल कर अखण्ड आदित्य लोक के लिए प्रस्थान कर गये।

दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय तथा वैदिक साधन आश्रम यमुना नगर के समस्त छात्र, अध्यापक एवं वासियों के साथ गुरुकुल झज्झर के समस्त कुल वासियों के प्रति आर्य जनता के प्रतिनिधि स्वरूप हम आभार प्रकट करना अपना धर्म समझते है। यदि मैं एक विशेष नाम का वर्णन न करूं तो कृतघ्नता के दोष से बच नहीं सकता। दयानन्दोपदेशक विद्यालय के सुयोग्य छात्र श्री ओम्प्रकाश जी सिद्धान्त शिरोमणि ने लगातार कई वर्ष से श्री स्वामी जी महाराज की एक निष्ठ होकर जो सेवा की है, आर्य जनता इस सेवा की ऋणी है। स्वामी जी महाराज जहां भी जाते थे वहीं श्री ओम्प्रकाश जी सेवा में रत रहते थे। गुरुकुल झज्झर के सारे ब्रह्मचारी, अध्यापक वैद्य और अन्य कार्यकर्ता सेवा में उपस्थित रहते थे।

पूज्य आचार्य भगवानदेव जी समस्त शक्ति सेवा कार्य में लगा रहे थे—इतने पर भी श्री ओम्प्रकाश जी अपने सेवा कार्य से विलग नहीं हूए। भगवान् हमारे सुपठित नवयुवकों में यह श्रद्धा सेवाभाव अंकुरित करे। श्री ओम प्रकाशजी ने सेवा का आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत किया है। परमेश्वर आप को सफल मनोरथ करे।

आर्य जगत की इस महती क्षति को हमें विवश सहन करना ही पड़ेगा। कोई उपाय नहीं। परमेश्वर से यही प्रार्थना की जा सकती है कि आर्य जाति में इस उच्च भावना के धर्मात्मा विद्वान् संन्यासी जन्म लेते रहे रहें और उपकार करते रहें।

स्वामी जी महाराज के देहान्त की सूचना गुरुकुल झज्झर से चारों ओर फैल गई। सैकड़ों गांवों के श्रद्धालु आर्य बन्धु पहुँचने लगे। श्री प्रो० शेरसिंह जी एम० ए०, एम० एल० ए० के साथ मैं सूचना मिलते ही तुरन्त गुरुकुल झज्झर पहुँच गया। वहां निश्चय हुआ कि स्वामी जी महाराज का दाह संस्कार देहली में ही किया जाये। १३-१२-६० को गुरुकुल झज्झर से श्री आचार्य भगवान देव जी, श्री रघुवीरसिंह जी शास्त्री और श्री प्रिंसिपल लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित गुरुकुल के ब्रह्मचारी स्वामी जी के शव को लेकर सायंकाल ठीक ४ बजे देहली दंगल ग्राऊंड में पहुँच गये। झज्झर नगर में हजारों लोगों ने स्वामी जी के दर्शन किये फिर बहादुरगढ़ में यही हुआ हरयाणा देहात के कई सौ आर्य देहली की ओर सामग्री ले लेकर देहली पहुँच गये। गुरुकुल कांगड़ी तथा उत्तर प्रदेश के अनेक स्थानों से भी लोग पहुँचे। शिमला, अम्बाला, करनाल, पानीपत, रेवाड़ी, गुड़गांवा, जींद, रोहतक आदि स्थानों से आर्यजन सम्मिलित हुए। उसी समय देहली के चांदनी चौक आदि से होता हुआ शव जलूस निगम बोध घाट पर पहुँचा। जुलूस का प्रबन्ध देहली आर्य केन्द्रीय सभा के प्रधान श्री लाला रामगोपाल शाल वाले और मन्त्री श्री नारायणदास जी कपूर ने उत्तम रीति से किया। देहली के हजारों भाई बहिन जुलूस में गायत्री मन्त्र बोलते हुए शांत रूप से चल रहे थे। श्री महाशय कृष्ण जी आर्य, श्री पं० सुखदेव जी, श्री पं० रामनाथ जी वे० अ०, श्री पं० मनोहर जी, श्री सत्यदेव जी वि० अ०, श्री-क्षितीशकुमार जी वे० अ० प्रो० रामसिंह जी, चौ० देशराज जी, श्री-रामनाथ जी भल्ला, डा० हरिप्रकाश जी, श्री चरणदास जी पुरी, श्री पं० विद्याधर जी स्नातक आदि गण्य मान्य आर्य नेता एवं प्रतिष्ठित महानुभाव सम्मिलित थे। देवियां बहुत बड़ी संख्या में पहुंची हुई थी। कन्या गुरुकुल

[शेष पृष्ठ २८० पर]

राधास्वामी मत और जुष्ठ (जूठा) भोजन ।

[लेखक-आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा, 'पथिक' बी० ए०, विद्यावाचस्पति, कानपुर]

वैदिक धर्म में किसी भी व्यक्ति का जुष्ठ भोजन करना निषिद्ध माना जाता है। राजर्षि मनु जी ने स्पष्ट कहा है कि:—

"नोच्छिष्टं कस्यचिदद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टं क्वचिद् व्रजेत् ॥"

[मनुस्मृति २।५६]

अर्थात्—किसी को जूठा न देवे और भोजन के मध्य में भी भोजन न खावे अर्थात् ठहर २ कर न खावे। न विशेष भोजन करे और न जूठे मुख कहीं जावे।"

पं कुल्लूक भट की टीका:—"नोच्छिष्टमिति ॥ भुक्तावशेषं कस्यचिन्न दद्यात्। चतुर्थ्यां प्राप्तायां सम्बन्धमात्रविवक्षयाषष्ठी। अनेनैव सामान्य निषेधेन शूद्रस्याप्युच्छिष्टदाननिषेधे सिद्धे 'नोच्छिष्टं न हविष्कृतम्' (४।८०) इति शूद्रगोचर निषेधश्चातुर्थस्नातक व्रतकुर्यात्। नातिसौहित्यमाचरेदिति चातुर्थस्नातकव्रतार्थम्। उच्छिष्टः सन् क्वचिन्नगच्छेत्।" १

महर्षि दयानन्द जी महाराज:—"न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोये बिना कहीं इधर उधर जाय।" २

शूद्र को झूठा देने का निषेध मनु जी करते है :—

"न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं नं हविष्कृतम् ॥" **[मनु० ४।८०]**

(पं० कुल्लूक भट्ट जी ने भी अपनी संस्कृत टीका में इसे उद्धृत किया है)—अर्थात्—"शूद्र को बुद्धि और झूठा और होम शेष का भाग न दे।"

---

१ 'मनुस्मृतिः' पृष्ठ ४५ [सन् १९४६ ई० में निर्णय सागर मुद्रण यन्त्रालय २६-२८, कालभट्ट स्ट्रीट, बम्बई द्वारा प्रकाशित]

२ "सत्यार्थ प्रकाश" दशम समुल्लास।

राधास्वामी मत में जूठा खाना, थूक चाटना, गुरु का अंगूठा पीना अच्छा माना जाता है।

"....पीकदान ले पीक करावे। फिर सब पीक आप पी जावे ॥२७॥
नाना विधि की सेवा करे। नीच ऊंच जो जो आ पड़े ॥२८॥
[सार वचन]

अर्थात्—"जब गुरु महाराज पीक फेंकना चाहें तो पीकदान पेश करे और पीकदान साफ करते समय फेंकने के बजाय स्वयं उसे पी जाये।"...

"कुत्ता अपने लब से अपने जख्म को चङ्गा कर लेता है। गाय, भैंस वगैरह जानवर अपने बच्चों को चाट कर ताकत देते हैं। जब जानवरों के लब में इस कदर अमृत है, तो सन्त सत गुरु साध गुरु और प्रेमी सत्सङ्गी के लब में जिनकी धारा अमृत के भण्डार से ऊंचे मुकाम से आती है, अवश्य असर होता है।" [जी० स्वामी द० पृष्ठ १०५]

रोग की महौषधि:—हजूर महाराज के चरणामृत प्रसादी व मुख अमृत साधु ग्रहण करते थे। जिससे मन की सफाई सुरत के सिमटाव हासिल होता था। अकसर बीमारियें जमाने बबा में जिन गैर सत्संगियों ने भी उनका इस्तेमाल किया, शफायाब हुए और बबा से महफूज रहे।"
[जी० पृ० ८७]

प्रतिदिन थूक चाटना:—"हजूर साहब चरणामृत 'प्रसादी' मुख अमृत वा पीकदान का अमृत स्वामी जी महाराज का रोजाना लेते थे।"
[जी० पृ० ३३ दफा ४१]

जूठ का महात्म्य—"कुल्ली दई स्वामी कुल मेरा उधारा,
जन्म सुफल और तन मन सुधारा।
तेल मला और चमक बढ़ाई,
शोभा राधा स्वामी अधिक बढ़ाई,
कंघा किया स्वामी बाल संवारे,
गया जंजाल मोह मद हारे।
सीत प्रसाद सभी मिल लीन्हा,
जन्म जन्म के पातक दीना।
जो गावे यह सेवा बानी,
सो पावे सत लोक निशानी।
ग्रास दिया प्रसादी जब ही,
घट के परदे खुल गये तब ही॥"
[सा० भा० २ व० ४२]

अर्थ--"स्वामी ने जब मुझ को पानी का झूठा कुल्ला दिया तब मेरे खानदान का उद्धार हो गया। जन्म सुफल हो गया। तथा तन, मन सुधर गया। कंघा करके जब महाराज के बाल संवारे तब मोह मद दूर हो गया तथा सब जंजाल कट गये। जब शिवदयाल का जूठा प्रसाद खाया तब जन्म जन्म के पातक कट गये। जब अपना जूठा ग्रास दिया तब ही घट के परदे खुल गये।"

अंगूठा चूसना:—"जब स्वामी जी हुक्का पीते थे तो बुक्को जी उनके चरण का अंगूठा मुंह में लेकर घण्टों चूसती रहती थीं, और जब कोई मत्था टेकने आता तो चरण नहीं छोड़ती थीं तब उनको कह दिया जाता था कि तुम दूसरे चरण पर मत्था टेक लो इस प्यासी को मत हटाओ। और वह कहती थीं कि मुझ को इसमें दूध का सा रस आता हैं।" [जी० द० ६५]

चाटना:—"राधा स्वामी कर्म भर्म काटे री,
राधा स्वामी चरण जभी चाटे री।" [सारवचन ३]

समीक्षा—राधा स्वामी मत में यह पद्धति अत्यन्त दूषित है। यह वैज्ञानिक, डाक्टरी, आयुर्वेदिक, हकीमी सभी दृष्टिकोण से हानिकारक है। थूक से नाना प्रकार की बीमारियां फैलती हैं। यदि गुरु महाराज को कोई संक्रामक रोग हो और उनका जूठ शिष्य खा ले तो उसको भी वह रोग अवश्य हो जायेगा। अतः यह मत अत्यन्त अविवेकपूर्ण है।

गुरु का पीक पीना अघोड़पन नहीं तो क्या है? क्या इससे मुक्ति मिल जाती है?

पशुओं के उदाहरण देकर यह सिद्ध करना कि गुरु का थूक भी चाटना चाहिये, मूर्खता है।

क्या पीकदान में पीक कराकर पी जाना बीमारियों का घर नहीं है?

पराई महिला से अपने पैर का अंगूठा चुसवाना यह कौन से शास्त्र की वात है? क्या गुरु जी का अंगूठा गाय का थन था कि दूध का सा आनन्द आता था? इस मूर्खता को क्या कहा जाय? इस मत में धर्म, कर्म ज्ञान, सव बातों का खण्डन है पर चरण चाटने में क्या रहस्य है? क्या राधा स्वामी का पांव शक्कर का था जिसके चाटने से कर्म मर्म कट जाता है?

साहब जी महाराज आनन्द स्वरूप साहब ने इस अवैज्ञानिक मत को सत्य सिद्ध करने के लिये तथा आर्य समाज की नुक्ताचीनी करने के लिये "यथार्थ प्रकाश" तीन भागों में लिखा था जिसका प्रथम संस्करण

१९३४ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस में आर्य समाज तथा महर्षि दयानन्द जी पर व्यर्थ के दोषारोपण हैं।

जूठा खाने की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये साहब जी महाराज ने लिखा है:—

"...राधा स्वामी मत में सतगुरु की एक विशेष स्थिति (पोजीशन) है इसलिये उनके उपयोग में आई हुई वस्तुओं को पवित्र समझा जाता है और यह कोई नई बात नहीं है।"

'पारस्कर गृह्यसूत्र' काण्ड १ कण्डिका ३ में, जहां अर्घ्य और मधुपर्क की प्रथा का वर्णन आया है, लिखा है कि—मधुपर्क का उच्छिष्ट (जूठा बचा हुआ) उत्तर की ओर बैठे हुये पुत्र और विद्यार्थी को देवे।"३

साहब जी महाराज ने पुनः अपनी पुस्तक के पृष्ठ ११३ से १३० तक गुरुगीता, महाभाष्य, उपनिषद्, बाइबिल आदि से सिद्ध करने का प्रयास किया है कि गुरु का उच्छिष्ट खाने में कोई दोष नहीं है।

साहब जी महाराज को 'उच्छिष्ट' शब्द देख कर भ्रम हो गया है कि गुरु का जूठा खाने में दोष नहीं है, पर जब मनुस्मृति के अनुसार किसी का भी जूठा खाने का निषेध है तो इस प्रकार का प्रमाण प्रस्तुत करना व्यर्थ है।

'उच्छिष्ट' शब्द का प्रयोग द्विविध (दो प्रकार का) है। भोजनपात्र में भोजन करने के बाद शेष भोजन उच्छिष्ट समझा जाता है। पर जब इस शब्द का प्रयोग किसी मान्य व्यक्ति गुरु, माता, पिता आदि को भोजन कराकर, पृथक्, पात्र में रखे शुद्ध खाद्य पदार्थ को खाने के अर्थ में भी होता है। भोजन पात्र में खाद्य पदार्थ छोड़ना ही अविवेकता है।

'उच्छिष्ट' के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी महाराज ने "सत्यार्थ प्रकाश" दशम समुल्लास में लिखा है:—

"(प्रश्न) "गुरोरुच्छिष्ट भोजनम्" इस वाक्य का क्या अर्थ होगा?

(उत्तर) इसका यह अर्थ है कि गुरु के भोजन किये पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है उसका भोजन करना अर्थात् गुरु को प्रथम भोजन कराके पश्चात् शिष्य को भोजन करना चाहिये।

(प्रश्न) जो उच्छिष्टमात्र का निषेध है तो मक्खियों का उच्छिष्ट, शहद, बछड़े का उच्छिष्ट दूध और एक ग्रास खाने के पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है पुनः उसको भी न खाना चाहिये।

३ 'यथार्थ प्रकाश भाग १-२, प्रथम संस्करण ७०-७१।

(उत्तर) शहद कथन मात्र ही उच्छिष्ट होता है परन्तु वह बहुत सी औषधियों का सार ग्राह्य, बछड़ा अपनी मां के बाहिर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं पी सकता इसलिए उच्छिष्ट नहीं परन्तु बछड़े के पिए पश्चात् जल से उसकी मां के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दोहना चाहिए। और अपना उच्छिष्ट अपने को विकारकारक नहीं होता, देखो ! स्वभाव से यह बात सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई न खावे जैसे अपने मुख, कान, आंख उपस्थ और गुहेन्द्रियों के मलमूत्रादि के स्पर्श में घृणा नहीं होती वैसे किसी दूसरे के मलमूत्र के स्पर्श में होती है। इससे सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टिक्रम से विपरीत नहीं है इसलिए मनुष्यमात्र को उचित है कि किसीं का उच्छिष्ट अर्थात् जूठा न खाये।

(प्रश्न) भला स्त्री पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें ?

(उत्तर) नहीं, क्योंकि उसके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न भिन्न है ?

अतः साहब जी ने बिना सोचे समझे जूठा खाने के लिए व्यर्थ का प्रमाण एकत्रित करके साधारण जनता को भ्रम में डाला है। किसी भी व्यक्ति का जूठा खाना खिलाना दोष है।

❀ ❀ ❀ ❀

[शेष पृष्ठ २७५ का]

की सब छात्राएं तथा अध्यापिकाएं उपस्थित थीं। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, आर्य केन्द्रीय सभा देहली तथा देहली और समीपस्थ सब आर्य सामजों के कतिपय अधिकारी तथा सदस्य उपस्थित थे।

दाहकर्म गुरुकुल झज्झर और दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय यमुना नगर के अधिकारियों एवं छात्रों ने अनेक आर्य विद्वानों के सहयोग से कराया। १२ मन घी और १२ मन सामग्री की आहुतियां दी गईं। गुरुकुल झज्झर और और जिला रोहतक के आर्य ग्रामीण भाई ८ मन सामग्री लाये थे। हरयाणा आदि शक्ति के प्राण महाशय भरतसिंह जी अपने साथियों के सहित यज्ञ कुण्ड में आहुतियां दे रहे थे।

देहली नगर वासियों ने इतना बड़ा शांत जुलूस अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान जुलूस के बाद देखा।

—❀❀—

★पुस्तक समालोचना★

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां भेजनी चाहियें।

उपनिषदों का संदेश:—प्रवचन कर्ता ग्रानन्द स्वामी जी महाराज। ग्रनुवादक श्री जगदीश चन्द्र विद्यार्थी। प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली पृष्ठ संख्या २०×३०=१६, २०४। मूल्य १-२५ नये पैसे।

ग्रानन्द स्वामी जी की पुस्तक जिन लोगों ने पढ़ीं हैं वे जानते हैं कि स्वामी जी की पुस्तकों में किस प्रकार के रत्न रहते हैं। स्वामी जी महाराज ग्रध्यात्म मार्ग के पथिक हैं ग्रौर उनकी प्रत्येक पुस्तक में इसका पुट रहता ही है। इस पुस्तक में स्वामी जी ने उपनिषदों के कुछ विशिष्ट स्थलों को लेकर ग्रपने जीवन का विकास करते हुए, इस जीवन को सुखी बनाते हुए पारलौकिक उन्नति के मार्ग का विशद वर्णन किया है। ग्रारम्भ में उपनिषदों का महत्व बताकर स्वामी जी ने उपनिषद् का सर्वप्रथम सन्देश बताया है 'दृढ़ संकल्प' जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ग्रावश्यक है। दूसरा सन्देश है ग्रन्न उपार्जन ग्रौर ग्रन्न का ग्रर्थ सर्व प्रकार की गृहस्थ सामग्री ग्रौर फिर तीसरा सन्देश है दान। चौथा सन्देश है ईश्वर की प्राप्ति ग्रौर ईश्वर की प्राप्ति किस प्रकार होगी? किस को ईश्वर के दर्शन होंगे यह सब कुछ उपनिषदों के ग्राधार पर ही बताया गया है। पुस्तक बहुत ही उपयोगी ग्रौर पठनीय है। ग्रनुवाद उत्तम है। इस सुन्दर पुस्तक के प्रकाशन पर मैं प्रकाशक को हार्दिक बधाई देता हूँ।

—कृष्ण स्वरूप बी० ई।

वेदवाणी—काशी। मासिक २०×३०=८। कागज उत्तम। वार्षिक शुल्क ५) प्रकाशक रामलाल कपूर ट्रस्ट है। सम्पादक पं०-ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। 'वेदवाणी' का नवम्बर दिसम्बर १९६० का वेदाङ्क है। वेदवाणी प्रति वर्ष ग्रपने पाठकों को एक वेदाङ्क भेंट करता है। जिसमें ग्रार्य जगत् के विद्वानों के उच्च कोटि के लेख रहते हैं। इस ग्रङ्क में ग्रध्यात्म पिपासुग्रों के लिए ग्रात्मा परमात्मा ग्रौर योग सम्बन्धी तीन महत्वपूर्ण लेख हैं जो ग्रार्य जगत् के उच्च कोटि के सन्यासियों द्वारा लिखे गये हैं। गणित में रुचि रखने वालों के लिये गणित के सुन्दर फार्मूले हैं। भाषा विज्ञान में रुचि रखने वालों के लिये पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक का लेख बहुत महत्वपूर्ण है। गृहस्थियों के लिये गृहस्थ सम्बन्धी उत्तम सामग्री

है। भारतीय संस्कृति और अफरीकी संस्कृति लेख पढ़ने योग्य है। वैदिक सोम में सोम का वास्तविक अर्थ दर्शाया गया है। अङ्क में कुल मिला कर ३३ लेख हैं और सभी उत्तम हैं। अङ्क प्रत्येक प्रकार से महत्वपूर्ण बन पड़ा है। प्रत्येक लेख में वेद के उद्धरण हैं। वस्तुतः 'वेदवाणी' अपने नाम को चरितार्थ कर रही है। १३२ पृष्ठ के इस अङ्क का मूल्य भी केवल एक रुपया मात्र है। अङ्क पठनीय और संग्रहणीय है : "विद्यार्थी"

शिवलिंग पूजा पर्यालोचनः—लेखक आचार्य विशपूजनसिंह कुशवाहा पथिक, बी० ए० सिद्धान्त वाचस्पति, साहित्यलङ्कार। प्रकाशक जयदेव ब्रदर्स, पुस्तक विक्रेता, बड़ौदा पृष्ठ संख्या २४ मूल्य २५ नये पैसे।

प्रस्तुत पुस्तक में शिवलिंग की विवेचना है। लेखक ने पुराणों के अनेक उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि उन पौराणिक मन्दिरों में जिस शिवलिंग की पूजा होती है वह वस्तुतः शिव की उपेन्द्रिय है। छपाई और कागज साधारण है। टाइटल सुन्दर और आकर्षक है। पुस्तक का मूल्य कुछ अधिक प्रतीत होता है। "विद्यार्थी"

मुक्ति सोपानः—लेखक—स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी। प्रकाशक आर्य कुमार सभा किंग्जवे दिल्ली। २०×३०=१६। ४० पृष्ठ मूल्य-३० नये पैसे।

मुक्ति सोपान का यह तृतीय सोपान है। इस भाग में स्वामी जी महाराज ने स्फुट लेख लिखे थे। ये लेख व्यष्टि और समष्टि धर्म से सम्बन्धित है। लेखो के शीर्षक इस प्रकार हैं—स्वास्थ्य के बाह्य नियम, संन्यास विच्छेद वा उद्धार, मनुष्य जाति का सुधार कैसे हो, जातीय आत्मविचार की आवश्यकता, कितने अवसर विसार दिये, इस अधूरे यत्न से क्या होगा और वर्णाश्रम धर्म के सुधार से ही संसार का सुधार होगा। प्रत्येक लेख भावपूर्ण, शिक्षाप्रद और पठनीय है। पुस्तक की छपाई सुन्दर है, कागज उत्तम है और आवरण पृष्ठ सुन्दर एवं आकर्षक है। "विद्यार्थी"

स्वामी नित्यानन्द जीवन और कार्यः—सम्पादक श्री विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०। प्रकाशक विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर (पंजाब) पृष्ठ संख्या १८×२०=८। १३८। मूल्य-२-५० नये पैसे।

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान में वेद के सम्बन्ध में बड़ा ही महत्वपूर्ण एवं गवेषणापूर्ण कार्य हो रहा है। स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी और उनके सहयोगी स्वामी नित्यानन्द जी को अपने प्रचार काल में एक

[शेष पृष्ठ २८६ पर]

ओ३म् शब्द की महत्ता

[सुरेश चन्द्र वेदालंकार एम. ए. एल. टी. डी. बी. कालेज, गोरखपुर [

यह ओंकार शब्द परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है। क्योंकि इसमें जो अ उ म् तीन अक्षर मिल कर एक 'ओम्' समुदाय है इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं। 'ओ३म्' यह परमात्मा का संक्षिप्त नाम है। प्राचीन काल में संक्षिप्त नाम लिखने की प्रणाली प्रचलित थी। आज-कल भी एन. ई. आर. आदि रेलों के संक्षिप्त नाम हैं। ऐसे ही ओ३म् भी परमात्मा का संक्षिप्त नाम है। इसके तीनों अक्षर किन किन पदों को सूचित करते हैं इसका कुछ परिचय माण्डूक्योपनिषद् में मिलता है। स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में इसका उल्लेख किया है। वह इस प्रकार है:—

अकारः प्रथमा मात्रा। आप्तेः आदिमत्वाद्वा।
उकारो द्वितीया मात्रा। उत्कर्षात् उभयत्वाद्वा।
मकारः तृतीया मात्रा। मितेः अपीतेर्वा।

अर्थात् अ 'आप्त व्याप्तौ' धातु के 'आ' का या आदि शब्द के 'आ' का ह्रस्व यान्त्रिक रूप है। 'उ' उत्कर्ष शब्द के आदि का उ है या उत्तम शब्द के आदि का उ है। 'म्' मा धातु का हल रूप है या 'अपीति' शब्द का 'प्' 'म्' के रूप में परिवर्तित होकर 'ओ३म्' का 'म्' बना है। इस प्रकार ओ३म् के अ उ म् यह तीनों अवयव कैसे प्रकट हुए इसका संक्षिप्त परिचय हमें माण्डूक्योपनिषद् में उपर्युक्त प्रकार से मिलता है। इस उपनिषद् के अनुसार 'अ' का अभिप्राय हुआ प्राप्त होना, व्याप्त होना या आदि वाला होना। अर्थात् परमेश्वर सब जगह प्राप्त है वह दूर से दूर और समीप से समीप है। (तदेजति तन्नेजति तद् दूरे तदु अन्तिके) वह सर्वत्र व्यापक है वैसे ही जैसे अ अक्षर सब अक्षरों में विद्यमान रहता है। (ईशावास्यमिदं सर्वम् यत्किंच जगत्यां जगत्) और वह परमेश्वर आदि वाला है उस से पुराना कोई नहीं। पुराण पुरुष स्वभू पिता प्रसिद्ध एक है।" इसी प्रकार उ का अभिप्राय है उत्कर्ष युक्त होना, ऊपर खिंचना या दो का होना और म् का अभिप्राय है ज्ञान वाला होना या लीन होना। सत्यार्थ

प्रकाश में स्वामी जी ने इन तीनों अर्थों के आधार पर इस प्रकार अर्थ दर्शाये हैं:—

अकार से—विश्व, विराट्, अग्नि

उकार से—तैजस, हिरण्यगर्भ, वायु

मकार से—प्राज्ञ, ईश्वर, आदित्य

इन नामों में विश्व तैजस् और प्राज्ञ एक श्रेणी के नाम हैं। विराट् हिरण्यगर्भ और ईश्वर दूसरी श्रेणी के नाम हैं। अग्नि, वायु, आदित्य तीसरी श्रेणी के नाम हैं। विश्व, तैजस और प्राज्ञ शरीर के साथ परमात्मा के सम्बन्ध का बोध कराते हैं। विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर ब्रह्माण्ड के साथ परमात्मा का सम्बन्ध बतलाते हैं। अग्नि वायु और आदित्य स्थूल जगत् के तीन विभागों के साथ परमात्मा के सम्बन्ध को द्योतित करते हैं।

शरीर की तीन अवस्थायें हैं। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति। परमात्मा हमारे शरीर और इन्द्रियों में प्रविष्ट होकर हमारा नियन्त्रण और संचालन कर रहा है अतः उसे विश्व कहते हैं। जिस समय हम स्वप्न अवस्था में होते हैं, बाध्य ज्योतियां हमारा मार्ग नहीं प्रदर्शित कर रही होती हैं उस समय मन की आन्तरिक ज्योतियां या तेज काम देता है और इस अवस्था को ज्योतिः प्रधान या तेजः प्रधान अवस्था कहते हैं। इसलिए इस अवस्था का विनायक होने से प्रभु तेजस कहलाता है। तीसरी शरीर की स्वप्न से आगे की अवस्था सुषुप्ति की अवस्था कहलाती है। जब मनुष्य की मानसिक क्रिया भी समाप्त हो जाती है। उस अवस्था में परमात्मा अपनी कृपा के कारण विश्राम स्थान में भेजता है अतः इस स्थान में जीव केवल आनन्द का भोग करता है। उस समय उसकी प्रज्ञा में सांसारिक दुःखों का बिल्कुल अभाव हो जाता है या वह सांसारिक दुःखों से बिल्कुल अज्ञ हो जाता है। इस आनन्दमयी प्रज्ञा का नियामक होने से प्रभु को प्राज्ञ कहते हैं। . . . .

ब्रह्माण्ड की स्थूल या व्याकृत अवस्था का निमायक होने के कारण परमात्मा का नाम 'विराट्' है। परमात्मा (दि) अर्थात् विविध प्रकार के जगत् प्रदीप्त कर रहा है अतः वह विराट् है। ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म अवस्था के कारण परमात्मा का नाम हिरण्यगर्भ है। ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म अवस्था से पूर्व जब प्रकृति अपनी कारणावस्था में रहती है उस अवस्था का नियामक होने के कारण परमात्मा का नाम ईश्वर है। परमात्मा अपना दर्शन [ईश+वर] अर्थात् नियमन का कार्य मुख्य रूप से इस अव्याकृत अवस्था द्वारा करता है। जगत् के मूल कारण में लगी हुई परमात्मा की दर्शन

शक्ति ही मूलकारण की परिमत अवस्थाओं में भी दर्शन का काम दे रही है। इसलिए जगत् के मूलकारण का नियामक होने के कारण परमात्मा को ईश्वर कहते हैं।

स्थूल जगत् के भी तीन विभाग हैं पृथ्वीलोक, अन्तरिक्षलोक, द्युलोक। पृथ्वीलोक के समस्त कार्य अग्नि द्वारा संचालित होते हैं। द्युलोक का अधिष्ठाता सूर्य है और अन्तरिक्ष लोक का संचालक वायु है क्योंकि ये शक्तियां इनका नियन्त्रण करती हैं।

माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार भी अ उ म् की सार्थकता सिद्ध होती है। प्रथम श्रेणी के विश्व विराट् और अग्नि 'अ' अक्षर से सूचित होते हैं। व्याप्ति की पूर्णता चूँकि स्थूल शरीर में पूर्ण होती है, विश्व में यह विराट् शब्द द्वारा शान्त होती है और पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में प्रभु की व्यापकता का यह शब्द सूचक है।

इसी प्रकार माण्डूक्योपनिषद् में उ का अर्थ उत्कर्ष या उभयत्व का सूचक है इन अर्थों की दृष्टि से उपरोक्त तीनों श्रेणियों के द्वितीय दो नाम तैजस, हिरण्यगर्भ और वायु सार्थक हैं। और इन सब शक्तियों का नियामक होने से परमात्मा को भी अग्नि, वायु और आदित्य कहते हैं। माण्डूक्योपनिषद् में 'म्' का अर्थ 'मिति' अर्थात् मान और अपीति अर्थात् लय है। म् के द्वारा प्राज्ञ, ईश्वर और आदित्य नाम सूचित होते हैं। इनका सम्बन्ध भी परमात्मा से है और परमात्मा इनका नियामक होने से इन नामों से पुकारा जाता है। (इन सब शब्दों का सम्बन्ध कैसे है यह स्वयं एक पृथक विवेचन का विषय है। कभी फिर उस पर विचार किया जायगा)। इस प्रकार अ उ म् शब्द में परमेश्वर के सैकड़ों नाम दिये हुए हैं अतः इस शब्द का वैदिक साहित्य में बहुत महत्व माना गया है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में महर्षि ने उपासना कांड में लिखा है "जो ईश्वर का ओ३म् नाम है, वह पिता पुत्र के सम्बन्ध की तरह है और यह नाम ईश्वर को छोड़ और किसी अर्थ के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता है। ईश्वर के जितने नाम हैं उनमें ओ३म् सर्वोत्तम नाम है।" शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है "आत्मा की चिकित्सा और आत्मा का मोक्ष भी 'ओ३म्' है"। बृहदारण्यक उपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं "ओम् के जाप से पाप नष्ट हो जाते हैं, जल जाते हैं, भस्म हो जाते हैं। प्राणायाम के द्वारा प्राणों को वश में करके जब भक्त ओ३म् का अजपा जाप करता है और उस जाप में और सब को और अपने आप को भी भूल

जाता है तो इसके भी पाप, सभी बुरे कर्म, इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे प्रचण्ड भास्कर के निकलनें पर अन्धकार समाप्त हो जाते हैं ।" पुराणों में भी ओ३म् की महिमा गाई गई है। अग्नि पुराण के २१५ वें अध्याय में लिखा है "जो ओ३म् को जानता है वही योगी है वही रुकावटों का नाश करने वाला है। सारे मन्त्रों का सार यह है। उस की सदस्यता से पापी भी इस असार संसार से तर जाते हैं।" प्रश्नोपनिषद् के पांचवे प्रश्न में में सत्यकाम महर्षि पिप्पलाद से पूछता है "ओ३म् के जाप का क्या फल है ? पिप्पलाद कहते हैं। इस 'ओ३म्' से आत्मा वहां पहुँचता है जहां अपर ब्रह्म और परब्रह्म का साक्षात् हो जाता है।" अपर ब्रह्म भगवान् का विश्व भर में फैला हुआ रूप है इसी को देखकर वेद "नमः विश्व रूपाय" कहता है।

इस प्रकार सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में 'ओ३म्' का माहात्म्य स्वामी जी ने प्रदर्शित किया है।

❀ ❀ ❀

[शेष २८२ पृष्ठ का]

वैदिक कोष का अभाव बहुत खटका। अतः वैदिक कोष के निर्माणार्थ एक योजना बनाई गई। इसी योजना क्रम में उपर्युक्त संस्थान का निर्माण हुआ। संस्थान में स्वामी नित्यानन्द जी की जन्मशताब्दी पर स्वामी जी का जीवनछाप कर एक बहुत ही उपयोगी कार्य किया है। प्रस्तुत पुस्तक में स्वामी जी का जीवन, उनका पत्र व्यवहार, उनके कई संक्षिप्त भाषण और शास्त्रार्थों का वर्णन है वैदिक संस्कारों पर स्वामी जी का एक महत्वपूर्ण लेख भी है। पुस्तक बड़ी प्रेरणाप्रद और जीवन को उत्थान की ओर ले जाने वाली है। पुस्तक पढ़ते हुए पाठक भी ऐसा अनुभव करने लगता है कि मैं भी स्वामी जी जैसा बनूं। भाषा ललित और सुन्दर है परन्तु कहीं-कहीं शब्द योजना खटकती हैं जैसे—

इसलिए भी वे अपने कार्य को अधिक प्रभावी बना सकें पृष्ठ १३।

और सदा की तरह व्याख्यान भी देते रह सकते हैं। पृष्ठ २५।

आशा है अगले संस्करण में इस प्रकार की अशुद्धियां दूर कर दी जायेंगी। छपाई और गैट अप सुन्दर है। चित्रों से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई हैं। इस सुन्दर प्रकाशन के लिए श्री शास्त्री जी धन्यवाद के पात्र हैं।

"विद्यार्थी"

—[❀]—

शिवरात्रि पर प्रचारार्थ आर्य विद्वानों के ट्रैक्ट मंगावें

मूल्य -) प्रति, ४) सैकड़ा

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० सम्वाद
५ पितृश्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७ ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ वैदिक सन्ध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ. स. उन्नति के साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी
३९ वैदिक काल में बन्दूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाइयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्णव्यवस्था
५० कर्मव्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ. स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वंतः स्वयमार्यम्
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर सब जगह है
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों
७३ चरित्र निर्माण
७४ यज्ञोपवीत महत्व
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण
७६ नास्तिकों को सन्देश
७७ वैदिक धर्म ही क्यों
७८ विद्यार्थी और सदाचार
७९ दयानन्द की महानता
८० आर्य क्यों बने ?
८१ श्राद्धमीमांसा

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

स्वाध्याय उपयोगी पुस्तकें

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	४ाा)
बाल्मीकि रामायरण (शुद्ध संस्करण)	१२)
उपनिषदार्य्य भाष्य (आठ उपनिषदें)	६)
वृहदारण्यक उपनिषद कथा माला	३)
ओंकार निर्णय	१ाा)
सृष्टि का इतिहास	२)
वैदिक प्रार्थना	१ाा)
वैदिक सिद्धान्तों पर बहनों की बातें	१ा)
कर्तव्य दर्पण	१)
आर्य समाज क्या है ?	ााा)
वैदिक सन्ध्या रहस्य	ा=)
वैदिक यज्ञ रहस्य	ा=)
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध	५)
दयानन्द चित्रावली	२ाा)
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या	ाा)
नास्तिकवाद	ाा)
आर्य सिद्धान्त दीप	१ा)
विवाह और विवाहित जीवन	२ाा)
ब्रह्मचर्य जीवन-वीर्य नाश मृत्यु	ा=)
वैदिक गृहस्थाश्रम	५)
ऋषि गाथा महाकाव्य	४)
संस्कार विधि विमर्श	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
तत्त्वज्ञान म० आनन्द स्वामी	३)
प्रभु दर्शन ,,	२ाा)
प्रभु भक्ति ,,	१ाा)
आनन्द गायत्री कथा ,,	ाा≡)ा
एक ही रास्ता ,,	ााा-)
सत्यनारायण व्रत कथा ,,	ाा=)
भगवान शंकर और दयानन्द ,,	ाा)
मानव जीवन गाथा वा जीवन गीत ,,	१)
भक्त और भगवान ,,	१)

स्वाध्याय सग्रह (स्वामी वेदानन्द)	२)
वेद परिचय ,,	ा=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्य समाज का इतिहास	१ा=)
आर्षयोग प्रदीपिका	३ाा)
घर गृहस्थी	३ाा)
गीत श्रद्धांजलि (भजन)	१)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१)
आदर्श सुधारक दयानन्द	ाा=)
गृहस्थाश्रम (दयानन्द)	ाा=)
बाल शिक्षक ,,	ा=)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	ा)
स्वामी दयानन्द और वेद	ा)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
आर्य सत्संग गुटका	-ा)
विश्व विज्ञान परमात्मा बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	ाा)
मांस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	ा)
गीता वचनामृत	=ा)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	ाा)
स्वास्थ्य विज्ञान	-ा)

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द २०×३०	१)
गुरु विरजानन्द ,,	१)
स्वामी श्रद्धानन्द ,,	१)
पण्डित लेखराम ,,	१)
महात्मा हंसराज ,,	१)
सचित्र जीवन घटना १५×२०	ाा)
महर्षि दयानन्द की महत्ता २०×३०	ाा)
मोटोज साइज १४×२२ मूल्य प्रत्येक	≡)

सन्ध्या मन्त्र, प्रार्थनामन्त्र, संगठन सूक्त, यम नियम व्याख्या

मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक =)

सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र, दीर्घ जीवन की प्रार्थना सत्यंमद धर्मं चर ।

[गताङ्क से आगे]

व्याख्यान माला

परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम् ।
धन्यास्ते पशवो येषां चर्माण्युपकरिष्यति ॥ ७ ॥

जो मनुष्य परोपकार से शून्य है है उस मनुष्य के जीवन को धिक्कार है। उससे तो वह पशु ही धन्य हैं जिनका चर्म भी मरने के बाद दूसरों का उपकार करता है ॥ ७ ॥

चलं चित्तं चलं वित्तं चले जीवितयौवने ।
चलाचलमिदं सर्वं कीर्तिर्यस्य स जीवति ॥ ८ ॥

यह चित्त भी अस्थिर है, यह धन भी नाशवान है, यह जीवन और आयु भी नष्ट होने वाले हैं। इस संसार में सब कुछ अस्थिर है, नष्ट होने वाला है किन्तु जो कीर्तिवान् है वही जीवित रहता है ॥ ८ ॥

यस्य जना न वदन्ति महत्वं नो समरे मरणं विजयं वा ।
न श्रुतदानमहाधनतां वा तस्य भवः कृमिकीटसमानः ॥ ९ ॥

मनुष्य लोग जिस मनुष्य के महत्व को नहीं कहते, युद्ध में जिसके मरने या विजय पाने का वर्णन नहीं करते तथा विद्वत्ता दानशीलता और धनवान होने का वर्णन नहीं करते। उसका जन्म कीट के समान ही है ॥९॥

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः परोपकाराय सतां विभूतयः ॥ १० ॥

नदियां स्वयंमेव जल नहीं पी जाती। वृक्ष स्वयं ही अपने फलों को नहीं खा जाते। बादल कभी भी स्वयं ही धन धान्य आदि को नहीं खाते। क्योंकि सज्जनों की विभूतियां ही परोपकार के लिये होती हैं ॥ १० ॥

सदाचार

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १ ॥

सदाचार से ही आयु प्राप्त होती है। आचार से ही इच्छित संतान की प्राप्ति होती है और आचार से ही अक्षय धन की प्राप्ति होती है। आचार ही सब अलक्षणों को दूर करने वाला है ॥ १ ॥

अपूर्वः कोऽपि कोषोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायति सञ्चयात् ॥ ३ ॥

हे भारती तेरा वह कोई अपूर्व ही आश्चर्यदायक कोष है जो कि व्यय करने से वृद्धि को प्राप्त होता है और संचय करने से क्षय को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम् ॥ ४ ॥

विद्या विनय को देने वाली है। विनय से मनुष्य योग्यता को प्राप्त करता है। योग्य होने से मनुष्य धन को प्राप्त करता है धन से धर्म करता है और फिर सुख प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

विद्यया शस्यते लोके पूज्यते चोत्तमैः सदा।
विद्याहीनो नरः प्राज्ञसभायां नैव शोभते ॥ ५ ॥

यदि आयु अधिक भी बीत जाये तो भी बुद्धिमानों का कर्तव्य है कि विद्या को ग्रहण करें। यदि वह इस जन्म में फल न देने वाली हो तो भी वह दूसरे जन्म में सुलभता से प्राप्त हो जाती है ॥ ५ ॥

नक्षत्रभूषणं चन्द्रो नारीणां भूषणं पतिः।
पृथिवीभूषणं राजा विद्या सर्वस्य भूषणम् ॥ ६ ॥

नक्षत्रों का आभूषण चन्द्रमा है। नारियों का भूषण पति है। और पृथ्वी का भूषण राजा है और इन सब का भूषण विद्या है ॥ ६ ॥

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानञ्चास्य रोचते ॥ ७ ॥

जिस जिस प्रकार मनुष्य अधिक अधिक ज्ञान को प्राप्त करता जाता है उसी प्रकार वह उसे जानता हुआ अधिक ज्ञानी होता जाता है और इसको ज्ञान में रुचि हो जाती है ॥ ७ ॥

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतश्नुते ॥ ८ ॥

तप और विद्या यह दोनों ब्राह्मण के परम कल्याण करने वाले हैं। क्योंकि ब्राह्मण तप के द्वारा पापों का नाश करता है और विद्या के द्वारा अमृत पद को प्राप्त करता है ॥ ८ ॥

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥ ९ ॥

परदेश में विद्या ही मित्र है और घर में भार्या ही मित्र है। और व्याधिग्रस्त का मित्र औषधि है। और मरने वाले का मित्र धर्म है ॥ ९ ॥

पुस्तकेषु च नाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा ॥ १० ॥

जिसने पुस्तकें पढ़ कर भी विद्या का अध्ययन नहीं किया और गुरु से भी विद्या का ज्ञान प्राप्त नहीं किया। वह मनुष्य सभा के बीच में शोभित नहीं होता जैसे हंसों के बीच में बगुला शोभित नहीं होता ॥ १० ॥

विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो
धेनुः कामदुघा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयश्च सा ।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं
तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याऽधिकारं कुरु ॥ ११ ॥

विद्या ही मनुष्य की अतुलनीय कीर्ति है, भाग्य के नष्ट हो जाने पर भी यह आश्रय देती है, कामदुघा धेनु की तरह है, विरह में भार्या के समान है, यह मनुष्य का तृतीय नेत्र है। यही सत्कार कराने वाली है कुल की महिमा है और रत्नों के बिना भी भूषित करने वाली है। इसलिये मनुष्य का कर्तव्य है कि अन्य सब विषयों को छोड़ कर विद्या को ही प्राप्त करें ॥ ११ ॥

—❀❀❀—

पण्डित

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीस्तम्भो मान्यमानिता ।
यमर्थाः नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १ ॥

जिसको क्रोध, हर्ष, दर्प, लज्जा और स्तम्भता तथा आदर सत्कार ये चीजें तथा धन भी जिसको आकर्षित नहीं कर सकते उसी को पण्डित कहते हैं ॥ १ ॥

न हृष्यत्यात्मसंमाने नावमानेन तप्यते ।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते ॥ २ ॥

जो अपना सम्मान होने पर प्रसन्न नहीं होता और अपमान होने पर जो दुखी नहीं होता। जो गाङ्गह्रद की तरह कभी क्षुभित नहीं होता उसे पण्डित कहते हैं ॥ २ ॥

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ ३ ॥

जो बड़े भारी धन की राशि को भी प्राप्त करके और पर्याप्त विद्या

और ऐश्वर्य को भी प्राप्त कर के विनम्र होकर रहता है घमण्ड नहीं करता उसे पण्डित कहते हैं ॥ ३ ॥

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनस्य देहिनः ।
अकुलीनोऽपि यो विद्वान्देवैरपि स पूज्यते ॥ ४ ॥

जो मनुष्य विद्या से हीन है उसका यदि विशाल कुल भी हो तो कोई लाभ नहीं। क्योंकि जो मनुष्य कुल रहित होकर भी विद्वान् है तो देवता भी उसकी पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि ।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ॥ ५ ॥

जिस प्रदेश में विद्वान् जन नहीं होते वहाँ थोड़ी बुद्धि वाले की भी पूजा होती है। जैसे कि जिस देश में अन्य वृक्ष नहीं होते वहाँ एरण्ड को भी वृक्ष माना जाता है ॥ ५ ॥

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम् ।
नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम् ॥ ६ ॥

विद्वान् मनुष्य के परिश्रम को विद्वान् लोग ही जान सकते हैं मूर्ख नहीं। जैसे वन्ध्या स्त्री प्रसव की कठोर पीड़ा को नहीं जान सकती ॥ ६ ॥

स्वगृहे पूज्यते मूर्खः स्वग्रामे पूज्यते प्रभुः ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान्सर्वत्र पूज्यते ॥ ७ ॥

मूर्ख अपने घर में ही पूजित होता है। और मालिक की पूजा अपने गांव में ही होती है। राजा की पूजा अपने देश में ही होती है किन्तु विद्वान् की सर्वत्र पूजा होती है ॥ ७ ॥

पण्डितो हि वरं शत्रुर्न मूर्खो हितकारकः ।
वानरेण हतो राजा विप्राश्चौरेण रक्षिताः ॥ ८ ॥

पण्डित तो शत्रु भी उत्तम है किन्तु मूर्ख कभी भी हितकारक नहीं है। जैसे कि मूर्ख वानर ने राजा का हनन कर दिया था और विद्वान् चोर ने जैसे ब्राह्मण की रक्षा की थी ॥ ८ ॥

न पण्डिताः साहसिका भवन्ति श्रुत्वाऽपि ते संतुलयन्ति तत्वम् ।
तत्वं समादाय समाचरन्ति स्वार्थं प्रकुर्वन्ति परस्य चार्थम् ॥ ९ ॥

पण्डित लोग साहसिक नहीं होते सहसा ही किसी कार्य को नहीं करते। वे बात को सुन कर भी उसका सन्तुलन करते हैं और उसके तत्व को जान कर फिर आचरण करते हैं स्वार्थ भी सिद्ध करते हैं और परमार्थ भी ॥ ९ ॥

संपूर्णकुम्भो न करोति शब्दमर्धो घटो घोषमुपैति नूनम् ।
विद्वान्कुलीनो न करोति गर्वं गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति ॥ १० ॥

पूरा भरा हुआ जो घड़ा है वह शब्द नहीं करता किन्तु आधा घड़ा निश्चय से शब्द करता है। उसी प्रकार जो पूर्ण विद्वान् कुलीन है वह गर्व नहीं करता जो गुणहीन हैं वही व्यर्थ का विवाद किया करते हैं ॥१०॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासंपृष्टो व्युपयुंक्ते परार्थे तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ ११ ॥

जो कही बात को शीघ्र जान लेता है और वाक्य को ध्यान से सुनता है उसे जान कर काम क्रोधादि को छोड़कर उस पर आचरण करता है। जो दूसरों के विवाद में बिना पूछे नहीं बोलता और अयुक्त भाषण नहीं करता यह लक्षण पण्डितों का प्रथम लक्षण माना जाता है ॥ ११ ॥

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः ॥ १२ ॥

जिन के मन को विद्या का ही विलास है जिन्होंने शील की शिक्षा को धारण किया है। जो सत्य के व्रती हैं और जो सत्कार रूपी मल दोष से रहित है। अर्थात् जो घमण्डी नहीं हैं। और संसार का दुख दूर करने के कारण जो सुभूषित हैं। और जो परोपकार के कर्म करने वाले हैं। सदा परोपकार करके दूसरों का दुःख दूर करते हैं वह पुरुष धन्य हैं ॥१२॥

—❀❀—

मूर्ख

मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि गर्वो दुर्वचनं तथा।
हठी चैव विषादी च परोक्तं नैव मन्यते ॥ १ ॥

मूर्ख जन के पांच मुख्य लक्षण हैं प्रथम गर्व करना दूसरे दुर्वचन बोलना तीसरे हठ करना चौथे कलह करने वाला होना पांचवे दूसरे के कहे हुए वचन को न मानना ॥ १ ॥

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ॥ २ ॥

मूर्खों को तो उपदेश देना भी उनको क्रोधित करने का कारण बनता है न कि शान्ति का। जैसे कि सांप को दूध पिलाना केवल विष के बढ़ाने के लिये ही होता है ॥ २ ॥

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥ ३ ॥

बुद्धिमानों का समय काव्य और शास्त्रों की चर्चा के विनोद में ही व्यतीत होता है। किन्तु मूर्खों का समय व्यसनों में निद्रा में और कलह में व्यतीत होता है ॥ ३ ॥

यस्य नास्ति विवेकस्तु केवलं यो बहुश्रुतः ।
न स जानाति काव्यार्थान्दर्वी पाकरसानिव ॥ ४ ॥

केवल जिसने शब्द ज्ञान ही प्राप्त किया है पढ़ा ही पढ़ा है और उस का विवेक उसे है नहीं तो वह शास्त्र के अर्थों को नहीं जान सकता, जैसे कि कड़छी भोजन के रस को नहीं जानती ॥ ४ ॥

मूर्खोऽपि शोभते तावत्सभायां वस्त्रवेष्टितः ।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किञ्चिन्न भाषते ॥ ५ ॥

खूब अच्छी तरह वस्त्रादि धारण करके सभा में बैठा हुआ मूर्ख भी सभा में तभी तक शोभित होता है जब तक कि वह सभा में कुछ भी नहीं बोलता है। बोलते ही सब उसे मूर्ख जान लेते हैं ॥ ५ ॥

दूरतः शोभते मूर्खो लम्बशाटपटावृतः ।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किञ्चिन्न भाषते ॥ ६ ॥

लम्बी धोती पहने हुए मूर्ख दूर से ही शोभित होता है किन्तु वह तभी तक शोभित होता है जब तक कि वह कुछ बोलता नहीं है ॥ ६ ॥

रूपयौवनसंपन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥ ७ ॥

जो मनुष्य रूप से और यौवन से सम्पन्न हैं तथा विशाल कुल में जो पैदा हुए हैं वह विद्याहीन होने के कारण इस प्रकार शोभित नहीं होते जैसे गन्ध रहित किंशुक पुष्प शोभा नहीं देता ॥ ७ ॥

माता शत्रुः पिता वैरी बालो येन न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा ॥ ८ ॥

वह माता शत्रु है और वह पिता बैरी है जिसने अपने पुत्र को पढ़ाया नहीं है। क्योंकि वह अपठित बालक सभा में इस प्रकार शोभा नहीं पाता जैसे हंसों के बीच में बगुला शोभित नहीं होता ॥ ८ ॥

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥ ९ ॥

जो ज्ञानी नहीं है वह सुख से समझाया जा सकता है। और जो विद्वान् है वह अत्यन्त सरलता से समझाया जा सकता है। किन्तु जो ज्ञान का थोड़ा सा अंश पान से दुर्विदग्ध है उसे तो ब्रह्मा भी खुश नहीं कर सकता ॥ ९ ॥

नवदम्पति को भेंट देने योग्य अनुपम

★ उपहार ★

भारतीय स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण व चिरस्थायी बनाने के लिये आज भारत को कर्मवीर, बुद्धिमान् व शौर्य-सम्पन्न युवकों की आवश्यकता है। उस आवश्यकता की पूर्ति आपके हाथों में है।

क्या आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान समाज में सम्मान प्राप्त करे यदि हां! तो उसके लिए प्रयत्न करना आपका कर्त्तव्य है।

किस प्रकार ?

यह जानने तथा अनेक कर्त्तव्य से परिचित होने के लिए

इच्छानुसार संतानोत्पत्ति

यह पुस्तक मँगा कर अवश्य पढ़िए। पुस्तक पढ़ कर आप अनुभव करेंगे कि 'पुत्र या पुत्री, धर्मात्मा या पापी, शासक या चोर, जितेन्द्रिय या व्यभिचारी, गौर या श्याम वर्ण की" सन्तान का निर्माण तथा बर्थ कन्ट्रोल अपने ही हाथों में है।

इसको महत्ता पढ़ने से हो विदित होगी

सजिल्द मूल्य २।।) डाक व्यय पृथक—

लेखक:—

बीरेन्द्र गुप्त

प्राप्ति स्थान—वीरेन्द्रनाथ अश्विनी कुमार

प्रकाशन मन्दिर, बाजार चौक, मुरादाबाद।

महात्मा आनन्द स्वामी जी की नई पुस्तक

उपनिषदों का सन्देश

आध्यात्मिक पुस्तक होते हुए भी उपन्यास से रोचक,

प्रभु प्राप्ति के उपाय सरल भाषा में

बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, २०४ पृष्ठ की पुस्तक केवल १।) में डाकखर्च ।।।), मनिआर्डर द्वारा २) भेज कर आज ही पुस्तक मंगाईये।

आनन्द स्वामी जी की अन्य पुस्तकें

❀ प्रभुभक्ति	...	१।।)
❀ प्रभुदर्शन	...	२।।)
❀ तत्वज्ञान	...	३)
❀ भक्त भगवान	...	१)
❀ मानव जीवन गाथा...		१)
❀ आनन्द भगवत कथा...		।।=)
❀ आनन्द गायत्री कथा		७० न. पै.
❀ एक ही रास्ता...		८० न. पै.
❀ शङ्कर और दयानन्द		।।)

बृहदाकार आकर्षक चित्र

साईज प्रत्येक का २० × ३०

महर्षि दयानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द

गुरु विरजानन्द

महात्मा हंसराज

पंडित लेखराम

मूल्य १) प्रति

५ चित्र एक साथ मंगाने पर डाक खर्च १) आता है। पांचों चित्रों का डाकखर्च सहित ६) आने पर रजिस्ट्री द्वारा भेज दिये जावेंगे। १ दर्जन चित्रों का १२) पेशगी आने पर डाक खर्च माफ।

* * *

अत्यन्त सुन्दर तथा आकर्षक

११" × १४" साइज में

✻ ओ३म्	...	मूल्य	।)
✻ नमस्ते	...	,,	।)
✻ स्वागतम्	...	,,	।)
✻ गायत्री मन्त्र...		,,	।)

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर वदलिया प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली में छपवाया।

वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

राधास्वामी मत आलोचना

★ विशेषाङ्क ★

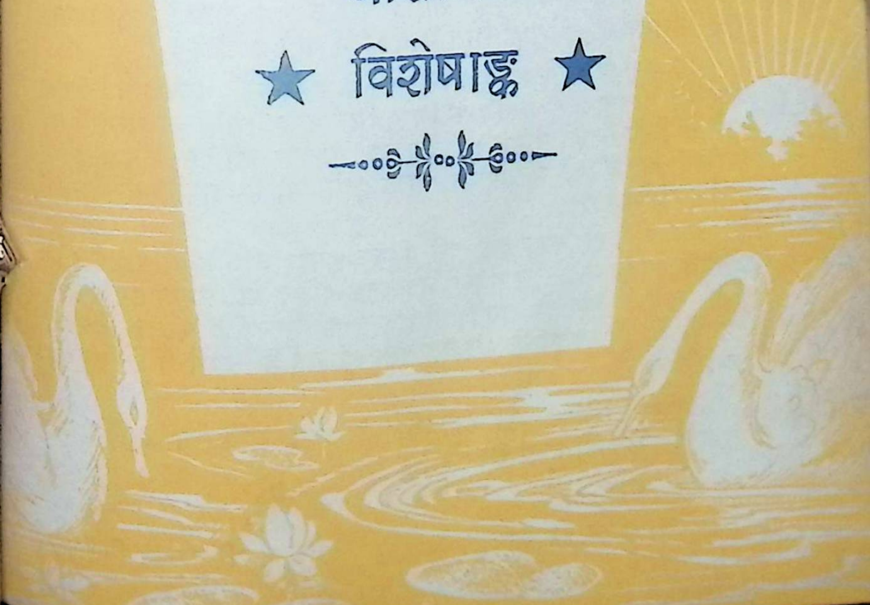

भूमिका

बात १३ अक्तूबर १९६० की है। मैं बुलन्द शहर के सुप्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक डा० मन वीरशरण जी के यहां बैठा हुआ था। प्रातः ७ बजे का समय था डाक्टरनी जी ने प्रातः राश लाकर मेरे समक्ष रक्खा ही था कि उनके एक मित्र आ गये। डा० महोदय ने उन से मेरा परिचय कराते हुए यह भी बताया कि ये राधास्वामी मतानुयायी हैं। डा० महोदय तो चले गये मेरा उनसे पर्याप्त समय तक वार्तालाप होता रहा। इसी वार्तालाप से एक इच्छा जागृत हुई कि इनके ग्रन्थों का अध्ययन किया जाये उसी अध्ययन का परिणाम पुस्तक रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

भारतवर्ष अध्यात्म प्रधान देश है। यहां के निवासियों में ईश्वर दर्शन और मोक्ष प्राप्ति की बड़ी प्रबल इच्छा है। जो व्यक्ति ईश्वर दर्शन का तथा मोक्ष का ठेका लेता है लोग उसी के पीछे आंख बन्द करके भागने लग जाते हैं। भोले भाइयो! राधा स्वामी आप को न ईश्वर के दर्शन करा सकते हैं। न योग सिखा सकते हैं और न मोक्ष दिला सकते हैं। ये तो इन सब को व्यर्थ समझते हैं तथा ईश्वर पूजा के स्थान पर गुरुडम सिखाते हैं।

राधास्वामी अपनी पुस्तकों को छिपा कर रखते हैं हमने बड़े परिश्रम पूर्वक इन ग्रन्थों को प्राप्त कर उनके ग्रन्थों से ही उनका खण्डन किया है। सभी उद्धरणों के पूरे पते दिये हुए हैं जिससे पाठक उन्हें देख कर सत्य का निर्णय कर सकें। इस क अंमें आपको ऐसी अनेक बातें मिलेंगी जो पूर्व प्रकाशित पुस्तकों में नहीं आई हैं।

यह पुस्तक किसी का हृदय दुखाने के लिए नहीं लिखी गई अपितु सत्य को जानने और जनाने के लिए तथा भोले लोगों को सन्मार्ग पर लाने के लिये लिखी गई है। यदि इस पुस्तक को पढ़ कर कुछ भी व्यक्तियों के जीवनों का काया पलट हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

वेदप्रकाश के सम्पादक श्री विजयकुमार जी के प्रोत्साहन और सहायता के बिना इस अंक का निकलना कठिन था परन्तु इसके लिये उन्हें धन्यवाद देना तो अपना ही धन्यवाद करना है पं० बुद्धदेव जी मीरपुरी जी की पुस्तक से भी सहायता ली गई है तदर्थ मैं उनका भी आभारी हूं।

जहां राधा स्वामी मत का जोर हो वहां यदि समाज चाहे तो मुझे प्रचार के लिये बुला सकती हैं।

वेद सदन—

८ ई. कमला नगर, दिल्ली-६ जगदीश चन्द्र विद्यार्थी

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापक:—स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

वर्ष—९ : माघ २०१७ वि० : फरवरी १९६१ : वार्षिक मूल्य ३)
अंक—७ : दयानन्दाब्द १३६ : माघ १८८२ : विदेशों से ६ शिलिंग

राधा स्वामी मत

"यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेद मत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने के कारण महाभारत युद्ध हुआ। इसकी अप्रवृत्ति से अविद्याऽन्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया वैसा मत चलाया।" (महर्षि दयानन्द)

धर्म के नाम पर जहां, बौद्ध, जैन, किरानी; वाममार्ग आदि अनेक मत खड़े हुए वहां राधा स्वामी नाम का भी एक सम्प्रदाय चला। इस के प्रचार से जनता में भ्रम उत्पन्न हो रहा है। योग का नाम लेकर भोली भाली जनता को अपने चंगुल में फंसाया जाता है। विशेष कर स्त्रियों में यह मत अधिक फैल रहा है और इससे गुरुडम और पाखण्ड बढ़ रहा है। इनकी पुस्तकों में जो कुछ लिखा है उसका साधारण जनता को पता नहीं, कारण ये अपनी पुस्तकों को अन्य मतावलम्बियों को नहीं देते। बड़े परिश्रम के पश्चात् इनके मूल ग्रन्थों को प्राप्त कर इस मत के सिद्धान्तों और मान्यताओं का उल्लेख किया जा रहा हैं जिससे लोग इस मत की वास्तविकता को जानकर गुरुडम फैलाने वाले इस नास्तिक मत के चक्र से छूट कर वैदिक सत्य सिद्धान्तों पर आचरण करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के भागी बन सकें।

राधा स्वामी मत के प्रवर्तक

राधास्वामी मत के आदि प्रवर्तक श्री शिवदयाल सिंह जी अगस्त १८१८ में उत्पन्न हुए। १८६१ में आपका सत्संग प्रारम्भ हुआ और १८७८ में आपका देहान्त हो गया।

दूसरे गुरु सालिग्राम जी थे। ये हुजूर महाराज साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए। राधास्वामी मत इन्हीं का चलाया हुआ है। यह बात शिवदयालसिंह जी के जीवन चरित्र से स्पष्ट है—

"मेरा मत तो सत्तनाम और अनामी का था राधास्वामी मत सालिगराम हुजूर महाराज साहब का चलाया हुआ है इसको भी चलने देना।"

जीवन चरित्र स्वामी जी महाराज वचन १४

राधा स्वामी मत की पुस्तकें

राधा स्वामियों के मान्य ग्रन्थ निम्न लिखित हैं—

सारवचन छन्द बन्द २ भाग, सारवचन वार्तिक, प्रेम वाणी ४ भाग, प्रेम पत्र ६ भाग, निज उपदेश, प्रेम उपदेश, सार उपदेश, जुगत प्रकाश, प्रश्नोत्तर सन्त मत, तथा राधा स्वामी मत सन्देश आदि।

गुप्त मत

राधास्वामी अन्य मतावलम्बियों को न तो अपनी पुस्तकें दिखाते है और न अपने मत की बातें बताते हैं। सार वचन में लिखा है—

करमी जिव जग के अन्धे। सब फंसे काल के फंदे॥
उन से नहीं कहना चाहिये। मत गूढ़ छिपाये रहिये॥

(सार वचन ८।१२।२०,२१)

"यह पोथी गैर शख्श को जो राधास्वामी मत में शामिल नहीं हैं, किसी हालत में नहीं दिखलानी चाहिए।"

(जुगत प्रकाश मुख्य पृष्ठ)

"जिस किसी को एक मर्तबा शब्द साफ सुनाई देवे और फिर कुछ अरसे बाद गुप्त हो जावे तो जानना चाहिये कि……उसने गुप्त भेद राधास्वामी मत का या अपने अभ्यास की कैफियत किसी गैर शख्स या सतसंगी के रूबरू जाहिर करदी।"

फिर आगे लिखा है—

आइन्दा के वास्ते एहतियात रक्खे कि बगैर इजाजत किसी को भेद मत का न बतावे। (जुगत प्रकाश वचन २०७)

यह है संकीर्णता की पराकाष्ठा। जब आपका मत और आपकी वाणी संसार का कल्याण करने वाली हैं तो आप इन्हें छिपाते क्यों हैं। यदि आपका मत सच्चा है तो अपनी पुस्तकों को लोगों तक पहुँचने दें जिससे वे सत्य और असत्य का निर्णय कर सकें तथा दूध का दूध और पानी का पानी स्पष्ट हो जाये।

राधास्वामी नाम का रहस्य

"'राधा' आदि सुरत का नाम है और 'स्वामी' नाम आदि शब्द का है। आदि शब्द से जो प्रथम धारा जारी हुई उसका नाम 'राधा' है।"

प्रेम उपदेश पृष्ठ ७८

यह भोली भाली जनता को बहकाने का ढोंग है। वस्तुतः स्वामी नाम शिव दयालसिंह जी का है। इनके जीवन चरित्र पर लिखा है "जीवन चरित्र स्वामी जी महाराज" और राधा नाम इनकी धर्मपत्नी का है जैसा कि इनके जीवन चरित्र से स्पष्ट है—

":बादहु जब महाराज की शादी हो गई और राधा जी महाराज आगरे में आई तो उनको भी स्वामी जी महाराज ऊंचे दर्जे के परमारथ की समझौती दिया करते थे।

(जीवन चरित्र स्वामी जी पृष्ठ ११)

राधा और स्वामी दोनों नामों को मिला कर सालिगराम जी ने राधास्वामी मत चलाया है।

राधास्वामी नाम 'शब्द' अथवा 'जीवात्मा' का नहीं है यह सार वचन के निम्न उद्धरण से भी स्पष्ट है—

हे राधा तुम गति अति प्यारी।
हे स्वामी तुम धाम अपारी।
राधा स्वामी दोऊ मोहिं गोद बिठा री॥

(सारवचन ६।१।१)

यदि 'राधा' आदि सुरत का नाम है तो यह कहना व्यर्थ है कि राधा स्वामी ने मुझे गोद में बिठा लिया क्यों कि राधा तो वह स्वयं ही है।

राधा स्वामी मत और मूर्तिपूजा

राधास्वामी मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं रखते। इनके ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर मूर्ति पूजा तीर्थ, व्रत आदि का घोर खण्डन किया गया है॥ सार वचन में लिखा है—

राधा स्वामी बुत पूजा न धार री॥ सारवचन ३५।५६॥

परन्तु इन की मान्य पुस्तकों से ही यह बात सिद्ध नहीं होती। देखिये--

"मुनासिब और लाजिम है कि जहां तक बन सके एक दफा आगरे में आकर राधास्वामी बाग में राधास्वामी दयाल की समाधि और उनके निशानों का जैसे पलंग कुर्सी और भजन करने की चौकी का भाव सहित दर्शन करें, और वहां मत्था टेक कर अपना भाग बढ़ावें और समाधि पर हार फूल चढ़ावें। इन सब चीजों में जो कि उनकी सेवा में रही हैं उनके चरणो की निर्मल और अमृत की धारा मौजूद है!" राधा स्वामी मत सन्देश पृष्ठ ३१

समाधि पर हार और पुष्प चढ़ाना। चौकी कुर्सी पलंग आदि के आगे सिर झुकाना मूर्ति पूजा नहीं तो और क्या है?

मूर्ति पूजा करने वालों की क्या गति होती है यह हम अपने शब्दों में न कह कर इनके ही एक अन्य ग्रन्थ से उद्धृत करते हैं—

"जैसा कि और लोग मूर्त या तीरथ और पोथी और ग्रन्थों की पूजा में लगे हैं ऐसे ही जो सन्तों के घर के जीव भी पूजा समाध और झण्डा और ग्रन्थ वगैरा में लग गये......तो वे भी और मतों के बाहर मुखी पूजा करने वालों की तरह करम और भरम में अटक गये और मुक्ति की प्राप्ति उनको भी नहीं हुई।"

सार वचन वार्तिक भाग १ पृष्ठ ६५

कैसी परस्पर विरुद्ध शिक्षा है? इसी पर संसार का स्वामी बनने का दावा करते हैं।

राधास्वामी मत और घोर नास्तिकता

योग शब्द में बड़ा भारी आकर्षण है। प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर दर्शन करना चाहता है। इस ईश्वरदर्शन के लिए लोग अनेक प्रकार के कष्ट सहते हैं। योग से और ईश्वरदर्शन के साधनों से अपरिचित भोले जिज्ञासु इन राधा स्वामियों के जाल में फंस जाते हैं। जब राधास्वामियों के चेले लोगों को बताते हैं कि राधास्वामी की शरण में जाओ आपको छः मास में ही परमात्मा के दर्शन हो जायेंगे तो लोग इनके सत्संगों में जाकर मन्त्र दीक्षा ले लेते हैं। मैं ऐसे योग के जिज्ञासुओं और ईश्वर प्राप्ति के इच्छुकों को बतला देना चाहता हूं कि यदि आप मुक्ति पाना चाहते हैं अथवा मोक्ष पद प्राप्त करना हैं तो राधा स्वामी मत से दूर ही रहना क्योंकि राधास्वामी आत्मा, परमात्मा और योग आदि में बिल्कुल विश्वास नहीं रखते। इन्हीं के ग्रन्थों से कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं--

प्रमाण—१ "ऐसे ऐसे बेशुमार ब्रह्म और ईश्वर उस परम पद यानी सत्तपुरुष राधास्वामी के पैदा किये हुए हैं।"

सार वचन वार्तिक प्रथम भाग वचन ६९

समीक्षा—संसार में जितने आस्तिक मत हैं वे सब परमात्मा को सब का पिता और सर्वोत्पादक मानते हैं परन्तु राधास्वामियों का पंथ निराला ही है। ये कहते हैं कि अनगिनत परमात्मा शिवदयाल सिंह ने उत्पन्न किये हैं। बहुत सोचने पर भी एक बात मेरी समझ में नहीं आई कि जिस शिवदयाल सिंह ने अनेक ब्रह्म और ईश्वर उत्पन्न कर लिये उस ने अपने माता और पिता को भी स्वयं ही क्यों नहीं उत्पन्न कर लिया ?

ईश्वर और ब्रह्म को उत्पन्न करने वाले सन्तान प्राप्ति के लिये मोती कटड़ा के जती की वर्षों सेवा करते रहे कि किसी प्रकार एक पुत्र नहीं तो पुत्री हो जावे परन्तु एक मुर्दा चुहिया तक उत्पन्न नहीं कर सके। जो गुरु हकीम नसीरूद्दीन अकबर आबादी गढिया वाले के नुसखे पीते पीते थक गये और रात दिन रोगों में जकड़े रहते थे वे ईश्वर और ब्रह्म को क्या पैदा करेंगे ?

प्रमाण २—"खुदा और परमेश्वर दोनों के पैदा करने वाले सन्त हैं और इनकी गति को वे दोनों नहीं जान सकते।"

सार वचन हिदायत नामा पृष्ठ ४०१

बलिहारी है इस बुद्धि की। जो ईश्वर घट घट वासी है वह सन्तों की गति को नहीं जानता ? दूसरों की आंख का फूला तो आपको दिखाई देता है परन्तु अपनी आंख का शहतीर दिखाई नहीं देता। आप के ही मान्य ग्रन्थ में लिखा है—

"कोई २ सूफी या वाचक ज्ञानी बन बैठे हैं और अपने को खुदा या ब्रह्म मानकर या उसके साथ मन और बुद्धि की समझौती से एकताई करके निः चिन्त और निडर हो रहे हैं।"

प्रेम पत्र जिल्द चौथी प्रकार ३७।८०

दूसरों के तो ब्रह्म बनने पर आपत्ति परन्तु स्वयं को ईश्वर का उत्पत्ति कर्ता कहने में भी संकोच नहीं। आप के ऊपर तो यह पद्य ठीक बैठता है—

ये दुनिया भर को कहते हैं कि ये ऐसे हैं वे वैसे हैं।
मगर इन से कोई पूछे कि सरकार आप कैसे हैं॥

प्रमाण ३—ईश्वर परमेश्वर भरमानी।
क्या मेरे प्यारे राधा स्वामी॥ (सार वचन छन्द ३।१।२७)

नहि तब ब्रह्म नहीं तब आत्म
नहि तब पारब्रह्म परमात्म ॥
(सार० ११।१।७४)

अल्ला खुदा रसूल न मानी
अस मेरे प्यारे राधा स्वामी ॥ ३० ॥
(सार वचन छन्द ३।१।३०)

इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि राधा स्वामी ईश्वर ब्रह्म, आत्मा परमात्मा और पारब्रह्म अल्ला, खुदा किसी को भी नहीं मानते इतना ही नहीं। यहां परमेश्वर को भ्रान्ति वाला कहा गया है। परन्तु वस्तुतः ईश्वर भ्रान्ति वाला नहीं है यह तो शिवदयाल जी को ही भ्रान्ति है जैसा उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है—

अक्षर नहि अक्षर नहि जानूं
(सार वचन ८।१।८)

अक्षर का अर्थ है परमात्मा और विद्या। मैं न परमात्मा को जानता हूँ और न विद्या को, निरक्षर हूँ।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि राधा स्वामी आत्मा और परमात्मा तथा ईश्वर को नहीं मानते तो फिर उसके दर्शन क्या करायेंगे अतः जो व्यक्ति परमात्मा प्राप्ति के लिये इस मत में प्रविष्ठ हुए हैं उन्हें तो इस मत को शीघ्र ही छोड़ देना चाहिये।

अब योग निन्दा के कुछ प्रमाण देखिये—

ज्ञान ध्यान और जोग बैरागा । तुच्छ समझ मैंने इनको त्यागा ॥
(सार वचन २।१।११)

यहां ज्ञान, उपासना और योग इन सब को तुच्छ बता कर इन के त्यागने का उपदेश है। और इस से भी स्पष्ट प्रमाण देखिये—

"मूर्ति पूजा, तीर्थ, व्रत, जप, तप, होम, यज्ञ, आचार और जाति वर्ण के कर्म और क्रिया योग यानी हठ योग और अष्टाङ्ग योग, ये सब पिछले जुगों के धर्म हैं। इस जुग में न तो विधि पूर्वक किसी से बन सकते हैं और न इनसे वह फल जिस में जीव का कल्याण होवे, मिल सकता है। इस वास्ते इनका बिलकुल निषेध है।"
(सार वचन वार्तिक भाग २ वचन २६३)

जब राधा स्वामी योग में विश्वास ही नहीं रखते तो इन के पास योग सीखने जाना व्यर्थ है अतः योग के जिज्ञासुओं! इस मत को शीघ्र तिलाञ्जली दो।

राधा स्वामी मत और पिछली टेक

शिव दयाल सिंह से पूर्व के वेद उपनिषद्, दर्शन, रामायण महाभारत गीता आदि जितने ग्रन्थ हैं और मर्यादा पुरुषोत्तम राम योगेश्वर कृष्ण आदि जितने महापुरुष हैं तथा परमात्मा को मानना पिछली टेक है। राधा स्वामी मत में यह बहुत बड़ा पाप माना जाता है। जो व्यक्ति राधा स्वामी मत में दीक्षित होकर वेद शास्त्र आदि ग्रन्थों तथा राम कृष्ण और ईश्वर को मानेगा उसे सिद्धि नहीं मिल सकती। सार वचन ८।१ में लिखा है—

पिछलों की जो धारें टेका। जिनको कभी आंख नहीं देखा ॥३३॥
पोथिन में सुनी उन की महिमा। टेक बांध मन सब का भरमा ॥३४॥
कोई शिव और कोई विष्णु की। कोई राम और कोई कृष्ण की।३६।
कोई आचर कोई संध्या तर्पन। गया गायत्री करें समर्पन ॥४०॥
कोई गीता कोई भागवत पढ़ते। कथा पुराण नेम से सुनते ॥४१॥
क्या दादू का नानक पन्थी। क्या कबीर क्या पलटू संती ॥४२॥
सब मिल करते पिछली टेका। वक्त गुरु का खोज न नेका ॥४३॥

अत:—

राधा स्वामी काटें पिछली टेक री। राधा स्वामी भ्रम न राखें एक री

(सार वचन ३।५।५८)

एक ओर तो राधा स्वामी मत वाले कबीर आदि सन्तों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हैं जैसे कि—

"थोड़े से नाम पूरे और सच्चे सन्तों के और सच्चे साध और फकीरों के जो पिछले ७०० वर्ष में प्रकट हुये, यहां लिखे जाते हैं। कबीर साहब, तुलसी साहब, जगजीवन साहब, गरीब दास जी, पलटू साहब, गुरु नानक, दादू जी, तुलसी दास जी, नाभा जी, स्वामी हरिदास जी, सूरदास जी, और रैदास जी और मुसलमानों में शम्स, तबरेज, मौलवी रूम, हाफिज, सरमद मुजद्दिद अलिफ सानी इन साहबों के वचन वाणी देखने से हाल इनकी पहुँच और स्थान का मालूम हो लकता हैं।"

(सार वचन वार्तिक भाग १ वचन ३९)

दूसरी ओर उनको पिछली टेक में घसीट कर उनकी निन्दा करते हैं क्या इसी का नाम सन्त पन है ?

वेद और शास्त्रों की निन्दा

वेद शास्त्र और स्मृत पुराना। पढ़ना इनका बिरथा जाना ॥

(सार वचन ८।१७।१२)

षट शास्त्र और सिम्रित पुराना। लीक पीटें छोड़े नहिं पन को॥
(सार वचन १६।६।६)

षट शास्त्र और चारों वेदा। यह सन्तन ने किये निषेधा॥
(सा० २४।१।६५)

समीक्षा—वेद संसार साहित्य का मुकुट मणि है। मैक्समूलर के शब्दों में Rigveda is the oldest book in the library of mankind. वेद शास्त्र का पढ़ना वृथा नहीं है कल्याण कारक है। हां सार वचन आदि का पढ़ना निश्चित रूप से वृथा है क्योंकि इस में गुरुडम, ढोंग पाखण्ड, शिवदयाल की प्रशंसा तथा ऋषि मुनियों की निन्दा के अतिरिक्त कोई बात नहीं है।

प्रमाण—"और जो कर्म कि वेद में लिखे हैं, वह पिछले जुग के हैं, न तो वह जीवों से विधि पूर्वक बन सकते हैं और न उन में वह फल है।" (सार वचन वार्तिक भाग २ वचन २४८)

वेद के नाम की हद तीन लोक तक है और सन्तों का नाम चौथे लोक तक पहुँचता है।" (सार वचन वार्तिक भाग २ वचन २२१)

समीक्षा:—यदि ऐसी गप्पें न लगाओ और अपनी महिमा के गीत न गाओ तो फिर लोग तुम्हारे चंगुल में कैसे फंसे? वेद के नाम ओ३म् की हद तो तीन ही क्या सात लोक चौदह भुवन और समस्त ब्रह्माण्ड तक है और सन्तों का नाम चौथे लोक में तो क्या पहुँचायेगा संसार सागर में भटका कर अवश्य ही मारेगा।

"पाँचों शास्त्रों का दोष तो वेदान्त ने निकाला और वेदान्त का दोष अब सन्त सतगुरु निकालते हैं। सतजुग त्रेता और द्वापर में इन शास्त्रों की पोल नहीं निकली क्योंकि जब सन्त प्रकट नहीं हुए थे।"
(सार वचन वार्तिक भाग २ वचन १८१)

षट शास्त्रों की पोल तो न निकली न निकलेगी क्योंकि कि उन में पोल है ही नहीं हां आपके ग्रन्थों की पोल त निकल ही रही है और उनकी धज्जियां उड़ रही हैं।

"कलियुग में बादशाह सन्त हैं। जो जीव उनके हुकम में चलेंगे यानी जो कर्म और उपासना सन्तों ने इस कलियुग के वास्ते कही है, उसको करेंगे, वह खुश रहेंगे और उन का उद्धार होगा और जो इस हुकम के वरखिलाफ अमल करेंगे यानी पिछले जुगों के कर्म और उपासना और ज्ञान जो शास्त्र और पुराणों में लिखा है, करेंगे तो उन

से वे कर्म विधि पूर्वक नहीं बन सकेंगे और उलटा अहंकार बढ़ेगा, क्योंकि पुराने जो कानून हैं वह सब रद्द और खारिज हुए। अब जो कोई उन की टेक रक्खेगा और उन पर चलेगा, उसका काम हरगिज नहीं बनेगा और चौरासी से नहीं बचेगा।"

समीक्षा—जो वेद के अनुसार अपना जीवन बनायेंगे उन का उद्धार निश्चित है। वेद की शिक्षा सभी कालों और देशों के लिये समान है। जो लोग राधा स्वामी मत में जायेंगे उन का उद्धार नहीं हो सकता वे बार बार संसार में गोते खायेंगे। चौरासी से छूटने का वेद के अतिरिक्त और कोई मार्ग है ही नहीं।

महापुरुष और ऋषि मुनियों की निन्दा

"जितने ऋषि, मुनि, योगी, यती, ज्ञानी, सन्यासी, परमहंस हुए और अपने मत के पूरे भी थे, पर उनको मालिक के दरबार में दखल नहीं मिला क्योंकि अहंकारी थे और निगुरे।"

(सार वचन वार्तिक भाग २ वचन २४६)

"और ब्रह्मा, विष्णु महादेव और अवतार और देवता और पीर, पैगम्बर और औलिया आप ही निगुरे हैं यानी इनको सन्त सतगुरु नहीं मिले और न चौरासी के चक्कर से आप बचे और न दूसरे को बचा सकते हैं।" (सार वचन वार्तिक भाग २।१५६)

जो ऋषि सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए उनका गुरु परमात्मा था तथा राम कृष्ण नारद आदि के गुरु वशिष्ठ, संदिपनि सनत्कुमार आदि थे। फिर शिवदयाल जी का यह कहना है कि ऋषि मुनि निगुरे थे सफेद झूठ नहीं तो क्या है? हां शिवदयाल सिंह का कोई गुरु नहीं था।

"हजूर साहब का कोई गुरु नहीं था और न किसी से उन्हाने परमार्थ का उपदेश लिया।" (सार वचन छन्द भूमिका पृष्ठ २)

कहो कैसी रही। यह तो अपना ही थप्पड़ अपने ही गाल पर पड़ा। चौबे जी चले थे छब्बे जी बनने परन्तु दुब्बे जी ही रह गये।

"ब्रह्मा से आदि लेकर जितने देवता हैं और राम कृष्ण से आदि लेकर जितने अवतार हुए हैं, इन सबका दरजा सन्तों से नीचे है और सन्तों का दर्जा सब से ऊंचा है। यह सब कामदार और वजीर हैं और सन्त बादशाह हैं।" (सार वचन वार्तिक भाग २ वचन ३४)

समीक्षा—राम आदि महापुरुषों और ब्रह्मा आदि ऋषियों को नीचा और नौकर बताने और अपने आपको ऊंचा और सन्त बताने से शिवदयाल सिंह बड़े नहीं बन सकते। यह तो अपने मुंह मिया-मिट्ठू बनने वाली बात है। वास्तव में तो शिवदयाल सिंह ब्रह्मा और राम आदि के पैर की धूलि भी नहीं थे। कहां राजा भोज और कहां कंगला तेली!

"ब्रह्मा को जब कबीर साहब ने समझाया और उसको शौक हुआ कि सत्तपुरुष की खोज करूं। पर काल ने वहका दिया।"

(सार वचन वार्तिक भाग २।८)

समीक्षा—शिवदयाल सिंह की यह खोज तो इतनी शानदार है कि भारत सरकार को उन्हें पी० एच० डी० की डिगरी देनी चाहिए। बलिहारी है इस बुद्धि की यह तो अजाइब घर में रखने योग्य है। ब्रह्मा कब और करीब कब। कबीर जी सन् १४५६ में उत्पन्न हुए थे और इसी पुस्तक में कबीर को प्रकट हुए ७०० वर्ष हुए ऐसा लिखा है। फिर कबीर ने ब्रह्मा को कैसे समझाया? यह तो वही लाल-बुझक्कड़ वाली वात हुई—

इसको बूझे लाल बुझक्कड़ और न बूझे कोय।
पैरों में चक्की बांध कर कोई हिरना कूदा होय॥

यदि राधास्वामियों के किसी अनुयायी में दम खम है तो वे अपने गुरु की इस सफेद भूठ को किसी माननीय इतिहास से सिद्ध करके दिखाएं।

राधा स्वामी कहत बुझाई। त्यागो कृष्ण लबार॥
यही हाल तुम राम बिचारो। दोनों हैं इक तार॥

(सार वचन छन्द २२। ६। १७, १८)

समीक्षाः—श्रीराम चन्द्र जी और कृष्ण जी ने क्या भूठ बोला था यह तो शिव दयाल सिंह ने कहीं बताया नहीं। हां वे स्वयं लबार थे इस का प्रमाण हमने ऊपर दे ही दिया है।

बिन सन्त हाथ नहिं आया। ऋषि मुनि सब धोखा खाया॥२
क्या व्यास वशिष्ठ भुलाया। क्या शेष महेश भ्रमाया॥३
पारासर जोगी नारद। भृङ्गी ऋषि गोता खाया॥४
हम कहें कौन समझाई। परतीत न कोई लाया॥५

(सार वचन छन्द २२।४)

ऋषि मुनि तो वेद मार्ग पर चलते थे उन्होंने तो धोखा नहीं खाया परन्तु अपने पूर्वजों की निन्दा करके राधा स्वामी अवश्य धोखा खाते हैं। व्यास और वसिष्ठ तो उच्च कोटि के विद्वान् थे और महान् पदवी पर पहुँचे हुए थे उन्होंने गोता नहीं खाया हां शिवदयाल-सिंह जीवन भर बुक्को, खिल्लो और सिब्बो के चक्कर में अवश्य पड़े रहे।

हमने ऊपर कुछ उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि शिवदयाल सिंह जी ने श्री राम, कृष्ण और ऋषि मुनियों को तुच्छ बता कर अपने आपको सन्त सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। परन्तु शिवदयाल सिंह जी सन्त बिल्कुल नहीं थे। प्रमाण प्रस्तुत है।

प्रश्नोत्तर सन्त मत का प्रश्न संख्या ३९ यह है—

"सन्त सतगुरु की क्या पहिचान है?

उत्तर—तीसरे उनके वचन बहुत ही संक्षेप करके और गहरे और असर वाले हों।"

समीक्षा:—शिवदयाल सिंह के वचनो में संक्षेप बिल्कुल नहीं है एक ही बात को घुमा फिरा कर कई जगह कहा गया है। जुगत प्रकाश वचन १३९ और १४७ में एक ही बात दुहराई गई है इसी प्रकार सार वचन वार्तिक में भाग १ वचन ३७ में और भाग २ बचन २६३ पृष्ठ २६९ पर भी वही बात दुहराई गई है। झूठा खिलाना, पर स्त्रियों को गोद में बिठाना और घर बार को त्याग देना क्या ये ही गहराई की बातें हैं? थोथी बातों में प्रभाव तो हो ही कहां सकता है?

इस प्रश्न के उत्तर में छः पहचान बताई गई हैं। तीसरी की समीक्षा कर दी अब अगली देखिये—

'पांचवें—जिनकी रहती मिस्ल कथनी के हो।"

समीक्षा:—निज उपदेश राधास्वामी हमारे समक्ष है। इसके मुख्य पृष्ठ पर लिखा हैं "जिसको परम सन्त सतगुरु हुजूर महाराज ने अपनी जबान से मुबारक से फरमाया।" इस पुस्तक के भाग तीन धारा १ पृष्ठ १९ पर लिखा है—

"सन्त मत के अभ्यासी को मांस आहार और शराब और नशों की चीजों को खाना या पीना नहीं चाहिये, नहीं तो उसके अभ्यास में फरक पड़ेगा और हरज होगा।"

यहां नशे वाले पदार्थों का खाना और पीना निषेध बताया गया है। संसार के सुप्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्यों, हकीमों और डाक्टरों ने तम्बाकू

को नशा बताया है परन्तु शिवदयाल सिंह जी प्रतिदिन हुक्का पीते थे। देखिये—

हुक्का भर फिर दासी लाई। राधा स्वामी ढिग बैठ पिलाई॥

(सार वचन छन्द ४२।१।१४)

क्या यही कथनी के अनुसार आचरण हो रहा है ? ऐसा विरुद्ध आचरण और फिर अपने को परम सन्त कहना ? इन के ही ग्रन्थों से यह भली भांति सिद्ध है कि शिवदयाल जी परम सन्त की तो बात ही क्या साधारण सन्त भी नहीं थे।

राधा स्वामी मत और झूठे दावे

शिवदयाल सिंह जी ने अपने आपको बहुत बड़ा सिद्ध करने के लिये कुछ दावे किये हैं परन्तु विद्या रहित होने के कारण स्वयं ही अपने जाल में फंस गये। सारे दावे झूठे पड़ गये। उदाहरण लीजिये—

सतजुग त्रेता द्वापर बीता। काहु न जानी शब्द की रीता॥
कल जुग में स्वामी दयाबिचारी। परगट करके शब्द पुकारी॥

(सार० छन्द ७।१४,५)

अर्थात् तीन युग बीत गये परन्तु किसी को शब्द की रीति का ज्ञान नहीं हुआ। शिवदयाल ने दया करके कलियुग में शब्द की रीति बताई है।

समीक्षा—कबीर साहब के ग्रन्थों में अनहद नाद सुनना, शब्द में सुरत लगाना और शब्द पर सवार होना आदि का पद पद पर उल्लेख किया है यहां केवल एक उदाहरण देता हूँ—

हस्ती चढ़िये ज्ञान की सुरत दुरीची डार।
श्वान रूप संसार है भूषण दे झखमार॥

कहिये राधा स्वामियों ! तुम्हारे गुरु का दावा झूठा हो गया या नहीं ? शिवदयाल जी ने नई कोई बात नहीं बताई हठ योग आदि के ग्रन्थों से चुरा कर अपने नाम से प्रसिद्ध कर दिया है।

"हुजूर महाराज साहब ने भक्ति में भी बड़ी आसानी दया और महर फरमाई और सब से सहल और सुगम पिता पुत्र का भाव जिस में बहुत बड़ा माफी और क्षमा का सहारा जीवों का हासिल हो सकता है जारी फरमाया।"

(जीवन चरित्र हुजूर महाराज साहब वचन ८६)

समीक्षा—शिष्य तो गुरु का अनुकरण करता है। गुरु झूठ बोले

तो चेला भी गुरु से आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है। परन्तु यह दावा भी झूठा है और वेद की तोप से अभी खारिज हो जाता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का ९ वां मन्त्र है—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥

अर्थात् हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! जैसे पुत्र के लिये पिता होता है उसी प्रकार हमारे लिये सुखदायक पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हूजिये और हम लोगों का कल्याण के लिये मेल कराइये।

कहिये राधा स्वामियों! है नहीं चोरी और सफेद झूठ।

राधा स्वामी और ध्यान योग

राधा स्वामी मत के सतसंगों में जो बहुत अधिक भीड़ होती है उस का कारण है शीघ्र अति शीघ्र ईश्वर की प्राप्ति की लालसा। परन्तु यदि लोग इन के ग्रन्थों को पढ़ें तो पता लग जाये कि वास्तविकता क्या है—

"अभ्यासी को बेफायदा जल्दी इस काम में नहीं करना चाहिये और गौर करना चाहिये कि दुनिया के काम भी जैसे विद्या सीखना जल्दी के साथ दुरुस्त नहीं बनते। इसमें पन्द्रह और १८ वर्ष सहज में गुजर जाते हैं।" (जुगत प्रकाश धारा ३३)

समीक्षा—पाठक गण! यह तो चंगुल में फंसाने की बात है। वस्तुतः ईश्वर प्राप्ति तो राधा स्वामियों को हो ही नहीं सकती क्योंकि ईश्वर को ये मानते ही नहीं। हां राधा स्वामी के फोटो के दर्शन अवश्य हो सकते हैं।

जुगत प्रकाश में स्थान स्थान पर आसन लगा कर बैठने की बात कही है परन्तु सारी पुस्तक में आरम्भ से लेकर अन्त तक कहीं भी आसन की विधि नहीं लिखी है "कि आश्चर्यमतः परम्।"

जुगत प्रकाश राधा स्वामियों की योग सम्बन्धी पुस्तक है परन्तु समस्त पुस्तक में कहीं भी यह भी उल्लेख नहीं है कि ईश्वर के कौनसे नाम का और किस प्रकार जप किया जाये। राधा स्वामी नामदान को छिपा कर रखना चाहते हैं। लगभग ८ वर्ष पूर्व मैं भी इन के सतसंग में गया था और नाम दान दिये जाने की विधि भी देखी थी। ध्यान के लिये पांच नाम बताये थे—१. ज्योत, निरंजन, २. ओंकार, ३. रोरंकार, ४. सोऽहं, ५. सत्तनाम। इन नामों को लिखने नहीं दिया गया वहीं याद कराया गया।

समीक्षा—जब आसन की विधि का ही पता नहीं तो विचारे सत्संगी भजन कैसे करेंगे। अस्तु इनके आसन की विधि जो भी हो उस से पैरों में दर्द होने लगता है—

"कभी कभी ऐसा होता है कि भजन का अभ्यास करते करते हाथ और बाहें और पिंडलियां और पैर सुन्न हो जाते हैं यानी किसी कदर बेकार हो जाते हैं और कभी उंगलिया सुन्न होकर छूट जाती हैं, तो इस बात का कुछ अन्देशा नहीं है।" (जुगत प्रकाश धा० ६३)

एक ही नाम का ठीक प्रकार जाप हो सकता है। एक साथ पांच पांच नामों को जप जिन में न कोई सम्बन्ध और न कोई तुक व्यर्थ है।

ऐ योग के जिज्ञासुओ ! यदि आप अपने शरीर को ठीक रखना चाहते अपने हाथ पैरों को निकम्मा नहीं बनाना चाहते तो राधा स्वामियों की विधि को छोड़ वैदिक धर्म की शरण में आओ। महर्षि पतञ्जलि ने ध्यान के के लिये कैसे सुन्दर आसन का विधान किया है—

स्थिरं सुखमासनम् (यो० द०)

जिस में सुख पूर्वक स्थिर होकर बैठा जाये उस का नाम आसन है। ओ३म् ईश्वर का निज नाम है। इस एक नाम में ईश्वर के अनेक नाम आ जाते हैं। यह ओ३म् रूपी नौका ही संसार सागर को पार करने का सर्व श्रेष्ठ मार्ग है और कोई मार्ग नहीं है।

धर्म कर्म और शर्म सबका सफाया

"धारणात् धर्म] इत्यादु" जो धारण किया जाये उसे धर्म कहते हैं। यह सारा संसार धर्म के आधार पर टिका हुआ है। यदि मनुष्य में धर्म विद्यमान है तो मनुष्य है अन्यथा पशु का बड़ा भाई है।

कर्म की महिमा महान् है। मनुष्य कर्म किये बिना तो एक क्षण भी रह ही नहीं सकता। वेद में आदेश दिया है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समा (यजु० ४०।२)

मनुष्य कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे।

लज्जा मनुष्य का भूषण है। जिस प्रकार वस्त्र रहित मनुष्य श्री और शोभा हीन होता है ठीक इसी प्रकार लज्जा शून्य मनुष्य भी समाज का दूषण हैं।

राधा स्वामियों की तो डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकती

है। देखिये इन्होंने अपने ग्रन्थों में धर्म, कर्म, शर्म सब को कैसी तिलांजलि दी है—

राधा स्वामी माने न कर्म धर्म री।

(सार० ३।५।५५)

शब्द पिछान सुरत निज साज। छोड़ जगत और कुल की लाज॥

(सा० वचन १८।६।८)

शिखा सूत और धोती पोथी। नेम धरम भटकाय॥

(सा० २२।८।१५)

संगत छोड़ी खासो आम की। रही न लज्जा नंगो नाम की॥

(सा० भाग २ ३०।११।६)

करम धरम विद्या दीन्ही आगी। मान अपमान दोऊ मैं त्यागी॥

(सा० ३०।२३।७)

करम धरम से दूर फटकना। सत गुरु चरनन माँहि लिपटना॥

(सा० ३५।१०।७)

फूंक दिया घर लाज शरम का। काटा फंदा नेम धरम का॥

(सा० ३७।१।६)

समीक्षा—यहां हमने कुछ वचन उद्धृत किये हैं। इन वचनों से स्पष्ट सिद्ध है कि राधास्वामी धर्म और कर्म को नहीं मानते। न उन्हें कुल की लाज की चिन्ता है और न संसार में बदनामी की। जिस शिखा और सूत्र के लिये वीर हकीकत ने अपना बलिदान दे दिया। जिसधर्म के लिये गुरु गोविन्दसिंह जी के बच्चों ने अपने आपको दीवार में चिनवाना स्वीकार कर लिया ये राधास्वामी उस अपनेधर्म को ही समाप्त कर रहे हैं। पाठको मैं तो शिवदयाल सिंह के ही शब्दों में आपको चेतावनी देना चाहता हूँ—

यहां तुम सोच समझ कर चलना। यह तो राह बड़ी अति टेढ़ी॥

(सार० १५।१४।१)

राधास्वामी और अन्य मत

अपने मत को सब से बड़ा सिद्ध करने के लिये शिवदयाल सिंह ने अपने ग्रन्थों में अन्य मतों के लिये अति ठोर एवं तुच्छ शब्दों का प्रयोग किया है। कुछ नमूनों का अवलोकन कीजिये—

शेष महेश रहे सब नीचे। ब्रह्म और पारब्रह्म रहे बीचे॥

(सार वचन ३८।४।१६)

समीक्षा—यहां अपना बड़प्पन दिखाने के लिये शिव ब्रह्म आदि

की निन्दा की है। मैं कहता हूं शिवदयाल उनकी चरन रज के समान भी नहीं था।

राग और रागनी मैंने सुने अंतर जाकर।
मेरे नजदीक हुए हिन्दु मुसलमां काफिर॥

(सार वचन २१।१।८)

समीक्षा—एक ओर तो राधा स्वामी ये दावा करते हैं कि हमारे मत में हिन्दु, सिख, मुसलमान आदि हिन्दु और मुसलमान रहते हुए प्रविष्ट हो सकते हैं और दूसरी ओर हिन्दु और मुसलमानों का काफिर बताया जा रहा है।

और देखिये—

मुसलमान हिन्दु और जैनी। ईसाई क्या जाने कहनी॥

(सार वचन २६।४।११८)

"जो कि बिचौलिया होते हैं वह सगाई और शादी कराकर स्त्री और पुरुष को मिला देते हैं और उस स्त्री को समझा देते हैं कि देख तू सिवाय अपने पति के और किसी से प्रीति मत करयो और हम से भी इतनी ही प्रीति रख कि जैसे औरों से बरतती है। इसी तरह **गुरु नानक और पिछले सन्त हुये कि उन्होंने बिचौलिया का काम किया** यानी अपने वचन और ग्रन्थों में लिख गये हैं कि पूरे सतगुरु की खोज करके उनकी शरण पड़ो।"

(सार वचन वार्तिक भाग २ धारा २ ५६)

"अब गौर करना चाहिए कि ग्रन्थ को गुरु मानने से क्या फायदा होगा और कहां ऐसा हुक्म है? ग्रन्थ तो जड़ है। उसकी कोई सेवा नहीं हो सकती है।" (सार वचन वार्तिक भाग २ धारा १८५)

जो सिख लोग इनके सत्संगों में जाते हैं वे तनिक ध्यान से देखें कि इन्होंने गुरु नानक को बिचौलिया बना रक्खा है।

"राधा स्वामी मत में एक कुल मालिक राधास्वामी दयाल का इष्ट बांधने की और बाकी जिस कदर ब्रह्म पारब्रह्म ईश्वर परमेश्वर देवी देवता के इष्ट हैं उनके त्याग की हिदायत है।"

(जीवन चरित्र सालिगराम धारा १०६)

यहां तो राधा स्वामी को छोड़ कर सब का सफाया ही कर दिया है।

अन्य मतावलम्बियों को गालियां

"पर लोग **अन्धे हैं कि इस** स्वरूप को जो उद्धार करने वाला है नहीं पकड़ते।" (सा० वार्तिक भाग २ धारा ३१)

"और लोग बावले, पानी और पत्थर पूजते हैं।"

(वही धारा ६७)

"और बाकी सब कपटी हैं" (वही धारा १४५)

"सन्तों के वचनों को जो वेद से मिलाते हैं वह बड़े नादान हैं।"

(वही धारा १४८)

"इसलिए ऐसे जो अन्धे हैं, वह सब आप भी भूल में पड़े हैं।"

(वही धारा १८२)

इस प्रकार और भी अनेक स्थानों पर इस प्रकार के कुवाक्य लिखे हैं। इनके सम्बन्ध में हम यही कहना चाहते है "त्वदीय वस्तु गोविन्द-तुभ्यमेव समर्पयामि" तुम्हारी वस्तु तुम्ही को समर्पित है।

राधा स्वामी मत में अद्भुत विज्ञान

सन्तमत क्या है ? अथवा राधास्वामी पंथ किसको कहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर इनकी ही एक मान्य-पुस्तक में इस प्रकार दिया हुआ है—

"सन्तमत या राधास्वामी पंथ सारे संसार के सब मतों की जान है, सब विद्याओं का सिद्धान्त है, जिस को सन्तों ने अति परीक्षा और अभ्यास करके और जीवों पर अति दया करके प्रकट किया है।"

(प्रश्नोत्तर सन्त मत पृष्ठ १)

सारे मतों की जान राधास्वामी मत नहीं वैदिक धर्म है। सारे मत वेद से ही निकले हैं। वेद धर्म का आदि स्रोत है। इस विषय में पाठक श्री गंगाप्रसाद जी की पुस्तक "धर्म का आदि स्रोत" पढ़ें। रही विद्याओं के सिद्धान्त की बात यह सब गपौड़ा है। यह हम इन्हीं के ग्रन्थों से सिद्ध करते है—

"सन्त फरमाते हैं कि यह कुछ जरूरी नहीं है कि जिसका आदि होवे उसका अन्त भी होवे यानी सन्तों ने मौज से ऐसी रचना रची है कि जिसका आदि है पर अन्त नहीं है।"

(सार वचन वार्तिक भाग २ धारा ११४)

समीक्षा—क्या कोई राधास्वामियों का अनुयायी ऐसी रचना-दिखा सकेगा ? क्या कहीं कोई ऐसी नदी है जिसका एक किनारा हो और दूसरा न हो ? क्या कोई ऐसी रस्सी आदि है जिसका एक सिरा हो और दूसरा न हो ? क्या कोई ऐसा दिन अथवा रात्रि है जिसका आरम्भ हो परन्तु अन्त न हो ?

"मन एक अण्डे के मिसाल है। एक सिरा उसका ऊंचे की तरफ और एक सिरा नीचे की तरफ है।" (प्रेम उपदेश वचन ५९)

समीक्षा--यह भी एक नई खोज है। क्या मन कोई ठोस पदार्थ है ? क्या इसका कोई रंगरूप है ? क्या आप किसी शरीर शास्त्र से यह दिखा सकते हैं कि मन अंडे की भांति होता है ?

"चौरासी लाख जोन भुगत कर जीव को गाय की जोन मिलती है और फिर नर देही मिलती है।"

(सार वचन वार्तिक भाग २ धारा १३५)

समीक्षा—यह कौन से ग्रन्थ का वचन है ? या शिवदयाल सिंह जी ने अपनी आप बीती लिखी है ? राधा स्वामियों ! एक योनि भोग कर ही पुनः नर देह प्राप्त हो जाती है।

गुरु चरन धूर कर अंजन। हिये नैन खुलें मन मंजन॥

(सार वचन छन्द ८।१५।१)

समीक्षा—क्या अद्भुत विज्ञान है ? कैसा अपूर्व विद्या का सिद्धान्त है ? गुरु के चरणों की धूलि का अंजन लगाने से हिये के नैन तो क्या खुलेंगे आंखें अवश्य फूट जायेंगीं इस में तनिक भी सन्देह नहीं है।

नाम धुन चली अधर से आत। अर्श का चरखा डाला कात॥

(सार वचन छन्द २०।६।२०)

समीक्षा—अर्श का अर्थ पाद टिप्पणी में आसमान दिया है। मैं राधा स्वामियों से पूछना चाहता हूँ कि क्या आसमान भी कोई रूई रेशम अथवा सूत है जिसका चरखा काता जा सकता है ?

चांद सूरज दोऊ खंभ सजे रे। सुषमन चौकी लाल जड़े री।

(वही ४०।४।४)

समीक्षा—यहां तो शिवदयाल जी ने संसार भर के वैज्ञानिकों के लिये खोज का नया मार्ग प्रशस्त कर दिया है। ओ संसार के वैज्ञानिकों ! आपकी खोज अभी अधूरी है। आप तो चाँद सूरज को गोले बताते हो परन्तु राधास्वामी खम्बे बता रहा है और वे भी अपने भूले के। किस की बात ठीक मानें ? राधास्वामियों ! आप अपने मत की व्यर्थ प्रशंसा करके लोगों को अधिक समय तक धोखा नहीं दे सकते। आप की विद्या का भण्डा फूटेगा ही—

बज़्म यारां[१] देर तक धोखे में रह सकती नहीं।
कोई दिन में देखना सब कुछ अयां[२] हो जायेगा॥

विचित्र बातें

"यह जीव संसार में वास्ते तमाशा देखने को भेजा गया था, पर

(१) संसार (२) प्रकट

यहां आन कर मालिक को भूल गया और तमाशे में लग रहा।"

सार वचन वार्तिक भाग २।४२

समीक्षा—जब जीव तमाशा देखने के लिये आया था और तमाशे में लगा रहा तो इस में आश्चर्य की क्या बात रही? सन्त होने का दम भरते हो परन्तु जीव के उद्देश्य का आप को पता नहीं। यह जीव तमाशा देखने नहीं आता प्रभु को प्राप्त करने के लिये आता है।

"हरि की पूजा करने से हरि नहीं मिलेगा और सतगुरु की पूजा और सेवा करने से हरि मिल जावेगा।"

(सार वचन वार्तिक भाग १।६२)

समीक्षा—है न विचित्र बात। ईश्वर की पूजा से तो ईश्वर नहीं मिलेगा और गुरु की पूजा से मिल जायेगा। जब जीव और ईश्वर का पुत्र और पिता का सम्बन्ध है तो उनके बीच में सतगुरु टांग अड़ाने वाला कौन होता है?

"संसार में चाहे कपट से बरते, पर सतगुरु के संग निष्कपट होकर बरतना चाहिये।" (सार वचन वार्तिक भाग २ धारा १०८)

समीक्षा—कैसी उच्च और आदर्श शिक्षा है? यदि संसार में कपट से बरत सकता है तो फिर गुरु भी तो संसार में ही आ गया उसके साथ भी फिर कपट का वर्ताव होगा ही।

"वहां नहरें सुनहरी और रूपहरी **पुर आज़ आबि जुलाल**[१] दीखने लगीं और बाग बड़े बड़े नजर आये एक एक दरखत उसका करोड़ करोड़ जोजन की बुलंदी रखता है और सूरज और चांद करोड़ों बजाय फूल और फलों के लगे हुए हैं।"

(सार वचन छन्द प्रथम भाग हिदायतनामा पृष्ठ ३६७)

समीक्षा—ये सोने और चाँदी की नहरें जिन में अमृत भरा था शिवदयाल के घर में होंगी या राधास्वामियों के घर में होंगी और कहीं तो हैं नहीं और चार चार छः छः करोड़ मील ऊंचे वृक्ष भी वहीं होंगे। चांद सूरज तो न आज तक कभी वृक्षों में लगे हैं न आगे लगेंगे। हां यह हो सकता है किसी के यहां कोई शादी हो रही हो और उसने शाभो के लिये वृक्षों में बिजली के बल्ब लगवा दिये हों तथा शिवदयाल जी को दृष्टिदोष के कारण वे चांद और सूरज दिखाई दिये हों।

---

१ अमृत से भरी

गुरु उलटी बात बताई । मूरखता खूब सिखाई ॥१॥
अग्नि को जाड़ा लागा । वर्षा से सूखी साखा ॥६॥
रोटी नित भूखी तरसे । पानी अब प्यासा तड़पे ॥७॥
घोड़े पर पृथिवि दौड़ी । ऊंट ने चढ़ गगना फौड़ी ॥१०॥

(सार वचन ४१।२१)

समीक्षा—यहां राधास्वामियों के गुरु ने एक बात स्पष्ट स्वीकार कर ली है कि मैं संसार में अविद्या और मूर्खता का प्रचार करने आया हूँ । संसार के लोगो ! अब तो चेतो । क्या अग्नि को भी जाड़ा लग सकता है और वर्षा से खेती सूखती है या हरी होती है ? जब पृथिवी घोड़े पर चढ़ कर दौड़ी थी तो घोड़ा क्या राधा स्वामियों के घर में खड़ा था ?

पक्षपात

सच्चे सन्त निष्पक्ष होते हैं। वे सब के साथ समानता का व्यवहार करते हैं परन्तु शिवदयाल जी बड़े ही पक्षपाती थे यह बात उनकी वाणियों से सिद्ध है—

"इस कदर दया और दात जैसी हुजूर राधास्वामी दयाल इस समय में जीवों पर कर रहे हैं किसी अगले वक्त में नहीं हुई ।"

(प्रेप उपदेश वचन ६२)

समीक्षा—इस वचन से स्पष्ट सिद्ध है कि राधास्वामी पक्षपाती निर्दयी और अन्यायी था ।

"जो गुनहगार भी हैं और सतगुरु को पकड़ लिया है तो वह माफ हो जावेंगे और जो बेगुनाह हैं और सतगुरु को नहीं पकड़ा है तो वह बढ़ के गुनहगारों में गिने जावेंगे ।"

(सार वचन वार्तिक भाग २ धारा २०४)

समीक्ष—यह तो मुसलमान और ईसाईयों वाली बात हो गई। जो मोहम्मद साहब और ईसा पर ईमान लायेंगे वे क्षमा कर दिये जावेंगे और शेष सब को नरक में डाला जयेगा । प्रत्येक व्यक्ति अपनी चलाता है किस को पकड़ें और किसको छोड़ें । पाठकगण ! ये तो अपने अपने जाल में फंसाने के ढंग हैं । किसी को पकड़ने की आवश्यकता नहीं । केवल मात्र एक ईश्वर की ही पूजा और अराधना करो ।

करामात

करामात के सम्बन्ध में पहले शिवदयालसिंह के विचार उन की ही पोथी से जान लीजिये—

प्रश्न १९—पिछले महात्माओं और अवतारों और औलिओं की करामात का हाल जो उनके मजहब की किताबों और पोथियों में लिखा है वह सही है या नहीं ?

उत्तर—जो करामात कि लिखी हैं वे असल में उनकी अन्दर की चढ़ाई का हाल है...सो यह सब हाल सही है...पर आम लोग जो उन किताबों और पोथियों को पढ़ते हैं वे उन हालात को करामात में दाखिल करके वक़ू (घटना) उनका बाहर मानते हैं सो यह गलत है क्योंकि न तो बाहर वे मुकाम हैं और न वे काम जो उन्होंने किये बाहर वाके हुए (घटे) इसी सबब से किसी तवारीख में भी ऐसे कामों का जिकर किसी महात्मा, औलिया या अवतार का दरज नहीं हुआ है।...सच सच हाल यह है कि जो करामात लिखी हैं, वे किसी महात्मा ने बाहर नहीं दिखलाई।"

सार उपदेश राधा स्वामी उर्दू पृष्ठ ९५-९७

"सन्त करामात नहीं दिखाते हैं। अपने स्वामी की मौज बरतते हैं और गुप्त रहते हैं। (सार वचन वार्तिक भाग २।१३२)

अब हम इन्हीं के ग्रन्थों से यह सिद्ध करेंगे कि शिवदयालसिंह और सालिगराम जी के जीवन इस प्रकार की करामातों से भरे पड़े हैं और ये तथाकथित करामातें अन्दर की नहीं है।

"एक मर्तबा : हुजूर महाराज साहब ग्वालियर से मुकाम सीपरी को तशरीफ ले जा रहे थे रास्ते में मोहना नदी पर एक शेर मिला और वह एक मील तक हुजूर महाराज जी साहब की पालकी के साथ भागता हुआ चला और फिर जंगल को चला गया हुजूर महाराज साहब के किसी हमराही पर कोई हमला नहीं किया इसको देखकर जो लोग साथ में थे और खोफ खा रहे थे बहुत ही ताअज्जुब करने लगे।" (जीवन चरित्र सालिगराम दफा २५)

समीक्षा—जैसा हमने ऊपर इनके ही ग्रन्थों से सिद्ध कर दिया है कि सन्त करामात नहीं दिखाते और जो करामात होती है वह अन्दर होती है तो फिर यह करामात जीवन चरित्र में क्यों दी गई ? शेर नहीं कोई कुत्ता अथवा गीदड़ भागा होगा। राधास्वामी की गद्दी पर जो बैठता है उस में वही शक्ति आ जाती है तो क्या कोई चेला अब ऐसी करामात दिखा सकता है ?

"हुजूर महाराज साहब जब डाकखानों के मुलाहिज: के वास्ते तशरीफ ले जाते थे तो हर एक किताब का मुलाहिज: फरमाते थे

ग्रौर जब किताब को खोलते थे तो उसका वही सफह कि जिस में कुछ गलती हों निकलता था ग्रौर इसी तरह से जिस फाइल में कोई गलती होती थी उसी का नाम लेकर निकलवाते थे ग्रौर मातहतों को फहमाइश ग्रौर तम्बीह कर दिया करते थे ग्रौर कभी कभी रहमदिली के साथ सजा भी दे देते थे।"

(जीवन चरित्र सालिगराम जी धारा ५०)

समीक्षा—मैं राधा स्वामियों से पूछना चाहता हूँ कि क्या यह करामात ग्रन्दर होती थी ? क्या वे रजिस्टर ग्रन्दर ही लाये जाते थे ग्रौर उन कर्मचारियों को दण्ड भी ग्रन्दर ही दिया जाता था ? यह करामात कुछ नहीं हैं भोले भाले लोगों के ग्रपने जाल में फंसाने के लिये गपोड़े घड़े गये हैं। यदि यह बात ठीक है तो इन के वर्तमान सन्त कृपालसिंह जी कुछ करके दिखायें ग्रन्यथा दावा झूठा है।

राधा स्वामियों के ग्रसम्भव गपोड़े

राधास्वामी ग्रपने को संसार का कुल्ल मालिक कहते थे। यदि राधास्वामी नाम का कोई कुल्ल मालिक होता तो वह वेद से श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करता। इनकी पुस्तकों में ज्ञान की शायद ही कोई बात मिले हां इतिहास विरुद्ध, ग्रौर सृष्टिक्रम तथा विज्ञान के प्रतिकूल गपोड़े खूब मिलेंगे। पाठकों के मनोरंजनार्थ हम कुछ गपोड़े प्रस्तुत करते हैं—

मेरी लाग लगी गुरु चरनन। नख सोभा क्या करूं बरनन।
कोटिन रबि चन्द्र लजाई। उस नख की गति नहीं पाई॥

(सार वचन ८।१६।१२,१३)

समीक्षा—कहिये पाठक गण ! है न गप्प नम्बर एक नाखून था या बिजली का पावर हाउस जिसके समक्ष करोड़ों चांद सूरज भी शरमा गये। यदि यह नाखून का टुकड़ा शहर में रख दिया जाये तो बिजली की ग्रावश्यकता ही न पड़े। इस गपोड़े को देख कर मुझे एक कवि की पंक्तियां याद ग्रा जाती हैं—

जो बात की खुदा की कसम लाजवाब की।
"नाखून" में किरण लगाई ग्राफताब की॥

"सम्वत १९१७ वसन्त पंचमी के दिन मुताबिक जनवरी सन् १८६१ ई० के मुताफिक ग्रर्जी ग्रौर प्रार्थना बाजे सतसंगी ग्रौर सतसंगिनों के जो जियादे एक बरस से वास्ते जारी फर्माने ग्राम सतसंग के हठ करके खिदमत में ग्रर्ज कर रहे थे ग्रपने मकान पर बयान

संतमत और उसका उपदेश परमारथी लोगों को फर्माना शुरू किया और यह **सत्संग १७ वर्ष तक बराबर रात दिन जारी रहा।**"

(सार वचन भूमिका पृष्ठ ३)

समीक्षा—है न मजेदार गप्प! १७ वर्ष तक रात दिन निरन्तर सत्संग होता रहा और राधास्वामियों को छोड़ कर किसी भी इतिहास लेखक ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया।

सार वचन हिदायत नामा तो सारा ही गप्प है। इस लघु पुस्तिका में सब को उद्धृत करना तो सम्भव नहीं अतः उसके कुछ प्रमुख भाग प्रस्तुत करता हूँ—

"बहुत से मजहब इसी मुकाम (पहले स्थान) को पाकर और इसी को मालिक कुल गरदान कर धोखा खा गये और नूर और तज्ली इस जगह की देखकर तृप्त हो गये...मुरशिद आगे का उनको न मिला, जो मुरशिद मिलता तो आगे का रास्ता खुलता, सो इस से आगे का हाल सुनो।...उस नाक को पार करके दूसरे आसमान पर सुरत पहुंची उस आसमान पर एक मुकाम त्रिकुटी...है लाख जोजन वसीअ और लाख जोजन तवील है उसमें...आवाज ओं ओं और हू हू और बादल की सी गर्ज बहुत सुहावनी आठ पहर होती रहती है।...करोड़ जोजन ऊपर चढ़कर तीसरा परदा फोड़कर (रूह) सुन्न में पहुंची।...रौनक और जेबाइश उस मुकाम की क्या कहूँ हीरों के चबूतरे पन्नों की क्यारियां जवाहिरात के पौदे लाल और चुन्नियां जड़े हुए नमूदार हो रहे हैं मछलियां मुरस्सा उन तालाबों में तैर रही हैं।...चलते चलते पाँच अरब पछत्तर करोड़ जोजन ऊंची गई आलमिहायत का नाका तोड़ा और उस आलम की सैर की उस मुकाम का बयान क्या करूं दस नील जोजन तक जुल्मात याने अन्धेरा है...खरब योजन तक रूह नीचे उतर गई और थाह उनकी हाथ न लगी। आगे मैदान महासुन्न का है...उस मुकाम को छोड़ कर (रूह) आलिम हूतल्हूत में पहुँची कि जिस को हिन्दी में भंवर-गुफा कहते हैं कि वहां—आवाज सोहं सोहं...सदा उठ रही है।...यह लीला देखती हुई रूह याने सुरत सत्तलोक में दाखिल हुई और सत्यपुरुष का दर्शन पाया। अब सत्यपुरुष के स्वरूप का वर्णन करता हूँ कि एक रोम उन का इस कदर मुनव्वर है कि करोड़ों सूरज और चांद शरमिंदा हैं...एक पद्म पालंग घेर सत्तलोक का है और पालंग की शुमार यह है कि यह त्रिलोकी एक पालंग

है...इस मुक़ाम का भी विलास देखकर रूह...अलख लोक में पहुँची अलख पुरुष का दर्शन पाया एक संख का घेर उस लोक का है और अरब खरब सूरजों का उजाला एक एक रोम में अलख पुरुष के है।... फिर वहां से ऊपर को चली अगम लोक को पाया कि जिसका घेर महासंख पालंग का है और करोड़ संख की काया अगम पुरुष की है... इस से आगे राधास्वामी याने अनामी पुरुष का दीदार किया और उसमें समाई वह बेईन्तिहा और बेशुमार और बेअन्त है।"

(सार वचन छन्द पृष्ठ ३८९ से ४००)

समीक्षा—पाठकगण इस गप्प की समालोचना के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। समझ में नहीं आता कि मनुष्य के सिर में करोड़ों मील लम्बे चौड़े स्थान कहां हैं ? हां इस वर्णन से यह अवश्य सिद्ध होता है कि शिवदयाल सिंह साहित्यचोर भी थे। बड़ा बनने की धुन में इसलामी हदीस से मिअराज की रात की सैर वाली बात चुराकर उसे अपनी सैर बताया गया है।

"वेद में अस्सी हजार कर्मकाण्ड के श्लोक हैं, यह प्रवृत्ति है और सोलह हजार उपासनाकाण्ड और सिर्फ चार हजार निवृत्ति यानी ज्ञानकाण्ड के श्लोक हैं।" (सार वचन वार्तिक भाग १ धारा ६८)

समीक्षा—राधा स्वामियों ! वेद में श्लोक नहीं मन्त्र हैं तथा चारों वेदों में लगभग २० सहस्र मन्त्र हैं। विचारे शिवदयाल ने वेदों को तो कभी देखा नहीं, विद्या के पास बैठे नहीं गुरु के पास पढ़े नहीं जो मुंह में आया कह डाला। यदि किसी राधास्वामी के अनुयायी में दम खम है तो इस गप्प को सत्य सिद्ध करके दिखाये।

"हुजूर महाराज साहब एक रोज तीन चार बजे सिपहर के अपने अन्दर के कमरे से बीच के कमरे में तशरीफ लाये और साधुवान और सत्संगियों से जो करीब बीस पच्चीस के करीब मौजूद थे फरमाया कि सब लोग कहते हैं कि सन्त और साध मिल जावें तो हम पकड़ लें हम न साध हैं और न सन्त हैं अल्वतः पूरे गुरु से मिले हैं तुम सब को इजाजत देते हैं कि हमारा हाथ पैर कपड़ा या जो चीज तुम्हारे हाथ में आवे बिला लिहाज अदब व खौफ किसी किस्म के पकड़ लेना यह फरमा कर उन लोगों के दर्मियान में जो कमरे में मौजूद थे इधर से उधर और उधर से इधर बराबर घूमते रहे और घूमते हुए कोठड़ी के दरवाजे में खड़े होकर फरमाया कि देखो जब हमारी देह को ही तुम लोग बावजूद कोशिश के न पकड़ सके तो सन्त सतगुरु को कैसे पकड़ सकते हो। (जीवन चरित्र सालगराम धारा ६७)

समीक्षा—क्या यह घटना सच्च है ? अब भी तो राधास्वामी के चेले सन्त रूप में विद्यमान हैं यदि उनमें कोई ऐसी शक्ति है तो दिखलावें।

विमल दास का शरीर छूट गया सूचना मिलने पर "हुजूर महाराज साहब ने फरमाया कि इन को ले चलने की तैयारी करो जब तक समाध पर दो शब्द का पाठ करालेते हैं और पाठ हो जाने पर सब साधू और सत्सङ्गी और सत्सङ्गिनों ने विमलदास की लाश को उठाया और हुजूर महाराज साहब भी उसके हमराह तशरीफ ले चले बाग से थोड़ी दूर चल कर विश्नो जी ने जो बुआ जी के नाम से मशहूर थी अर्ज किया कि विमल दास को साधुवान ने अशनान भी नहीं कराया और खुद पानी लोटे में जो उनके हाथ में था पेश किया। हुजूर महाराज साहब ने चुल्लु में पानी लेकर तीन छींटे लाश मजकूर पर डाले फिर बुआ जी ने कहा कि मेरे और सत्संगियों के ऊपर भी एक छींटा डाल दीजिये इस पर हुजूर महाराज साहब ने दो चार छींटें तो अपने दस्त मुबारक से ही डाले और फिर एक टुकड़ा बादल का फौरन नमूदार हुआ कि इधर तो हुजूर महाराज साहब और कुल सतसंगी और सतसंगिनों को बाग तक लौटने में और उधर लाश और कुल साधुओं को राधाबाग पहुँचने में मय कपड़ों के पूरा स्नान करा दिया और फिर फौरन वह टुकड़ा बादल का गायब हो गया वक्त पानी बरसने के हुजूर महाराज साहब पर लोग छाता लगाने लगे मगर हुजूर महाराज साहब ने मना कर दिया—अचरजी लीला यह थी कि वह बारिश सिर्फ उतनी ही जगह में थी और कहीं नहीं।" (जीवन चरित्र सालिग राम धारा ८०)

समीक्षा—यह गुरुडम फैलाने के लिये गप्प लगाई गई है। यदि वर्षा कराना राधास्वामियों के हाथ में है तो अब क्यों नहीं कराते। और वह छाता क्या वहां जादू के जोर से आ गया था। इस छाते वाली बात ने तो इसे स्वयं ही गपोड़ा बना दिया।

"हुजूर महाराज साहब के दर्शन और सतसंग के वास्ते बाहर से सतसंगी आते और हुजूर महाराज साहब की अपार दया व लीला देख कर व सतसंग का विलास और आनन्द पाकर प्रेम में भर जाते थे यहां तक कि तातील खतम हो गई और वक्त रवानगी रेल का भी हो गया...अक्सर ऐसा हुआ है कि वक्त रवानगी रेल का खतम हो गया है और पाव घण्टा आधा घण्टा बल्कि एक घण्टा

गुजर गया है और जब वे लोग जबरदस्ती रवाना किये गये हैं तो इस कदर देर होने पर भी दया और मेहर के उस रोज गाड़ी भी लेट हो जाती थी और वे लोग उसमें सवार होकर रवाना हो जाते थे।" (जीवन चरित्र सालिग० धारा ८२)

समीक्षा—क्या रेल के साथ कोई कनैक्शन जुड़ा होता था कि रेल भी ठीक उतनी ही देर लेट होती थी। अब भी तो राधा स्वामियों के गुरु विद्यमान हैं। इन्हें चाहिये कि भारतवर्ष की सारी मोटरों, रेलों और वायुयानों को चलाने का ठेका स्वयं ले लें। इस प्रकार जो रुपया ड्राइवर आदि को दिया जाता है उसकी बचत होकर देश का कल्याण होगा।

इनके कुछ और गपोड़ें हैं—

"हुजूर महाराज़ साहिब (सालिग राम जी) अठारह महीने बाद माता जी महारानी के गर्भ से बाहर आये।"

(जीवन चरित्र धारा २)

समीक्षा—यह गपोड़ा केवल गुरु का महत्व बढ़ाने के लिये घड़ा गया है। परन्तु इस से महत्व बढ़ता नहीं घटता है। आयुर्वेद में ऐसे गर्भ को मूढ़ गर्भ कहते हैं। तो क्या सालिगराम जी भी ऐसे ही थे।

"जब आप वचन फरमाते थे तो दस दस घण्टे शेर की तरह दहाड़ा करते थे हालांकि बीस बीस वर्ष तक सिर्फ एक छटांक आहार करते थे।" (जी० स्वामी जी महाराज धारा ३१)

समीक्षा—इससे बढ़कर गप्प और क्या होगी। यहां तो पाठकों की जानकारी के लिये कुछ गपोड़े दिये गये हैं। यदि सब गपोड़ों को लिखा जाये तो एक पृथक् पुस्तक बन जाये।

राधा स्वामी मत और विद्या

आर्य समाज का एक नियम है "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।" परन्तु राधास्वामी ठीक इससे उल्टी बात कहते है। वे विद्या को समाप्त कर अविद्या को फैलाना चाहते हैं क्योंकि विद्वान् तो इस जाल में फंस नहीं सकते। जितने अधिक लोग मूर्ख होंगे उतना ही इनका दम्भ, पाखण्ड और गुरुडम अधिक फैलेगा अतः इन के ग्रन्थों में विद्या पढ़ने की खूब निन्दा की गई है। लीजिये आप भी अवलोकन कीजिये—

सब विद्या और करमा धरमा। दूर बहाओ ये सब भरमा॥

(सार० २०।१।१३६)

बुधि और विद्या दोनों हारें । सन्त मते पर सिर धुन मारें ॥
(सार० २०।१।१४५)

विद्यावान रहे सब मूरख । अन्तरी भेद को न जानें कुछ ॥
(सार० ३१।३।१५)

हे विद्या तू बड़ी अबिद्या । संतन की तें कदर न जानी ॥३
विद्या पढ़ पढ़ बहुत पचे हैं । प्रेम बिना कुछ हाथ न आनी ॥७
ताते विद्या सभी भुलाओ । संत सरन पकड़ो अब आनी ॥२७
सन्त न विद्या पढ़ते कोई । उन के अनुभव समुंद समानी ॥३०
(सार वचन छन्द २४।३)

समीक्षा—विद्यावान को मूर्ख कहना सफेद झूठ बोलना है। यदि विद्या अविद्या है तो राधास्वामी, अपने बच्चों को स्कूल में क्यों भेजते हैं। सन्त कोई विद्या नहीं पढ़ते और उनके अनुभव समुद्र के समान होते हैं यह भी मिथ्या है। क्या सृष्टि क्रम विरुद्ध गप्पे हांकना, चेले और चेलियों को थूक चटाना, उन्हें अपनी गोद में बिठाना, उनके मुख में कुल्ला करना ये ही अनुभव की बातें हैं ? लोग हमारे जाल में फंसते रहें इसलिये लिख दिया कि विद्या बुद्धि और तर्क से काम न लें। और देखिये—

कर विचार उन धोखा खाया । बून्द मांहि यह जाय समाया ॥५६॥
करें दलील बुद्धि से भारी । हंसी उड़ावें बचन न धारी ॥५६॥
विद्या पढ़ जो करें विचार । बून्द भेद भी मिला न सार ॥६४॥
(सार वचन २६।१)

समीक्षा—संसार के सारे मत विचार पूर्वक कार्य करने की शिक्षा देते हैं। मनुष्य का तो कहना ही क्या पशु पक्षी और की मकौड़े भी विचार पूर्वक कार्य करते हैं परन्तु राधा स्वामियों का बाबा आदम ही निराला है।

राधा स्वामी मत और गृहस्थ धर्म

गृहस्थ आश्रम संसार का विशालतम और श्रेष्ठतम आश्रम है। वेदों ने इसकी महिमा के गीत गाये हैं, योगियों और यतियों ने इसकी प्रशंसा की है। रामायण और महाभारत में इस की महानता का सुन्दर चित्रण है और मनु महाराज ने तो यह कहा है—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्व जन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥
(मनु० ३।७७)

अर्थात् जिस प्रकार संसार के सारे प्राणी वायु के आधार पर जीवित रहते हैं ठीक उसी प्रकार सारे आश्रम गृहस्थाश्रम के आधार पर जीवित रहते हैं।

इस आश्रम के सम्बन्ध में वेद आदि सत्य शास्त्रों में अत्यन्त उपयोगी नियम आदि दिये हुए हैं इसके विपरीत राधास्वामियों की पुस्तकों में स्त्री पुरुष के सम्बन्ध, सन्तानोत्पत्ति उस का पालन और रक्षण, माता पिता आदि के साथ सन्तान का व्यवहार आदि के सम्बन्ध में कोई शिक्षा नहीं है। हां संसार को झूंठा बता कर माता पिता आदि को ठग बताया गया है—

गुरु सम और नहीं को रक्षक । कुल कुटम्ब सब जानो तक्षक ॥
ताते गुरु को कभी न छोड़ो । कनक कामिनी से मन मोड़ो ॥

(सार वचन १८।४।१४,१५)

समीक्षा—शोक ! महा शोक !! जो परिवार परस्पर के सेवा और सहयोग से आनन्दधाम बन सकता है उसे यह मत काला नाग बता कर परिवार को नरक धाम बनाने का प्रयत्न कर रहा है।

जहां उपनिषद् ये आदेश देते हैं "मातृ देवो भव" "पितृ देवो भव" अर्थात् माता पिता की सेवा करो वहां राधास्वामी मत की भ्रष्ट शिक्षा भी देखिये—

मात पिता डर छोड़ गंवाओ। सुन प्यारे तू कर भक्ति ॥४॥
जोरू लड़के मत डर इन से। सुन प्यारे तू कर भक्ति ॥५॥
भाई भतीजों का डर मत कर। सुन प्यारे तू कर भक्ति ॥६॥
सास सुसर डर मन से छोड़ो। सुन प्यारे तू कर भक्ति ॥७॥
नातेदार कुटम्बी जितने । इन का डर तज कर भक्ति ॥१०॥
यह बिगाड़ कुछ करें न तेरा। क्यों झिझके तू कर भक्ति ॥१८॥

(सार वचन १२।२)

समीक्षा—पाठक स्वयं विचार कर लें कैसी भयंकर शिक्षा है क्या सन्तों का यही काम होता है कि पिता पुत्र, भाई भाई और सास वहुओं को आपस में लड़ायें। इन से भी अधिक भयंकरता और देखिये—

जग बिच्छू तिरिया है नागन। इन संग रहत मिलीत ॥

(सार० ३१।६।१५)

समीक्षा—कैसी भ्रष्ट शिक्षा है। संसार बिच्छू है स्त्री नागन है। इनके साथ मलिन व्यक्ति रहते हैं। ओ राधास्वामियों के सतसंग

में जाने वाली देवियो ! तनिक तो विचार करो ये लोग आप को काले नाग बताते हैं और आप श्रद्धा पूर्वक इनके सतसंग में जाती हैं।

"और मालूम होवे कि माता पिता सुत स्त्री और संसारी जीवों का संग, कुसंग में दाखिल होता है क्योंकि इन के संग से न सतगुरु की सरन ली जावेगी और न नाम मिलेगा और न साधसंग बन सके।" (सार वचन वार्तिक भाग २ धारा २४७)

समीक्षा—गुरु जी अन्य स्त्रियों को नाग बताते हैं उसके संग रहने से सतसंग भी नहीं बनता परन्तु अपनी स्त्री को आप नाग नहीं समझते। उस की आरती उतरवाते हैं, उसके गले में हार डलवाते हैं और भोग लगवाते हैं। यह है गुरु साहब की करनी और कथनी। ठीक है हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और।

गृहस्थाश्रम जेष्ठ और श्रेष्ठ है। संसार बिच्छू नहीं कर्मक्षेत्र है। नारी नाग नहीं देवी है हां नारी को नाग कहने वाले अवश्य ही पिशाच हैं। गृहस्थाश्रम निन्दनीय नहीं स्तुति करने योग्य है हां जो गृहस्थ की निन्दा करते हैं वे अवश्य निन्दनीय हैं।

राधास्वामी मत और गुरुडम

इस मत का सब से बड़ा दोष है गुरुडम का दम्भ, ढोंग और पाखण्ड। कुछ उद्धरण देखिये—

एक जन्म गुरु भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निजधाम॥
(सार० ८।१।६८)

समीक्षा—क्या बढ़िया चाल चली है? एक जन्म में भक्ति करा कर आनन्द लूट लिया अगले जन्म में शिष्य को तो पूछने आना नहीं है।

गुरु को तुम मानुष मत जानो। वे हैं सत्त पुरुष की जान।
(सार वचन १८।१२।३)

यह गुरु महात्म्य एक स्थान पर नहीं आदि से अन्त तक इसका जाल बिछा हुआ है।

बिन गुरु और न पूजो कोई सार० १६।१।१७

गुरु पूजा में सब की पूजा। जस समुद्र सब नदी समाजा॥
सार० १६।१।१८

समीक्षा—कितनी बड़ी मनुष्य पूजा है। ईश्वर के स्थान पर अपनी पूजा कराना गुरुडम नहीं तो और क्या है ?

और भयंकर शब्द देखिये—

गुरु को देवें दोष लगाई। फिर-फिर चौरासी भरमाई
(सार० ११।१।१२)

गुरु सहायता यहां वहां करें। उन से कर्ता भी कुछ डरे॥
(सार० १६।१।५६)

गुरु की कर हरदम पूजा। गुरु समान कोई देव न दूजा॥
(सार०१८।२।१)

समीक्षा—गुरुडम का महात्म्य तो प्रकट हो गया परन्तु राधा-स्वामी कुल्ल मालिक था और उसने हजारों ब्रह्मा और ईश्वर पैदा किये यह बात झूठी हो गई, और स्वयं ने ही झूठा सिद्ध कर दिया।

स्त्रियों को अपने गुरुडम के जाल में फंसाये रखने के लिये उन्हें गुरु सेवा की कैसी भ्रष्ट शिक्षा दी जाती है उसका भी अवलोकन कीजिये—

चरन दबावे पंखा फेरे। चक्की पीसे पानी भरे ॥२०॥
मोरी धो झाड़ू को धोवे। खोद खदाना मिट्टी लावे॥२१॥
हाथ धुला दातन करवावे। काट पेड़ से दातन लावे॥२२॥
बटना मल अशनान करावे। अंग पौंछ धोती पहनावे॥२३॥
धोती धोय अंगोछा धोवे। कंघा करे बाल बल खोवे॥२४॥
वस्त्र पहिनावे तिलक लगावे। करे रसोई भोग धरावे॥२५॥
जल अचवावे हुक्का भरे। पलंग बिछावे बिनती करे॥२६॥
पीक दान ले पीक करावे। फिर सब पीक आप पी जावे॥२७॥
नाना विधि की सेवा करे। ऊंच नीच जो जो आ पड़े॥२८॥
कोई टहल में आर न लावे। जो गुरु कहें सो कर कमावे॥२९॥
(सारवचन छन्द १२।१)

समीक्षा—परस्त्रियों से चरण दबाना किस ग्रन्थ में लिखा है ? स्नान करा कर गुरु को धोती पहनाने की शिक्षा देना क्या शर्म की बात नहीं है। पीक कराकर पी जाने से ही क्या भक्ति होती है ? गुरु जो कुछ नीच ऊंच सेवा के लिये कहें वही करना क्या इसकी आड़ में व्यभिचार नहीं होता ?

फिर इस सेवा का महात्म्य भी कैसा लिखा है—

कुल्ली दई स्वामी कुल मेरा उधरा।
जन्म सुफल और तन मन सुधरा॥६॥

सीत प्रसाद सभी मिल लीन्हा ।
जन्म जन्म के पातक छीना ॥१६॥ (४१।१)

ग्रास दिया परसादी का जब ही । घट के परदे खुल गये तब ही ॥
(सार वचन ४१।३।५)

समीक्षा—मनु जी महाराज का आदेश हैं कि अपना झूंठा किसी को नहीं देना चाहिये। सभी डाक्टर वैद्य और हकीम उच्छिष्ट भोजन को बुरा समझते हैं परन्तु राधास्वामी झूंठा खाने से, मुख में कुल्ला कराने से जीवन को सफल मानते हैं और कुल का उद्धार जानते हैं इससे बढ़कर मूर्खता और क्या होगी ? स्त्रियां और पुरुष इनका थूक चाटते रहें अतः इसकी कैसी प्रशंसा लिखी है—

"हुजूर महाराज साहब के चरणामृत परशादी व मुख अमृत आम तौर से सतसंगी व साधु लेकर ग्रहण करते थे जिससे मन की सफाई व सुरत के सिमटाव और चढ़ाई का फायदा उनको हासिल होता था और यही बस नहीं बल्कि अक्सर बीमारियों और जमाने में जिन गैर सतसंगियों ने भी इनका स्तैमाल किया शफायाब हुए और महफूज रहे।" (जो० सालिगराम धारा ८७)

परन्तु झूठ के पैर कहां ? एक कवि ने ठीक ही कहा है—

सदाकत छिप नहीं सकती कभी झूठे असूलों से ।
कि खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज के फूलों से ॥

इस सिद्धान्त के अनुसार "जुगत प्रकाश" में इनके मुख से सत्य बात प्रकट हो गई—

"और डाक्टर या हकीम या वैद्य की दवा भी राधास्वामी दयाल की मेहर और दया के आसरे करे। इससे भी बीमारी की तकलीफ दूर होगी या कम होती जायेगी।" (जुगत प्रकाश पृष्ठ ३६)

यदि थूक से ही बीमारियां ठीक हो जाती हैं तो दवा करना मूर्खता है। यहां स्वयं शिवदयाल जी डाक्टर और वैद्यों से इलाज कराने के लिये कह रहे हैं अतः स्पष्ट है कि थूक से बीमारी दूर नहीं होती।

स्त्री चेलियों को जो शब्द पढ़ने वा गाने के लिये मिलते हैं वे कितने भयंकर हैं—

मैं नारी तुम पुरुष सुजानी। हे मेरे प्यारे राधास्वामी ॥४४॥
बिरह भाव में हुई दिवानी । देख मेरे प्यारे राधा स्वामी ॥४५॥
सन्तन साथ हुई सन्तानी । देख मेरे प्यारे राधा स्वामी ॥५३॥

यही नहीं सैकड़ों शब्दों में वियोग का बिछोड़ा, सीने की तड़प उठना, कटारी सी लगना, दीदार बिना कुछ अच्छा न लगना, चन्द चकोर, कमल भानु, कोकिल अम्ब, तरंग सिन्धु, कमान तीर, दीपक जोत, समुद्र सोत, धरनी मेघ, सीपी स्वांति, गुल बुलबुल, दीपक पतंगा, चुम्बक से लोहे का खिचे रहना, अङ्ग अङ्ग में प्रेम का रंग इत्यादि सारी उपमाएं काम वासना की उदीप्त करने वाली हैं।

इस से भी भयंकर शब्द देखिये—

राधास्वामी जिस पर महर करें री।
राधास्वामी उस को पकड़ धरें री॥ ३।५।१२

दुलहनी करो पिया का संग, तू बसे नई हर अंग ॥२०।२५।१
गुरु के साथ चलो उस नगरी, चढ़े प्रेम का रंग ॥२॥
यह जोबन तेरा उतर जायेगा, फिर तू होगी तंग ॥३॥
कैसि करूं कसक उठी भारी। मेरी लगी गुरु संग यारी ॥२७।३।१
वह तो ताड़ मार फटकारें मैं चरनन पर सीस चढ़ाऊं ॥२७।२।३

मेरी प्रीत लगी अब जिगरी। सार वचन ॥३७।८।२
मैं सतगुरु पै डालूंगी, तन मन को वार।
मैं चरनन पै कुरबान हूँ बार बार॥
(निज उपदेश भाग ८)

समीक्षा—कहां तो सीता माता का वह आदर्श कि वह रावण से बात करते समय अपने मुख में तिनका रख लेती है। और जब रावण उस से कहता है एक बार मेरी ओर देखो तो सीता जी कहती हैं मैं तुझे अपने वांये चरण से भी नहीं छू सकती और कहां यह भ्रष्ट शिक्षा।

पर स्त्रियों को गोद में बिठाना

मैं प्यारी प्यारे राधा स्वामी की। गुरु ने लीन्हा गोद बिठार॥ ३।१।६३
राधा स्वामी लीला कहूं छिपाय। लिया मोहि अपने अंग लगाय॥ ६।१०।११॥
लीन्हा मोहि भुजा पसारी। दीन्ही मोहि भक्ति करारी॥ ८।३।४॥
सतगुरु मोहि अङ्ग लगाया। सार वचन॥ ३७।६।२॥

किया राधा स्वामी मुझसे प्यार। हुई मैं उन पर अब बलिहार ॥ (३०।६।१३)

मेरी धड़के छिन छिन छाती ।३३।१२।२

बिरह अगिन मोहि नित्त जलाती ।३३।१२।३

मिले फिर राधा स्वामी यार। ३४।६।१२ (सार वचन)

समीक्षा—कहो राधास्वामियों ! क्या यह मत व्यभिचार करने के लिये ही चलाया था ? यदि तुम्हारी स्त्रियों को कोई अपनी गोद में बैठाये उन्हें अपनी भुजाओं में ले ले तो तुम्हें कैसा लगेगा।

चरणामृत पिलाना और अंगूठा चुसाना

समस्त प्राचीन आर्य शास्त्रों में स्त्री के लिये पति को ही उस का गुरु, देवता, आराध्यदेव, एवं सर्वस्व बताया गया है। चाणक्य जी ने भी कहा है—

पति रेव गुरु स्त्रीणाम् ॥ **(चाणक्य नीति ५।१)**

स्त्रियों के लिये पति ही गुरु है। स्त्रियों को अपने पति की ही सेवा सुश्रुषा करनी चाहिये परन्तु राधास्वामी वैदिक संस्कृति को मिटाने पर तुले हुए हैं। राधास्वामी स्त्रियों को अपने परिवार और कुल कुटुम्ब को छोड़ने की शिक्षा देते हैं और अपनी पूजा कराते हैं। देखिये स्त्रियों को गाने के लिये कैसी वाणियां दी जाती हैं—

बिन गुरु कोई और न मानूं। बिन नाम ठौर नहीं जानूं ॥ (सार० ८।३।६)

जहां नारियों को अपने पति को प्राणधार कहना चाहिये वहां राधास्वामी यह कहलाते हैं—

गुरु तो मेरे प्राण अधारा। गुरु ही मेरा करें उधारा ॥८।३।६

वृद्ध चाणक्य महाराज ने नारियों को उपदेश देते हुए कहा—

न दानै शुध्यते नारी उपवास शतैरपि ।
न तीर्थ सेवयातद्वद्भर्तुः पादोककैय्यथा ॥
(चाणक्य नीति १७।१०)

स्त्री दान करने से, सैकड़ों उपवास करने से और तीर्थों में भ्रमण करने से उतनी शुद्ध और पवित्र नहीं होती जितनी अपने पति के चरणामृत का सेवन करने से। परन्तु राधास्वामियों का उपदेश है—

राधा स्वामी गुरु हम पाये। पी चरण अबुं तृप्ताये (सार० ८।३।१५॥)

इतने पर भी बस नहीं है यहां तो अवस्था इस से भी भयंकर है। शिवदयाल सिंह जी अपनी चेलियों को अपना अंगूठा भी चुसाया करते थे—

"जब स्वामी जी हुक्का पीते थे तो बुक्को जी उनके चरण का अंगूठा मुंह में लेकर घण्टों चूसती रहती थी और जब कोई मत्था टेकने आता तो चरण नहीं छोड़ती थीं तब उन को कह दिया जाता था कि तुम दूसरे चरण पर मत्था टेक लो, इस प्यासी को मत हटाओ। और वह कहती थी कि मुझको इस में दूध का सा रस आता है।" (जी० स्वामी० धारा ६५)

समीक्षा—क्या परनारियों के सतीत्व को नष्ट करने के लिये, उन के मुख में कुल्ला करने के लिये उन्हें अपना पीक चटाने के लिये और उनसे अपना अंगूठा चुसवाने के लिये ही यह मत चलाया था ? क्या ऐसे भ्रष्ट मत का ही नाम सन्त मत है ? अपना अंगूठा चुसवाने में शिव दयाल सिंह को भी खूब आनन्द आता था यदि आनन्द नहीं आता तो यूं क्यों कहते कि प्यासी को मत हटाओ। बुक्को का यह कहना कि उसको अंगूठे में दूध का सा स्वाद आता था, भी एक नम्बर की गप्प है। वह पांव का अंगूठा था या हथनी का थन ? क्या अब भी किसी राधास्वामी के पैर से दूध निकल सकता है। राधास्वामियो ! बहुत हो चुका। अब तो अपने पाखण्ड को छोड़ो।

माताओ और बहनो ! सावधान ! इस पाखण्ड से बचो। पर पुरुषों की सेवा छोड़कर अपने पतियों की सेवा करो इसी में कल्याणहै।

उपसंहार

ऐसी भ्रष्ट, गन्दी, विज्ञान और सृष्टि विरुद्ध शिक्षाओं के होने पर भी इनकी पुस्तकों में लिखा है—

"और इस तरह पर आम मेल और आपस में मित्र भाव और सच्ची विरक्तता जीव की इस संसार में और सच्ची मोक्ष और उद्धार अन्त में सन्त मत अथवा राधास्वामी पंथ के उपदेश पर चलने और उसके मुआफिक यानी अनुसार अभ्यास करने से प्राप्त हो सकता है।" (प्रश्नोत्तर सन्त मत भूमिका)

पाठक गण ! आप ने ऊपर इन की कुशिक्षा का अवलोकन कर लिया, इस शिक्षा से जब गृहस्थ आश्रम ही नरक धाम बन जायेगा तब मोक्ष की प्राप्ति तो हो कैसे सकती है ? ओ राम और कृष्ण की सन्तानो क्या ! आप की धमनियों में राम कृष्ण का रक्त सूख गया है ? क्या आप अपनी आन, मान और मर्यादा को भूल चुके हैं ? क्या आपको अपनी संस्कृति और सभ्यता से प्यार नहीं है ?

[शेष पृष्ठ ३३३ पर]

श्री गोविन्दराम हासानन्द जी की पुण्य तिथी

[गत वर्ष शिवरात्रि के दिन श्री गोविन्दराम जी का देहावसान हो गया था उनकी पुण्य स्मृति में संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।]

श्री गोविन्दराम जी का जन्म संवत् १९४३ विक्रमी से शिकारपुर सिन्ध में एक साधारण स्थिति के वैष्णव-सम्प्रदायान्तर्गत बल्लभाचार्य मत के धर्मनिष्ठ, निरामिष भोजी परिवार में हुआ। इनके पूज्य पिता जी का नाम हासानन्द जी था जो कि प्रसिद्ध गोभक्त हो गये हैं तथा गोरक्षा आन्दोलन में बढ़ चढ़ कर कार्य करते रहे हैं।

भूलेश्वर म्यूनिसिपल प्राइमरी स्कूल में पंचम श्रेणी में पढ़ ही रहे थे कि इनके पिता जी ने सन् १८९९ ई० में कलकत्ते के लिए प्रस्थान किया। इस प्रकार इनका नियमपूर्वक विद्याध्ययन बन्द हो गया और ये व्यापार विद्या सीखने में लग गये।

कलकत्ते में आजीविका कार्य करते हुए कुछ मित्रों के संसर्ग से इनका आर्यसमाज की ओर झुकाव हो गया जो कि निरन्तर बढ़ता ही गया। उनके पिता उन्हें देखते थे, तब तुरन्त ही डांट फटकार करने लगते थे। कई बार मारपीट भी सहन करनी पड़ जाती थी।

घर से निकाले जाने पर श्री गोविन्दराम जी अकेले रह गये और आजीविका के लिये बैंकों की दलाली का कार्य करते रहे। इसी बीच सिन्ध देश के ही एक आर्य समाजी सज्जन से जिनका नाम श्री गोकुलचन्द जी था, इनकी भेंट हो गई। उनको भी उनके पिता जी ने घर से निकाल दिया था। दोनों ने स्वदेशी की दुकान खोली। इन्होंने दुकान पर आर्य साहित्य को भी रखना तथा बेचना आरम्भ कर दिया। यहां तक कि दुकान के कैशमेमो की पीठ पर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश के विज्ञापन बंगला भाषा में छपवा दिया करते थे जिन से बंगाली महानुभावों में आर्यसमाज की चर्चा होती रहती थी तथा इन ग्रन्थों का प्रचार होता था।

श्री गोविन्दराम जी आर्यसमाज कार्नवालिस स्ट्रीट कलकत्ता के अनेक वर्षों से सभासद् थे। अपनी लगन तथा सेवा भाव से वे आर्य-

समाज में शीघ्र ही लोकप्रिय हो गए तथा कई वर्ष तक आर्यसमाज के मंत्री तथा पुस्तकाध्यक्ष के रूप में बढ़ चढ़ कर सेवा करते रहे। समाज का कार्य करते हुए इन्होंने अनुभव किया कि मौखिक प्रचार के अतिरिक्त आर्य साहित्य द्वारा प्रचार होना आवश्यक है। आर्य बन्धुओं की धार्मिक भावनाओं की पुष्टि के लिए इन्होंने वेद मंत्रों, शास्त्र वाक्यों, नमस्ते, स्वागतम् इत्यादि के सुन्दर मोटोज छपवा कर तैयार कराये। महर्षि दयानंद, श्री स्वामी श्रद्धानन्द तथा अन्य आर्य नेताओं के बड़े चित्र प्रकाशित करने का सबसे अधिक तथा सब से प्रथम श्रेय इन्हीं को है।

१९२५ ई० में श्रीमद्दयानन्दजन्मशताब्दि महोत्सव के मथुरा में मनाये जाने के शुभ समाचार आर्य जगत् में फैल गये। इनके मन में अपने आचार्य ऋषि दयानन्द के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' का सस्ता संस्करण तैयार करने की धुन सवार हुई। पास पैसे की कमी होते हुए भी यह कार्य शुरू किया और वैदिक यन्त्रालय से मिलने वाले २।।) के सत्यार्थ प्रकाश का मूल्य लागत मात्र १) रख कर सारे आर्य जगत् में विख्यात हुए। वैदिक यंत्रालय ने भी फिर सत्यार्थ प्रकाश का मूल्य घटादिया। प्रकाशन क्षेत्र में वे सत्यार्थ प्रकाश छाप कर उतर चुके थे उसी समय दयानन्द चित्रावलि छापी तथा पूर्णरूप से इस में आये। कलकत्ते से कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये।

सन् १९३९ में श्री गोविन्दराम जी ने आर्य समाज के अधिक विस्तृत कार्य क्षेत्र में उतरने के लिये कलकत्ता छोड़ कर देहली आना श्रेयस्कर समझा और वे मृत्यु पर्यन्त देहली में ही कार्य करते रहे।

पुस्तकों के व्यवसाय में लगे रहने पर भी श्री गोविन्दराम जी व्यापार तथा व्यवहार में शुद्धता तथा ईमानदारी का बड़ा ध्यान रखते थे।

श्री गोविन्दराम जी की साहित्य में बड़ी निष्ठा थी। परन्तु अपनी स्वल्प पूंजी से वे संतुष्ट न थे। कभी तो उन्होंने गीता प्रेस गोरखपुर जैसी विशाल संस्था खड़ी करने की सोची तो कभी साहित्य प्रकाशन की पंचवर्षीय योजना ही बना डाली। ये सब योजनायें बिना धन के सम्पन्न नहीं हो सकती थी। इसलिए उनका ध्यान आर्य समाज की विभिन्न सभा—संस्थाओं की ओर बार २ जाता था। वे सभा के अधिकारियों को समय २ पत्र लिख कर ध्यान आकर्षित करते रहते थे।

परोपकारिणी सभा ने उन्हें मीटिंग में आमन्त्रित कर उनके विचार विस्तारपूर्वक जानने चाहे। श्री गोविन्दराम जी ने स्पष्ट

शब्दों में कह दिया कि 'जितने साधन परोपकारिणी सभा के पास उपस्थित हैं उतने और किसी भी आर्य संस्था के पास नहीं हैं। यदि वैदिक यन्त्रालय का कार्य तीन वर्ष के लिये मुझे सौंप दिया जावे तो मैं सारी योजना पूर्ण करा सकता हूँ। उन्होंने वहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया कि मैं यह कार्य बिना कुछ लिए ही स्वान्तःसुखाय करूंगा।

परोपकारिणी सभा में टंकारा ट्रस्ट के मन्त्री श्री पं० आनन्द प्रिय जी भी बैठे सब बातें सुन रहे थे। मीटिंग समाप्त होते ही उन्होंने श्री गोविन्दराम जी से कहा कि आप टंकारा आ जायें। आपकी इच्छा के अनुसार प्रकाशन सम्बन्धी सब साधन जुटा दिये जायेंगे। श्री आनन्द प्रिय जी का प्रोत्साहन पाकर श्री गोविन्दराम जी टंकारा की ओर विशेष आकृष्ट हो गये।

सन् १९५२ में श्री गोविन्दराम जी ने गीता प्रेस गोरखपुर के "कल्याण" के ढंग पर अपने स्वल्प व सीमित साधनों के अनुरूप वैदिक धर्म तथा वैदिक सिद्धान्तों का पोषक मासिक-पत्र "वेद प्रकाश" निकालना आरम्भ किया।

श्री गोविन्दराम जी क्रियात्मक समाज सुधार के पक्षपाती थे। इन्होंने अपनी तीनों कन्याओं के विवाह जात पांत तोड़ कर योग्य वरों के साथ किये।

ऋषि दयानन्द का भक्त, आर्य समाज का दीवाना तथा आर्य साहित्य प्रसार के लिए तन, मन, धन, न्यौछावर करने वाला यह आर्य वीर २५ फरवरी १९६० को ऋषिबोधोत्सव के ऐतिहासिक दिन ब्राह्ममुहूर्त में चिरनिन्द्रा में सो गया।

श्री गोविन्दराम जी ने विभिन्न विषयों पर आर्य साहित्य प्रकाशन कर वैदिक धर्म के प्रचार तथा प्रसार में महत्वपूर्ण योग दिया है जिसके लिए आर्य जगत् उनकी सदा प्रशंसा करता रहेगा।

[शेष ३३० वें पृष्ठ का]

ऋषियों और महर्षियों की सन्तानों! क्यों मूर्खों का थूक चाटते फिरते हो? यदि आप अपने परिवारों को मंगलमय बनना चाहते हैं, वहां सुख और शान्ति का साम्राज्य देखना चाहते हैं और मरने के पश्चात् मोक्ष धाम को प्राप्त करना चाहते हैं तो आओ वैदिक धर्म की ओर लौटो और वेद मार्ग पर चलो। बस अन्त में महर्षि दयानन्द के स्वर में स्वर मिला कर मैं यही कहूंगा—

"भला अब लों जो हुआ सो हुआ अब तो अपनी मिथ्या प्रपंच आदि बुराइयों को छोड़ो और सुन्दर ईश्वरोक्त वेदविहित सुपथ में आकर अपने मनुष्य रूपी जन्म को सफल कर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चतुष्टय फलों को प्राप्त होकर आनन्द भोगो।"

(सत्यार्थ प्रकाश ११ वां समुल्लास)

❀ निम्न पुस्तकों पर विशेष रियायत ❀

श्री गोविन्दराम हासानन्द जी की पहली पुण्य तिथी (१३ फरवरी १९६१ से २८ फरवरी १९६१) के उपलक्ष में निम्न पुस्तकों पर १) से १९) तक पुस्तकें मंगाने पर =) रुपया, २०) से ५०) तक की पुस्तकें मंगाने पर ≡) रुपये की छूट दी जावेगी ५०) के आर्डर तक डाक, रेल खर्च ग्राहक के जिम्मे होगा। ५०) से अधिक के आर्डर पर रेल खर्च हम देगें। आर्डर के साथ ५) अगाऊ आना आवश्यक है।

तत्वज्ञान	आनन्द स्वामी	३)
प्रभुदर्शन	,,	२) ५०
प्रभुभक्ति	,,	१) ५०
आनन्द गायत्री कथा	,,	) ७०
एक ही रास्ता	,,	) ८०
शंकर और दयानन्द	,,	) ५०
भगवत् क़था	,,	) ६२
भक्त और भगवान	,,	१)
मानव जीवन गाथा	,,	१)
उपनिषदों का सन्देश (नई पुस्तक)	,,	१) २५
उपनिषदार्यभाष्य	आर्यमुनि महामहोपाध्याय	६)
ईश-उपनिषद	,,	।=)
केन	,,	।≡)
कठ	,,	१।)
प्रश्न	,,	।।।)
मुण्डक	,,	।।=)
माण्डूक्य	,,	।–)
एतरेय	,,	।।)
तैत्तिरीय	,,	१।)
❀ वाल्मीकि रामायण	प्रेमचन्द बिद्याभास्कर	१२)
❀ बृहदारण्यक कथामाला	स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक	३)
❀ सृष्टि का इतिहास	आर्य पथिक पं० लेखराम	२)
गुरुदत्त लेखावलि	पं० गुरुदत्त विद्यार्थी	२)
महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत	मास्टर आत्माराम अमृतसरी	२)
बहिनों की बातें	साहित्य वाचस्पति पं० सिद्धगोपाल	१) २५

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	२) ५०
,, ,, उत्तरार्द्ध	,, ,,	२) ५०
वैदिक गृहस्थाश्रम	पं० विश्वनाथ विद्यालंकार	५)
❀ ऋषि गाथा महा काव्य	विमलचन्द्र विमलेश	४)
स्वाध्याय संग्रह	स्वामी वेदानन्द तीर्थ	२)
वेद परिचय	,, ,,	) ३७
महर्षि दयानन्द	पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति	२)
आर्य समाज का इतिहास	पं० हरिश्चन्द्र विद्यावाचस्पति	१) ३७
❀ सचित्र योगासन	पं० गणेशदत्त इन्द्र विद्यावाचस्पति	१) ५०
दयानन्द चित्रावली	पं० रामगोपाल विद्यालङ्कार	२) ५०
❀ आर्ष योग प्रदीपिका	स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक	३) ५०
❀ स्त्रियों का स्वास्थ्य रोग	अत्रिदेव गुप्त भिषगारत्न	३)
विवाह और विवाहित जीवन	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	२) ५०
प्रार्थना प्रदीप	प्रि० नित्यानन्द वेदालङ्कार	) ५०
आर्य समाज क्या है ?	महात्मा नारायण स्वामी	) ७५
आर्य सिद्धान्तदीप	पं० मदन मोहन विद्यासागर	१) २५
❀ गीत श्रद्धाञ्जलि (भजन)	पं० रामवतार	१)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	महर्षि दयानन्द सरस्वती	४) ५०
आत्म कथा	,, ,,	) ४०
स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश	,, ,,	) ६
वेदान्ति ध्वान्तनिवारण	,, ,,	) १६
वेद विरुद्ध मत खण्डन	,, ,,	) ३७
शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण	,, ,,	) ३७
आर्याभिविनय	,, ,,	) ५०
ऋग्वेदभाष्य का प्रथम सूक्त	,, ,,	) २५
आर्योद्देश्यरत्न माला	,, ,,	) १०
भ्रान्ति निवारण	,, ,,	) ३७
व्यवहार भानु	,, ,,	) २५
भ्रमोच्छेदन	,, ,,	) २५
गोकरुणा निधि	,, ,,	) ६
गृहस्थाश्रम	,, ,,	) ६२
काशी शास्त्रार्थ	,, ,,	) २०
सत्य धर्म विचार	,, ,,	) २५

आर्यसमाज के नियमोपनियम	महर्षि दयानन्द सरस्वती	)१२
ईशोपनिषद्	” ”	)२५
बाल शिक्षक	” ”	)३७
संस्कार विधि		१)२५
महिला पुष्पाञ्जलि	रामावतार	)५०
ॐ सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१)
सत्यार्थप्रकाश शंकासमाधान	पं० लोकनाथ शास्त्रार्थ महारथी	)२[illegible]
स्वामी दयानन्द और वेद	श्री अरविन्द घोष	)२५
विश्व विज्ञान परमात्म-बोध	स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक	)१६
माँस मदिरा निषेध	स्वामी स्वतन्त्रतानन्द	)१६
गायत्री व्याख्या	पं० मदनमोहन	)२५
नास्तिकवाद	पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री	)५०
वेदों का महत्व	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	।)
ईश्वर प्राप्ति	” ”	≡)
ईश्वर विचार	” ”	–)
जीवात्मा	” ”	=)
वेदों की आवश्यकता	” ”	–)
वेद किस पर प्रकट हुए	” ”	–)
बाल शिक्षा	” ”	–)॥
कर्म व्यवस्था	” ”	–)
धर्म शिक्षा	” ”	–)॥
वर्ण व्यवस्था	” ”	–)
पितृश्राद्ध विचार	” ”	–)
स्वामी दयानन्द का उद्देश्य	” ”	–)
स्वामी दयानन्द का लक्ष्य	” ”	–)

बालोपयोगी पुस्तकें

महर्षि दयानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	)५६
स्वामी श्रद्धानन्द	” ”	)३७
गुरु विरजानन्द	” ”	)५०
महात्मा हंसराज	” ”	)३७
स्वामी वेदानन्द	जगदीशचन्द्र विद्यार्थी	)२५
भगवान् कृष्ण	” ”	)३०

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
आदर्श सुधारक दयानन्द	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	) ६२
गुरुधाम एकांकी	चन्द्रनारायण सक्सेना	) ५०
आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या	स्वामी सत्यानन्द सरस्वती	) ५०
ब्रह्मचर्य जीवन	पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	) ३७
वैदिक धर्म शिक्षा	पं० शिवशर्मा	) २५
आर्य सत्संग गुटका		) ३१
वैदिक सत्संग		) २५
* गोरक्षा परम कर्त्तव्य	पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड	) ५०
सामाजिक पद्धतियां	पं० मदनजित् आर्य	) ३७

१९६० की नई पुस्तकें

उपनिषदों का सन्देश	आनन्दस्वामी	१) २५
सन्ध्या विनय	प्रि० नित्यानन्द	१)
पंच यज्ञ प्रकाशिका (सन्ध्या हवन शब्दार्थ सहित)		) ६५
यजुर्वेद संहिता (मूल) बड़ी साइज के २७५ पृष्ठ	पं. युधिष्ठिर मीमांसक	२) ५०
गुरुदत्त लेखावलि	पं० गुरुदत्त विद्यार्थी	२)
यजुर्वेद शतक		१)
सामवेद शतक		१)

धार्मिक चित्र फोटो आदि

महर्षि दयानन्द २०×३०, स्वामी श्रद्धानन्द, गुरुविरजानन्द, महात्मा हंसराज, पं० लेखराम, प्रत्येक का मूल्य १)

मोटोज साइज ११×१४ **प्रत्येक** ।)

ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मंत्र

छोटा साइज ७×१० **प्रत्येक** –)

स्वामी विरजानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, पं० लेखराम, पं० गुरुदत्त ।

*** मंत्रों के चित्र साइज ४॥×२२** **प्रत्येक** ।–)

सन्ध्या मन्त्र, आर्य समाज के नियम, यम नियम संगठन सूक्त ।

*** मन्त्रों के चित्र साइज११×१४॥** **प्रत्येक** ≡)

ऋग्वेद का प्रथम मंत्र, यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र, सामवेद का प्रथम मन्त्र दीर्घ जीवन का मन्त्र, धर्मचर सत्यंवद, अथर्ववेद का प्रथम मन्त्र ।

शिवरात्रि पर प्रचारार्थ आर्य विद्वानों के ट्रैक्ट मंगावें

मूल्य -) प्रति, ४) सैकड़ा

१ मनुष्य बन
२ गायत्री माता
३ ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० सम्वाद
५ पितृश्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७. ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
१० धर्म और अधर्म
११ स्वामी श्रद्धानन्द
१२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
१३ पण्डित लेखराम
१४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो
२९ वैदिक सन्ध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ भक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ. स. उन्नति के साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी
३९ वैदिक काल में बन्दूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाइयों का षडयन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्णव्यवस्था
५० कर्मव्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ. स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य
५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्रा[illegible]
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त
६२ जीवन की समस्याओं का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वंतः स्वयमार्य[illegible]
६९ चाय भयंकर वि[illegible]
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर सब जगह है
७२ ईश्वर में अविश्वास [illegible]
७३ चरित्र निर्माण
७४ यज्ञोपवीत महत्व
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रह[illegible]
७६ नास्तिकों को सन्दे[illegible]
७७ वैदिक धर्म ही क्यों
७८ विद्यार्थी और सं[illegible]
७९ दयानन्द की महान[illegible]
८० आर्य क्यों बने ?
८१ श्राद्धमीमांसा

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली में छपवाया।

वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

हमारा आगामी महत्त्वपूर्ण विशेषाङ्क

मई में देहली में आर्य महासम्मेलन और सार्वदेशिक सभा की हीरक जयन्ती मनाई जा रही है। इसी अवसर पर "वेदप्रकाश" के पाठकों को हम

*** आर्य समाज अङ्क ***

देंगे। यह अङ्क बहुत ही महत्वपूर्ण एवं संग्रह करने योग्य होगा।

इस अंक को प्राप्त करने का यत्न कीजिये। स्वयं ग्राहक बनिये और अन्यों को बनाइये।

आदरी सह सम्पादक जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

हमारे पाठक क्या कहते हैं ?

जिस सुयोग्यता एवं निर्भीकता से "वेदप्रकाश" चलाया जा रहा है तदर्थ आपको धन्यवाद। —श्री राजकुमार रणञ्जयसिंह M. L. C.
भूतपूर्व प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा (उ० प्र०)

हम आपके सम्पादकीय कार्य हेतु भी आपको धन्यवाद दिये बिना रह नहीं सकते। आप जिस निर्भीकता से वेद प्रकाश का सम्पादन करते हैं वह आर्यों के लिये मार्ग दर्शक हो।

—श्री विश्वनाथ आर्य मन्त्री आ० कु० सभा नानपारा।

दिसम्बर के वेदप्रकाश में आर्य विद्वानों की प्रिय पुस्तकों के नाम पढ़कर मैं स्वयं चकित रह गया। एक ने भी वेद का निर्देश नहीं किया...... आपकी टिप्पणी बहुत युक्त थी —श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक।

राधा स्वामी मतालोचन अंक पढ़ कर प्रसन्नता हुई। आपने यह अंक प्रकाश में लाकर मानव कल्याण की राह ली है। कृपया चार प्रतियाँ भेजने का कष्ट करें।...आशा है कि भविष्य में इस प्रकार अन्य वेद विरुद्ध मतों के आलोचना अंक निकलवा कर वेदप्रकाश को फैलायेंगे।

—श्री लक्ष्मण भारद्वाज आर्य (भोपाल)

राधा स्वामी मतालोचन सुन्दर बन पड़ा है। बधाई

—श्री भवानी लाल जी भारतीय एम० ए०।

राधा स्वामी मतालोचन लिख कर आपने निसन्देह बड़ा उपकार किया है। —श्री ईश्वरी प्रसाद जी प्रेम एम० ए०
सम्पादक तपोभूमि।

यह आलोचनात्मक अंक बहुत उपयुक्त और मिथ्यावादी सम्प्रदाय की पोल खोलने में प्रशस्त है।...इस अंक को आप पुस्तकाकार भी प्रकाशित करें। —श्री पं० अमरनाथ वैद्य शास्त्री देहरादून।

मैं श्री विद्यार्थी जी की "आर्य समाज के पुस्तकाध्यक्ष" टिप्पणी से बहुत प्रभावित हुआ हूँ तथा मैंने इस प्रकार विक्रय विभाग आरम्भ करने का निश्चय किया है।···मैं विद्यार्थी जी को उन की टिप्पणी पर बधाई देता हूँ। —श्री प्रीत नारायण जौहरी (फतेहगढ़)

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापकः—स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

वर्ष—६ : फाल्गुन २०१७ वि० : मार्च १६६१ : वार्षिक मूल्य ३)

अंक—८ : दयानन्दाब्द १३६ : फाल्गुन १८८२ : विदेशों से ६ शिलिंग

मांस भक्षक को दण्ड

यः पौरुषेयेण क्रविषा समंक्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।

यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च॥

ऋ० ॥ १०। ८७। १६ ॥

अर्थ—(यः) जो जो (यातुधानः) राक्षस (पौरुषेयेण) पुरुष सम्बन्धी (क्रविषा) मांस से (समंक्ते) अपने आत्मा को पुष्ट करते हैं, (यः) जो (अश्व्येन) अश्व के मांस से और (पशुना) अन्यान्य मृगादि पशुओं से अपने को पोषण करते हैं, (यः) जो (अघ्न्यायाः) अहिंसनीय गौ के (क्षीरम्) दुग्ध को (भरति) हरण करते हैं। (अग्ने) हे सर्वव्यापक देव ! (तेषाम्+अपि) उन सब राक्षसों के (शीर्षाणि) शिरों को (हरसा) अपने तेज से (वृश्च) काट दीजिए।

आशय—इस संसार में ऐसे महापापी पुरुष विद्यमान हैं, जो अपने को वाममार्गी और अघोर पन्थी बतला कर मृत नर का मांस खाते हैं। वे निश्चय ही मनुष्य को पशु आदिवत् मार कर खाते, किन्तु वैसा करने से राजकीय दण्ड के द्वारा इन का भी प्राण न बचता। इसलिये मृतमानव-शव=मृतशरीर इतस्ततः से संग्रह कर खाते हैं। इस समय ऐसे नर-राक्षस कई स्थानों में बहुत से विद्यमान हैं। अश्वादि पशुओं का मांस भी खाना उचित नहीं, यह इस मन्त्र में विस्पष्ट वर्णित है इस लिये इस प्रकार के मनुष्य राजा के दण्ड्य होने चाहिएं॥

सम्पादकीय टिप्पणियां

"आर्य" और धर्मानन्द कोसम्बी

पिछले दिनों मैं एक दुकान पर पुस्तकें देख रहा था। उन में से ए पुस्तक थी "भगवान् बुद्ध।" इसके लेखक हैं श्री धर्मानन्द कोसम्बी इस पुस्तक में अनेक भ्रामक बातें दी हुई हैं। 'आर्य' शब्द के सम्बन्ध में भी लेखक के विचार बड़े भ्रामक है, देखिये—

"आर्य शब्द 'ऋ' धातु से बना है और अलग अलग गणों में जो धातु पाई जाती है वह प्रायः गत्यर्थक है। अतः आर्य शब्द का अर्थ होता है घुमक्कड़ या मुसाफिर। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यों को घर बार बना कर रहना पसन्द नहीं था। जिस तरह मुगल लोग तम्बुओं में रहते थे, उसी तरह आर्य लोग भी शायद तम्बुओं या मण्डपों में रहा करते थे।" पृष्ठ २...

इन शब्दों को पढ़कर हमें लेखक की अवस्था पर दया आती है। आर्य शब्द का अर्थ यात्री तो हो सकता है अर्थात् जो ईश्वर प्राप्ति रूपी उद्देश्य की ओर निरन्तर गति शील हो वह आर्य है। वेद के शब्दों में "आर्या ज्योतिरग्रः" आर्य प्रकाशक का अनुगामी होता है। निरुक्त में "आर्य ईश्वर पुत्रः" लिखा है। योगी अरविन्द घोष ने आर्य का जो अर्थ किया है लेखक को उसे भी पढ़ना चाहिये। जहां तक हमारा ज्ञान है हमें आर्य का अर्थ घुमक्कड़—निरुद्देश्य व्यर्थ भटकने वाला किसी कोष आदि में नहीं मिला। यह लेखक की कपोल कल्पना ही है।

अगली बात "आर्यों को घर बनाकर रहना पसन्द नहीं था।" और भी विचित्र है। महर्षि मनु, मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी योगेश्वर कृष्ण जी सभी आर्य थे। रामायण में अयोध्या नगरी का वर्णन देखिये। वहां "विमानगृहशोभिताम् (बाल० ५।१६) सात मंजले मकानों को विमान गृह कहते हैं। आज जब कि विज्ञान ने पर्याप्त उन्नति की है तब भी देहली नगरी में जो भारत की राजधानी है ऐसा एक भी घर नहीं हैं। युधिष्ठिर का "राज्य सभा" जैसा भवन अभी तक भी निर्मित नहीं हो पाया है। और तो और स्वयं भगवान् बुद्ध भी राजप्रासाद में ही उत्पन्न हुए थे किसी तम्बू में नहीं।

स्वयं भगवान् बुद्ध को यह आर्य शब्द अति प्यारा था उन्होंने चार आर्य सत्यों और आर्य अष्टांगिक मार्ग का वर्णन किया है। यदि आर्य का अर्थ घुमक्कड़ होता तो भगवान् बुद्ध इन नामों का प्रयोग न करते।

महर्षि दयानन्द और रामकृष्ण परमहंस

पाश्चात्य देशों में वेद और महर्षि दयानन्द के प्रति बढ़ती हुई श्रद्धा को देखकर "रामकृष्ण मिशन" के संचालक ओछे हथियारों पर उतर आये हैं। इस बात की पुष्टि "श्री राम कृष्ण और उनका मिशन" नामक पुस्तक से होती है। इस पुस्तक के लेखक हैं श्री राम कृष्णानन्द और प्रकाशक है "राम कृष्ण मठ, भलईपुर मद्रास। पुस्तक में लिखा है कि १८६६ ई० में प्रयाग में महर्षि दयानन्द और श्री रामकृष्ण परम हंस के मध्य एक शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द ने ईश्वर को निराकार सिद्ध करना चाहा परन्तु रामकृष्ण के प्रतिवाद से वे सिद्ध न कर सके। उस समय दयानन्द ने रामकृष्ण में एक ऐसी दैवीशक्ति अनुभव की कि व उनके चरणों में गिर पडे।

इतिहास की दृष्टि से यह एक बहुत बड़ा गपोड़ा है। महर्षि दयानन्द और श्री रामकृष्ण की भेंट कलकत्ते में हुई थी प्रयाग में नहीं। दयानन्द और रामकृष्ण में किसी भी विषय पर कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ। जब ये दोनों बातें ही अशुद्ध है तो स्वामी जी का उनके चरणों में गिरना स्वयमेव असिद्ध हो गया।

श्रीरामकृष्ण के शिष्यों को उन में अलौकिकता दिखाई देती हो तो देती हो मुझे तो ऐसा लगता नहीं। महापुरुषों की तुलना नहीं करनी चाहिये परन्तु आज मुझे यह तुलना अनिच्छा होते हुए भी करनी ही होगी। मैंने श्री रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के जीवन भी पढ़े हैं। इन तीनों में स्वामी राम तीर्थ सब से बढ़ कर हैं। एक उदाहरण के रूप में यूं कह सकता हूँ। एक शीतल स्वच्छ जल का तालाब है। स्वामी राम तीर्थ उस में समाधिस्थ हो सकते हैं। रामकृष्ण परम हंस उसमें तैर सकते हैं और स्वामी विवेकानन्द उस के जल को छू सकते हैं। जो मस्ती और आकर्षण स्वामी रामतीर्थ में थी श्री रामकृष्ण में उतनी भी नहीं थी। स्वामी रामतीर्थ सत्यान्वेषक थे। वे वैदिक सत्य की ओर अग्रसर हो रहे थे। उनके जीवन के अन्तिम तीन वर्ष वेद अध्ययन की ओर लगे। महर्षि दयानन्द ने तो गुरु विरजानन्द जी के यहां से ही वेदों को पकड़ लिया था। योग की खोज में उन्होंने अपने जीवन के १४ अमूल्य वर्ष खपाये थे। कहां तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी, पूर्ण योगी और वेदों का प्रकाण्ड विद्वान् महर्षि दयानन्द और कहां रेत के लड्डू बनाने वाला एक गृहस्थी

और निरक्षरभट्टाचार्य❀ । महर्षि दयानन्द का उनके चरणों में गिरना एक उन्मत्त मस्तिष्क की गप्प के अतिरिक्त कुछ नहीं है। महर्षि दयानन्द का इस से कुछ बिगड़ता नहीं हां श्री रामकृष्ण परम हंस के साथ यह अत्याचार अवश्य है ।

दो रामचन्द्रों का अभिनन्दन कीजिये

महर्षि दयानन्द दीक्षा शताब्दी के अवसर पर दो गंगाप्रसादों का अभिनन्दन किया गया था। अब मई में देहली में नवम आर्य महा सम्मेलन और सार्वदेशिक सभा की हीरक जयन्ती मनाई जा रही है। इस अवसर पर दो रामचन्द्रों का अभिनन्दन होना ही चाहिये ।

श्री रामचन्द्र देहलवी के नाम से कौन परिचित नहीं होगा ? आपने १५ वर्ष तक Street preaching गली और मौहल्लों में प्रचार किया। फव्वारे के ऊपर आपके व्याख्यान प्रायः होते रहते थे । आपने ईसाई और मुसलमानों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये जिन में विपक्षियों को मुंह की खानी पड़ी और आप सदा विजयी रहे। जब आप गहन से गहन और गूढ़ से गूढ़ दार्शनिक विषयों को भी अति सरल शैली में समझाते हैं तो लोग मन्त्र मुग्ध होकर बैठे रहते हैं। ऐसा उद्भट विद्वान् तार्किक यदि विदेशों में हुआ होता तो पता नहीं उनका कितना सम्मान होता उनके रहने के लिये बगला और सवारी के लिये सदा कार उपस्थित होती। आर्य जगत् के कर्णधारों को अपने ऐसे प्रतिभाशाली विद्वान् का अभिनन्दन करना चाहिये।

दूसरे हैं महता रामचन्द्र जी। आप की आयु इस समय लगभग ८६ वर्ष की है। यद्यपि आपका सिर हिलता है और हाथ पांव कांपते हैं परन्तु इस अवस्था में भी आप की वाणी में ओज है। जब आप व्याख्यान देते हैं तो वेद मन्त्रों की झड़ी लगा देते हैं। "मेरा धर्म" यद्यपि आप की छोटी सी पुस्तक है परन्तु उसमें भी विविध विषयों पर आप ने सैकड़ों मन्त्र उद्धृत किये हैं। ऐसे वैदिक वीर का स्वागत भी होना ही चाहिये।

"विद्यार्थी"

❀ इस शब्द के लिये पाठक मुझे क्षमा करेंगे स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें ऐसा ही माना है—

"He was without any book learning, whatsoever with his great intellect, never could he write his own name".

—❀❀—

धर्म की आवश्यकता

["अज्ञात" आर्ष गुरुकुल एटा,]

धृधारणे से "अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्योमन्"
(उणादि० १।१४०)

मन् प्रत्यय होकर धर्म बनता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो मानव को धारण करने योग्य है उसे धर्म कहते हैं। महाभारत में कहा गया है—

धारणाद्धर्मित्याहुः यस्माद् धारयतेप्रजाः।
यत्साद्धारण संयुक्तः सधर्म इति निश्चयः॥

अर्थात्—धर्म उसी को कहते हैं कि जिसका धारण करना अनिवार्य है। धर्म के महत्व का महाभारत के इस दूसरे श्लोक में और भी सुन्दर विवेचन किया है—

धर्मः सतां हितः पुंसां धर्मश्चैवाश्रमः सताम्।
धर्माल्लोका स्त्रयस्तात् प्रवृत्ताः सचराचरा॥

धर्म ही सत्पुरुषों का हित तथा आश्रय है ? धर्म से ही तीनों चराचर लोक चलते हैं। साथ ही इस छोटे से लेख में यह भी बताना चाहता हूँ कि ईश्वर ने मानव मात्र के हितार्थ तथा मार्ग प्रदर्शनार्थ धर्म का उपदेश वेद द्वारा ठीक इसी अवस्था में दिया जैसे आज बालक के गुरु अध्यापक बनते हैं उस समय बाल सृष्टि का आदि गुरु बना जिसके बारे में महर्षि पतञ्जलि ने कहा है "पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" (योग० समाधि पाद २६) अर्थात् वह पूर्वों का भी गुरु है इसी को गीताकार—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जना॥ गीता ८।१७॥

नमेविदुः सुरगणाः प्रभवं नमहर्षयः। अहमादिर्हि देवानांमहर्षिणां च सर्वशः।
यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्। असंमूढ़ः समर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते
॥ गीता० १०। २। ३॥

इन श्लोकों द्वारा स्पष्ट करते हैं कि वह अनादि है तथा इसी को श्वेताश्वरोपनिषद में भी कहा है।

यो देवानां प्रभवश्वोद्भवश्च, विश्वाधिपोरुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं, स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥ श्वेता० ३।४॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते, न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैवश्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ श्वेता० ६।८ ॥

उसके शरीर और इन्द्रियां नहीं हैं, उसके समान उससे बढ़ कर भी कोई दिखाई नहीं देता, उसकी पराशक्ति नाना प्रकार से सुनी जाती है, और वह स्वाभाविकी ज्ञानक्रिया और बलक्रिया है । आज इसकी पुष्टि युरुप के मैस्मरिजम ने कर दी है कि एक मनुष्य अपनी प्रबल शक्ति के प्रभाव से दूसरे मनुष्य को यथेष्ट ज्ञान दे सकता है और कार्यरूप में परिणित करवा सकता है । जब साधारण मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति को दूसरे के सम्मुख रख कर यथेष्ट कार्य करने में समर्थ हो सकता है, तो महान् शक्तिशाली ज्ञान क्रिया से परिपूर्ण ईश्वर के विषय में क्या सन्देह है । पाठकों के समक्ष दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ कि विषय और स्पष्ट हो जाये देखिये पाणिनीय सूत्र [स्वतन्त्रः कर्त्ता] [तत्प्रयोजकोहेतुश्च] अष्टाध्यायी १।४।५४,५५ ॥

स्वतन्त्र को जो प्रेरणा करने वाला उसकी हेतु संज्ञा होती है (चकार से कर्ता संज्ञा) कर्त्ता दो प्रकार का होता है प्रयोज्य, प्रयोजक जैसे एटा गुरुकुले रामदत्तः महाभाष्यमधीते, आचार्य ज्योतिः स्वरूपः रामदत्तं महाभाष्यमध्यापयति । यहां महाभाष्य के पढ़ने वाले रामदत्त प्रयोज्य तथा पढाने के हेतु प्रेरक [प्रेरणा करने वाले] आचार्य ज्योतिः स्वरूप जी प्रयोजक । ठीक इसी प्रकार स्वतन्त्र कर्त्ता जीव प्रयोज्य तथा उसको प्रेरणा करने वाला ईश्वर प्रयोजक हुआ इसी को मीमांसाकार (प्रेरणा लक्षणोऽर्थो धर्मः) मीमांसा १।२ । जिसके श्रवण करने से प्रेरणा पाई जाये, वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हों उसे धर्म कहते हैं ।

जैसे "आत्मानमुपासीत"=परमात्मा की उपासना करे, "स्वाध्यायोऽध्येतव्य"=वेद का अध्ययन करे, "अहरहः सन्ध्यामुपासीत"=प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन प्रातः सांय सन्ध्या करे, "अग्निहोत्रं जुहोति" अग्निहोत्र करे, "संगच्छध्वं संवदध्वं"=तुम सब मिल कर रहो और मुख से एक ही बात करो, "मातृदेवोभव पितृदेवो भव"=माता पिता को देव समान समझो, "यानिअनवद्यानि कर्माणितानि सेवितव्यनि"=जो उत्तम कर्म हैं उनका अनुष्ठान करना चाहिए, आदि अनेकों उदाहरण हैं जिसके द्वारा मानव के हितार्थ ईश्वर साक्षात् धर्म के प्रति प्रेरणा करता है ।

अतः स्पष्ट हो जाता है, कि वैदिक शास्त्रों के आधार पर वैदिक सन्तान के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त छोटे बड़े कार्यों का धर्म से सम्बन्ध है। वैदिक धर्मियों की राजनीति तथा समाजनीति धर्म से कोई पृथक् वस्तु नहीं है अन्य धर्मालम्बियों की तरह आर्य केवल साधनधर्म को ही

धर्म नहीं मानते परन्तु अपनी प्रत्येक क्रिया को ईश्वरार्पण करके परमात्मा की प्राप्ति के लिए साधनोपयोगी बना सकते हैं इसी आधार पर वैदिक ग्रन्थों में धर्म के तीन विभाग किये हैं—

धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकंधर्म लक्षणम् ॥ मनु० ६।९२ ॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुःसाक्षद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ मनु० २।१२ ॥

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस् सिद्धिः सधर्मः ॥ वैशेषिक १।२ ॥

जिससे अभ्युदय (यह लोक) तथा निः श्रेयस् (परलोक) की प्राप्ति होती है उसे धर्म कहते हैं। यह वह धर्म है जिसमें किसी जाति या सम्प्रदाय को आपत्ति नहीं हो सकती। जिस समय से मानव समाज ने धर्म का पालन करना छोड़ दिया है, मानव अधोगति को प्राप्त हो सुख शान्ति का परित्याग कर अशान्ति के साम्राज्य में श्वांस ले रहा है। यह स्थिति गरीब समाज की ही नहीं अपितु शिक्षित समाज भी इसे परे नहीं है। धर्म को पृथक् कर मानव अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए परस्पर वैर भाव को आश्रय देकर एक दूसरे को पशुवृत्ति के समान ग्रास बनाने को तैयार हो रहा है यही नहीं ऊंची ऊंची अट्टालिकाओं पर रहने वाले, धनी से धनी, वायुयान तथा कारों पर सैर करने वाले, जनता पर हुकूमत चलाने वाले पदाधिकारी, सम्पादक उपदेशक, तथा लेखक यदि हम सभी अपने हृदय पर हाथ रख कर देखें तो दुःख से धधकती हुई चिनगारियाँ दृष्टि गोचर होंगी। ऐसा क्यों ? इसका एक ही जबाव है, धर्म से च्युत होना। साथ ही हमारे वैज्ञानिक तो विज्ञान के प्रवाह में धर्म से पृथक् हो चुके हैं किन्तु विज्ञान और धर्म कोई प्रथक् वस्तुयें नहीं हैं पाश्चात्य विद्वानों ने इग्लैण्ड में होने वाले विज्ञान सप्ताह में इस बात को सिद्ध कर दिया है कि विज्ञान व धर्म कोई प्रथक् वस्तुयें नहीं हैं तथा एक दूसरे की उपेक्षा नहीं करतीं किन्तु पूरक (सहायक हैं) They are not apposed. They are not neutral, they are allies. (Seience and Religian by 7 man of scienee P. 57) दूसरे विज्ञान शब्द का अर्थ करते हैं (Science is systemtised of classified Knowledge) नियम और श्रेणी बद्ध ज्ञान है। इसी को महर्षि गौतम ने इस रूप में कहा है। (दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरा पापे तदनन्तरा पापादय वर्गः) अज्ञान की समाप्ति होने पर मृत्यु तक के बन्धन ढीले हो जाते हैं। अतः प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि बीच में आने वाली अज्ञान रूपी खाइयों को समाप्त कर एक ही धर्म सूत्र को पकड़ें तभी कल्याण निश्चित है। क्योंकि

मानव के साथ अन्त समय धर्म रूपी बीज ही जाता है उसी से दुबारा पौधे का उत्पादन होता है। संसार की सभी वस्तुयें तथा सम्बन्धी यहीं रह जाते हैं। मनुस्मृति में कहा गया है—

नामुत्रहि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
ना पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ मनु० ४।२३९ ॥
एकः प्रजायते जन्तुरेकएव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेकएव च दुष्कृतम् ॥ मनु० ४।२४० ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ट समं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ मनु० ४।२४१ ॥
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ मनु० ४।२४२ ॥

इन श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है कि मानव को परम गति प्राप्त करने के लिए तथा दुःखों से निपटारा पाने के लिये एक ही उपाय है, कि धीरे-धीरे धर्म का संचय करे और अपने मानव जीवन को सफल बनाये।

धर्माचरण में कुछ कठिनाइयों का भी मुकाबला करना पड़े तो पथ से विचलित नहीं होना चाहिये। मनुस्मृति में कहा है:—

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयते ।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ॥ मनु० ४।१७१ ॥
ना धर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ मनु० ४।१७२ ॥

अर्थात्—अधर्मियों की शीघ्र बुरी गति नहीं होती अतः धर्म में दुःख पाता हुआ भी अधर्म में मन न लगावे पृथ्वी की तरह किया हुआ अधर्म शीघ्र फल नहीं देता है, किन्तु शनैः २ जड़ मूल से नष्ट कर देता है।

इन वचनों को ध्यान में रख कर हम सब को धर्म पालन में यत्नवान होना चाहिये।

राधा स्वामी मत दर्पण

वेद प्रकाश के फरवरी अंक में राधा स्वामी मत आलोचना प्रकाशित हुई थी। वह अंक अधिक छापने पर भी लोगों की मांग को पूरा न कर सके। प्रचार के दृष्टिकोण से अंक की सामग्री बहुत उपयोगी थी कई लोगों की मांग होने के कारण उसे सामग्री पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कर दिया है जिन समाजों को या लोगों प्रचारार्थ मंगाना हो मंगा लें। मूल्य ।) सैकड़ा १८)

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली।

भारतोद्धारक वसुधारत्न श्री दण्डी स्वामी विरजानन्द

[श्री पं० भीमसेन जी शास्त्री, एम० ए० नरेला]

स्वामी विरजानन्द सरस्वती आरम्भ से ही अलौकिक प्रतिभा के धनी थे। वे २३ वर्ष की अवस्था में अध्ययनार्थ काशी में पहुंचे थे। वहाँ पढ़ते ५-६ वर्ष हुए होंगे, अभी उनकी अवस्था तीस वर्ष की भी न थी कि काशी के विद्वन्मण्डल ने जिसमें उस समय अनेक लोकोत्तर प्रतिभा से विभूषित थे उनको काशीस्थ पण्डित सभा का सदस्य बनाया और प्रज्ञाचक्षु उपाधि से विभूषित किया। इस समय विक्रम संवत् १८६४ या १८६५ (लगभग १८०८ ख्री०) चल रहा होगा।

इस घटना के लगभग ६१ वर्ष पश्चात् विरजानन्द ने संवत् १९१६ (ख्री० १८५९) में पाणिनीय शब्दानुशासन (अष्टाध्यायी) तथा महाभाष्य का प्रचार प्रारम्भ किया। काशी के विद्वन्मण्डल को स्ववैदुष्य से चमत्कृत करने के अनन्तर २-३ वर्ष तो उन्होंने काशी में अध्ययन किया था। तत्पश्चात् गया तथा कलकत्ता में लगभग १० वर्ष अध्ययन किया था। अध्यापन कार्य तो वे हरिद्वार में ही प्रायः सं० १८५३ (ख्री १७९६) में प्रारम्भ कर चुके थे। अर्थात् अध्यापन का उन्हें ६३ वर्षीय अनुभव था। मथुरा में अध्यापन करते भी १४ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। प्रबुद्ध विरजानन्द ने सं० १९१६ में अपना जन्म माना। इससे पूर्वकाल को वे वृथा-यापित समझते थे।

इस घटना को भी प्रायः पाँच वर्ष व्यतीत हो चुके थे। विरोधी मथुरा के सारे पण्डित (४-६ को छोड़) धीरे-धीरे उनके शिष्य बन चुके थे। उस समय भी मथुरा के एक विद्वद्रत्न को अपनी विद्या पर इतना विश्वास था कि वे दृढ़ निश्चयी थे कि वे विरजानन्द को शास्त्रार्थ में परास्त करके अपना शिष्य बनाकर उनसे सिद्धान्त कौमुदी व शेखर का प्रचार करवाएंगे। परिणाम इससे विपरीत हुआ। विरजानन्द ने उदय प्रकाश को परास्त किया और वे इनके शिष्य बन गए और विरजानन्द के जीवन काल तक (सं० १९२५ तक) उनसे विद्याध्ययन करते रहे और इसके पश्चात् २० वर्ष तक, अपने स्वर्गवास तक शब्दानुशासन (अष्टाध्यायी) व महाभाष्य पढ़ाते रहे। कौमुदी शेखर का खण्डन करते रहे। उनके पुत्र मुकुन्ददेव जी ने भी यावदायु शब्दानुशान महाभाष्य पढ़ाया।

भरतपुर में पं० उदयप्रकाश समक्ष एक विद्वान् पण्डित मणिराम जी थे। वे भरतपुर नरेश श्री जसवन्त सिंह को संस्कृत पढ़ाते थे। वे मास दो मास में विद्या विनोदार्थ मथुरा आते थे और पं० उदयप्रकाश से २-४ दिन शास्त्रालाप किया करते थे। पं० उदयप्रकाश के विरजानन्द का शिष्य

बनने से उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे अपने सखा से बोले "मित्र तुम भी मथुरा के अन्य पण्डितों के समान विरजानन्द के शिष्य बन गए, यह एक अनोखी बात है। दण्डी की कैसी योग्यता है ? क्या वह निरा वावदूक नहीं है ?

पं० उदयप्रकाश ने सोचा कि मेरे कथन मात्र से मेरे सखा को दण्डी जी के वैदुष्य प्रतिभा आदि के महात्म्य पर विश्वास न हो सकेगा अतः वे बोले "मित्र स्वयं चल कर देखो कि इस जगतीतल पर कैसे-कैसे अलौकिक पदार्थ विद्यमान हैं।" पं० मणिराम उदयप्रकाश जी के साथ दण्डी जी के पास पहुँचे। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। पं० मणिराम फारसी के भी उत्कृष्ट पण्डित थे। आज उन्हें दण्डी के संस्कृत व फारसी के वैदुष्य का लोहा मानना पड़ा और उन्होंने चमत्कृत हो दण्डी जी की शिष्यता स्वीकार की। यह प्रायः सं० १९२२ की घटना है। मणिराम जी का शीघ्र स्वर्गवास हो गया और वे विरजानन्द जी से पढ़ न सके।

विरजानन्द व दयानन्द तो जगद् विजयी थे ही। विरजानन्द के शिष्य पं० उदयप्रकाश व गङ्गादत्त ने मथुरा में आए सारे काशी के पंडितों को सदा नीचा दिखाया। पं० गङ्गादत्त ने तो काशी में जाकर भी वहां के सर्व पण्डित मण्डल को खूब झिझोड़ा। उस समय काशी वासी कह उठे—

पलायध्वं पलायध्वं भो भो दिग्गजतार्किकाः ।
गङ्गादत्तः समायातो वैयाकरण केसरी ॥

ऐसे अपूर्व विद्वान् और अपने शिष्य दयानन्द के द्वारा संसार में युगान्तर उपस्थित कराने वाले विरजानन्द को आर्य जगत् पूर्णतया भूल गया है। वह उनके वसीयतनामे को आगरे में नहीं खोजता और वर्ष में एक दिन उनके पावन चरितों के स्मरणार्थ भी नहीं रखना चाहता। क्या यह कम आश्चर्य की बात है ? खेद है कि आर्य समाज से अध्ययन का पूर्ण लोप हो चुका है। हमारे नेता विरजानन्द के निवास ग्राम गङ्गापुर के स्थान में उन्हें करतार पुर का वासी मान वहां स्मारक बनवा बैठे। लोकोत्तर प्रतिभा के धनी विरजानन्द की अप्रतिम देन आर्ष ग्रन्थ सरणि को हम भुला बैठे।

किं माश्चर्यमतः परम् ।

विरजानन्द प्रकाश

गुरु विरजानन्द जी का खोज पूर्ण जीवन

उपरोक्त लेख के लेखक का अवश्य पढ़िये। मूल्य २)

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

यज्ञामृत

बिना मूल्य लाभकारी प्रयोग, यज्ञ भस्म फेंकिये नहीं, उत्तम औषधि है।

(ले० श्री कवि० पं० अमरनाथ वैद्यशास्त्री वनस्पति औषधालय देहरादून)

घरों में, समाजों में, विशेष महोत्सव पर्वों तथा संस्कारों में हवन होता है। कभी कोई यज्ञ प्रेमी श्रद्धालु धन सम्पन्न व्यक्ति बृहत् यज्ञ का भी आयोजन कर पुण्य प्राप्त करते हैं।

परंच हवन यज्ञ के पश्चात् वह अमूल्य वस्तु कहीं फेंक दी जाती है। भूमि में दबा दी जाती है अथवा जलाशय नदी में बहा दी जाती है। ऐसा भी देखने में आया कि कर्मचारी यज्ञ भस्म को कूड़े में फेंक देते हैं, इस प्रकार एक परमोपयोगी औषध वस्तु को हम प्रतिदिन विनष्ट करते रहते हैं। कभी कोई विचार भी नहीं करता कि यज्ञ भस्मों में भी रोगनाशकतत्व विद्यमान हैं। वस्तुतः यज्ञ भस्म में विशेष गुणकारक सारांश है, इसके क्षार को निकाल लीजिये, यही तो यज्ञामृत है। हवनाग्नि शान्त होने पर भस्म को कनस्तर या कोरे घड़े में भर कर ढक कर रखें। लकड़ी के मोटे कोयले या अधजली समिधा निकाल देनी चाहिए। जब ४-५ सेर या अधिक भस्म इकट्ठा हो जावे तो किसी वैद्य के परामर्श से इसमें क्षार निर्माण विधि द्वारा क्षार बना कर पीस लें, और शीशी में डालकर रक्खें। अनुमान एक सेर भस्म में से ५ तोला अच्छा श्वेत तेज क्षार प्राप्त होता है।

यह यज्ञामृत क्षार इन रोगों के लिए लाभकारी है। कफ, खांसी, श्वास, मन्दाग्नि, उदर विकार, यकृत प्लीहा वृद्धि, अश्मरी, मूत्रपीड़ा, मूत्रावरोध, इसका प्रयोग पाचक औषधियों के योग में भी किया जा सकता है।

क्षार निर्माण विधि सुगम है। कुछ परिश्रम तो करना ही पड़ेगा, एक बार बना लें तो आगे सुविधा रहेगी, क्योंकि यह यज्ञ शेष है, किसी रोगी से इसका मूल्य न लेवें, धर्मार्थ वितरण कर पुण्य प्राप्त कीजिये।

हवनीय द्रव्य

यह अवश्य ध्यान रखें कि हवन सामग्री उत्तम नवीन तथा सुगन्धित वस्तुओं वनौषधियों से बनी हुई हो। प्रायः बाजार में मिलने वाली हवन सामग्री पुरानी, कृमि भक्षित और व्यर्थ की वस्तुयें मिलाकर बनाई हुई

होती है। किसी विश्वस्त निर्माण कर्ता से ही विशुद्ध वनस्पतियों से बनी हुई हवन सामग्री लेनी चाहिए। बृहद् यज्ञों के लिये तो स्वयं सामग्री बना कर उपयोग में लानी चाहिए। हवन के समय पौष्टिक अन्न, जौ, तिल, चावल, उड़द, मूंग और खांड या कच्ची शक्कर मिलानी चाहिए। घृत सदैव शुद्ध होना चाहिए। आम, बड़, पीपल, खैर, पलाश की समिधाओं को प्रयुक्त करें, उत्तम हवन सामग्री तथा समिधाओं से किये गये हवन यज्ञ की भस्मी से उत्तम लाभकारी क्षार प्राप्त होता है।

सेवन विधि

यज्ञामृत क्षार की पूरी मात्रा ४ रत्ती है। परंच किसी योग्य वैद्य की सम्मति से अवस्था रोगदशा के अनुसार मात्रा और अनुमान पूछकर सेवन करें। विशेष सेवन विधि और निर्माण विधि लेख बढ़ जाने के कारण यहां नहीं दी गई। इसके विषय में किसी वैद्य से सम्मति लें।

निवेदन—यदि आप स्वयं यज्ञामृत न बना सकें तो अपने व्यय से सुव्यवस्था पूर्वक हमारे पास यज्ञ भस्मी भेज दीजिये। इस सम्बन्ध में कुछ पूछना हो तो पत्र लिखें, प्रत्युतर के लिए टिकट अवश्य भेजें।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि आप ?

१. आर्यावर्त्त के उच्चकोटि के लेख और ओजस्वी विचार पढ़ना चांहते हैं तो ४) वार्षिक चन्दा भेजकर शीघ्र ग्राहक बनिये। वर्ष में चार विशेषांक प्रकाशित किये जाते हैं—जिनका ग्राहकों से कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं लिया जाता।

२. लेखक और कवि हैं तो आर्यावर्त्त के लिए लेख और कविताएं भेजिए।

३. व्यापारी हैं तो आप अपने व्यापार की उन्नति के लिए आर्यावर्त्त में विज्ञापन दीजिए।

व्यवस्थापक—

आर्यावर्त्त, नया बाजार, लश्कर (ग्वालियर)

अमरीका में वेद मन्दिर

डा० मार्कस

—❀❀❀—

(इसी सम्बन्ध में कुछ समय पूर्व श्री वीरेन्द्र जी का एक लेख प्रकाशित हुआ था। लेख को पढ़कर अमेरीका के वेद मन्दिर के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करने की इच्छा अनेक पाठकों जागृत हुई। अपने पाठकों की जिज्ञासा की पूर्त्यर्थ हम यह महत्व पूर्ण लेख प्रकाशित कर रहे हैं।)

—सम्पादक

बिहार (भारत) के महाराज दरभंगा के वंशज श्री पं० भेखपति सिन्हा ब्रिटिश वैस्ट इण्डीज, ब्रिटिश गायना तथा दक्षिण अमेरीका के अन्य प्रदेशों का सफल एवं विस्तृत भ्रमण करते हुए तथा वहां वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए सितम्बर १९५२ में अमेरीका पधारे।

१९५४ में मेरा श्री सिन्हा जी से परिचय हुआ। उन से मिलने से कई वर्ष पूर्व से ही मैं सत्य की खोज में था जिस से मेरे हृदय को शान्ति मिले तथा मेरे जीवन में अध्यत्मिकता और सद्विवेकता की वृद्धि हो। पं० जी से मिलने पर मैं वैदिक शिक्षाओं के प्रति अत्यधिक आकर्षित हुआ जो उस समय पं. जी ने मुझे बताई। तुरन्त ही मैंने मानव जाति के पवित्रतम ग्रन्थों के विषय में अधिक से अधिक जानने की इच्छा प्रकट की।

उसी समय से मैं अध्यात्मिक दिनचर्या अर्थात् स्तुति प्रार्थना और उपासना आदि का नियम पूर्वक अनुष्ठान कर रहा हूँ। पांच वर्ष से मैं निरन्तर यज्ञ भी कर रहा हूँ।

इसी बीच में मैंने अनुभव किया कि जिन वैदिक अध्यात्मिक शिक्षाओं ने मुझे शान्ति प्रदान की है उससे संसार की अन्य अनेक आत्माएं भी लाभान्वित हो सकती हैं। परिणाम स्वरूप मैंने अपने ही घर पर कभी कभी सभाओं का आयोजन प्रारम्भ किया और पं० सिन्हा जी वहां व्याख्यान

देने लगे। शीघ्र ही अन्य व्यक्तियों ने भी वैदिक शिक्षाओं पर चलने की इच्छा प्रकट की।

कुछ वर्ष की अव्यवस्थित सभाओं के पश्चात् हमने अनुभव किया कि वैदिक शिक्षाओं के प्रचार के लिये एक संगठन की स्थापना की जाये। हमारा यह विश्वास था कि केवल वैदिक शिक्षाएं ही मानव जीवन के पृथिवी पर अविर्भाव के वास्तविक उद्देश्य और यात्रा का ठीक निर्देश कर उसे मुक्ति के मार्ग पर प्रेरित कर सकती थी।

१९५९ में हमने वैदिक सभा की स्थापना की वैदिक सभा एक अध्यात्मिक एवं दार्शनिक संगठन है जिस का उद्देश्य वैदिक शिक्षाओं का प्रसार है। १९६० में यह सभा न्यूयार्क के कानून के अनुसार एक धार्मिक, लाभरहित एवं कर-मुक्त संस्था के रूप में स्थापित हो गई।

पं० सिन्हा जी ने न्यूयार्क और सम्पूर्ण संयुक्त अमेरीका में कई सौ व्याख्यान वहां की विभिन्न सभाओं में और वैदिक सभा द्वारा आयोजित सभाओं में दिये हैं।

कुछ आरम्भिक सदस्य जिन्होंने इस सभा की स्थापना की थी उन्होंने अनुभव किया है कि उनके जीवन अधिक सुशोभित, अधिक शान्त और प्रसन्नता पूर्ण हो गये हैं और इसका कारण है वे वैदिक शिक्षाएं जिन का वे दैनिक अभ्यास कर रहे हैं। कुछ ने तो अपने जीवन वैदिक शिक्षाओं के प्रचार और प्रसार में लगाने का निश्चय कर लिया है।

हमारा ऐसा विश्वास है कि मनुष्य निरन्तर संसार के धन्धों में अधिकाधिक फंसता जा रहा है और अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य से बहुत भटक गया है। हम अनुभव करते हैं कि केवल मात्र असाम्प्रदायिक, सार्वभौम तथा अन्ध विश्वास से रहित और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को द्योतित करने वाली शिक्षा ही मनुष्य को उसकी अध्यात्मिक बपौति को पुनः प्रदान करा सकती है। हमारा अनुभव है कि वैदिक शिक्षाओं का निरन्तर अभ्यास ही मनुष्य के अस्तित्व के अध्यात्मिक महत्व का पुनः प्रतिस्थापन कर सकता है। यह वैदिक सभा के सदस्यों का दृढ़ विश्वास है।

सभा का प्रमुख उद्देश्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को प्रोत्साहन, प्रशिक्षण और प्रेरणा दे कि वह सत्य का अन्वेषण और धारण करे तथा प्रत्येक मानव अविद्या, अज्ञान मोह तथा भ्रम से पृथक् रहे। सभा के निम्न पांच नियम हैं जिनका उद्देश्य है वैयक्तिक उन्नति और विश्वबन्धुत्व के द्वारा सर्वत्र सब का रक्षण और सब की सेवा—

(१) वैदिक सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रचार और प्रसार।

(२) प्रत्येक व्यक्ति को अध्यात्मिक जीवन बिताने के लिये प्रेरित करना।

(३) मानव जाति की बपौती अध्यात्मिक और दार्शनिक ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार।

(४) विश्वबन्धुत्व तथा विश्व प्रेम की भावनाओं की वृद्धि करना।

(५) प्राणी मात्र के लिये आदर और सम्मान की भावना जागृत करना।

वैदिक सभा की स्थापना के कुछ ही समय पश्चत् अनुकूल स्थान पर एक आश्रम खोलने की आवश्यकता अनुभव हुई। ऐसे स्थान की आवश्यकता अनुभव हुई जहां जाकर लोग प्रकृति के स्वच्छ एवं पवित्र वातावरण में ईश्वर से अपना सम्पर्क स्थापित कर सकें तथा जहां लोग प्राकृतिक सौन्दर्य और शान्ति के वातावरण में वेद तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय कर सकें। आवश्यकता हुई ऐसे स्थान की जहां लोग आत्म दर्शन करते हुए ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना कर सकें।

इसी लक्ष्य को सम्मुख रख कर एक ऐसे ही प्रथम वेदाश्रम के लिये "डीयर पार्क" में न्यूयार्क से ७० मील दूर एक सुन्दर पहाड़ी प्रदेश १९६० में क्रय किया गया। यह भूमि जो वैदिक सभा के कई दानी महानुभावों की उदारता से क्रय की गई २३॥ एकड़ है। इस भूमि पर सैकड़ों छोटे बड़े वृक्ष हैं। एक चार कमरों का सुन्दर पत्थर का भवन भूमि पर पहले ही बना हुआ था तथा तीन कमरों को एक अन्य भवन हमारे द्वारा भी तैयार कराया गया है। दूसरे भवन धन एकत्रित होते ही शीघ्रातिशीघ्र निर्मित होंगे जिन में सब से महत्वपूर्ण पुस्तकालय और सत्संग भवन होंगे। सभा की आकांक्षा एक ऐसे पुस्तकालय के निर्माण की है जहां वेद और वैदिक ग्रन्थों के अतिरिक्त संसार के समस्त धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों का संग्रह होगा।

कोई भी व्यक्ति जो अध्यात्मिक जीवन व्यतीत करना चाहे और वैदिक शिक्षाओं का प्रचार और प्रसार करना चाहे वैदिक सभा का सदस्य बन सकता है।

कोई भी व्यक्ति जो "डीयर पार्क" स्थित वेदाश्रम की सुविधाओं से लाभ उठाना चाहें हम उनका स्वागत करते हैं। यह आश्रम सदा सब के लिये खुला रहता है।

पिछले कुछ वर्षों में हमें आर्य समाज के कुछ सदस्यों का स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जो न्यूयार्क भ्रमणार्थ आये और जिन्होंने हम से सम्पर्क स्थापित किया। कलकत्ता के श्री महेश वार्ष्णेय, हैदराबाद

के डा० के० के० शर्मा तथा अन्य अनेक व्यक्ति जो दक्षिणी अमेरीका से आये कुछ ही समय पूर्व हमारे अतिथि बने थे। पिछले ही मास हम ने श्री वीरेन्द्र जी सम्पादक प्रताप और वीर प्रताप (जालन्धर) से भेंट की। उनके समक्ष हमने अपनी सद्योनिर्मित सभा के सम्बन्ध में अपनी आशाएं और अभिलाषायें व्यक्त की और उन्होंने हमारे मिशन को सहायता देने का वचन दिया। श्री विजय कुमार मालिक फर्म गोविन्दराम हासानन्द जिन से हम कई वर्ष से सम्बन्धित हैं ने अमेरीका आते समय हमारा नाम वीरेन्द्र जी को तथा उरोक्त दोनों सज्जनों को दिया था।

हम आर्य समाज के अन्य सदस्यों तथा मित्रों का न्यूयार्क में स्वागत कर प्रसन्नता का अनुभव करेंगे।

हमें यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि वैदिक शिक्षाओं ने हमारी सभा के दो सदस्यों को इतना प्रभावित किया है कि उन्होंने अपने तीन वर्षीय पुत्र को कुछ वर्ष पश्चात् भारतीय गुरुकुल में भेजने का दृढ़ निश्चय कर लिया है।

साहित्य समालोचना

Vedic Trinity—वैदिक त्रैत्वाद। लेखक—श्री विज्ञान दीपक। प्रकाशक—ठाकुर रत्तसिंह राठोर, १६४, स्टाल पञ्चकुयां रोड़, नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या १६ मूल्य १२ न० पै०।

श्री रत्नसिंह जी स्वाध्यायशील, उत्साही एवं लग्नशील आर्य युवक है। अहिन्दी भाषी भी वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकें इसी दृष्टि कोण से यह ट्रैक्ट प्रकाशित कराया गया है। विद्वान् लेखक ने ऋग्वेद के प्रसिद्ध मन्त्र "द्वा सुपर्णा सयुजा..." को लेकर तथा उपनिषद् आदि के अन्य अनेक मन्त्र उद्धत कर यह सिद्ध किया है कि त्रैत्वाद का सिद्धान्त ही ठीक है। हम इस पुस्तक का प्रचार चाहते हैं।

बलिदान गाथा—लेखक—पं० इन्द्रसेन विश्वप्रेमी। प्रकाशक—विश्वप्रेमी सेवा केन्द्र अलवर। पृष्ठ संख्या १४८ मूल्य ढाई रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी सत्याग्रह आन्दोलन की गाथा गद्य और पद्य में वर्णित की गई है। यह गाथा ७८ पृष्ठ तक है ४८ पृष्ठ में महर्षि जीवन गाथा है और दो भागों में श्री विश्वप्रेमी जी के गीत है। पुस्तक लिखने में पर्याप्त परिश्रम किया गया है।

चित्रों में बलिदान गाथा इस पुस्तक की अपूर्वता है। पृष्ठ ३ पर योगेश्वर कृष्ण के चित्र के नीचे "यदा यदाहि'- इत्यादि पंक्तियां खटकती हैं। आशा है अगले संस्करण में ये हटा दी जायेगी अथवा इन के नोचे महर्षि का अर्थ दे दिया जाय। इससे अगले पृष्ठ पर "आह्वान" का अशुद्ध ब्लाक भी खटकता है।

"विद्यार्थी"

हृदय में है

रणविजय सिंह "विजय" सहायक अध्यापक डी० ए० वी० नारंग इन्टर
कालेज घुघली, गोरखपुर।

—❀❀❀—

सुबह से शाम तक-
जमीं से आसमाँ तक-
हर तरफ पलकें बिछाए-
क्षितिज के उस छोर तक-
जिसे तुम ढूँढ़ डाले-
वह तेरे मन में ही है।

सर पर जठा जूट गाहे-
हाथ में लेकर कमण्डल-
बढ़ चले किस ओर तुम?
बावला बन, इस तरह-
जिस ज्योति के खातिर चले तुम-
वह ज्योति तेरे तन ही में है।

विराग और वैराग में पड़-
पेट में जलती है ज्वाला-
बढ़ चले दो पग, को मोड़ो-
जहां दुखिया विलखता-अश्रु कण-
जिस भव्य मूर्ति की कल्पना में-
मन्दिर में सर को पीट डाला-
याद रखो दोस्त मेरे-
वह तेरे हृदय ही में है।

मन्दिर में उसको बांध रखना-
जो कीर्तनों से रीझ जाए-
वह और कोई देव होगा-
जिसको है युग की परख-
जिस ब्रह्म को हो ढूँढते-
वह गरीब जन ही में है।

[शेष पृष्ठ ३५५ पर]

नवीन वेदान्त के प्रचार का परिणाम

[श्री पं० विश्वनाथ जी आर्योपदेशक घुघली]

कल्याण गोरखपुर का संक्षिप्त योग वसिष्ठ मेरे सम्मुख है। इसमें नवीन वेदान्त के सिद्धान्त का अनेक पौराणिक कथाओं द्वारा प्रतिपादन किया गया है। एक ही बात को बार२ दुहराया गया है। पुनरुक्ति दोष को लेखकों ने भी स्वीकार किया है। इस असत् सिद्धान्त के प्रचार का क्या परिणाम हो सकता है ग्रन्थारम्भ में ही पृ०१५ पर श्री भक्त रामशरणदास की ओर से चेतावनी दी गई है कि 'योग वासिष्ठ का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये।' लिखा है "मैंने देखा है कि ढोंगी लोग सन्तों का वेश बनाकर योग वासिष्ठ, विचार सागर लिये गांव गांव में घूमते हैं। चेला चेली बनाते हैं उनको मन माना आचरण करने के लिये प्रेरणा देते हैं और अपना उल्लू सीधा करने के लिये जगत् और जगत् के व्यवहारों को मिथ्या बताकर अहं ब्रह्मास्मि की रट लगा कर एक ब्रह्म बने हुए ये अनधिकारी कलियुगी पाखंडी लोग खुले आम शास्त्राचार के सर्वथा विरुद्ध आलस्य प्रमाद अकर्मन्यता विलास व्यभिचार अभक्ष भक्षण का प्रचार करते हैं और जनता को ब्रह्मज्ञान के नाम पर नरकानल में झोंकते हैं।"

परन्तु यह दोष किस का है? यदि पक्षपात रहित होकर आप विचार करेंगे तो यह इस नवीन वेदान्त के अवैदिक सिद्धान्त और इसका प्रचार करने वाली पुस्तकों के अतिरिक्त किसी दूसरे का नहीं। समाचार पत्रों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि पाखंडी साधुओं और ठगों से वही लोग लुटते हैं जो रसायन, पीतल से सोना बन जाने की झूंठी विद्या, कल्पित देवों, पौराणिक असम्भव कथाओं, साधुओं के चमत्कारों और वर शाप आदि मिथ्या धारणाओं पर अन्धविश्वास रखते हैं। इसी प्रकार जब नवीन वेदान्त की पुस्तकों से पढते हैं कि यह संसार स्वप्नवत् मिथ्या और रस्सी में सर्प ज्ञान की भान्ति भ्रम मात्र है। इस प्रकार सारा संसार ही जब असत् ही निश्चित होता है तो सदाचार और दुराचार में क्या भेद रह सकता है। स्वप्न का देना भी असत् और लेना भी असत् मरना मारना व्यभिचारादि सब मिथ्या ही हुआ करता है। इस अवस्था में किसी नवीन वेदान्ती को वेदान्ती किसी भी बात का उपालम्भ कैसे दे सकता है? किसी रोग के ऊपर के चिह्नों की चिकित्सा से कुछ लाभ नहीं हुआ करता। वास्तविक रोग के निदान और चिकित्सा से ही स्वास्थ्य की प्राप्ति हुआ करती है। रोग तो नवीन वेदान्त का असत् सिद्धान्त है। श्री रामशरण दास जी का दुःख प्रकाश तो इस का दुष्परिणाम मात्र है।

इसी योगवसिष्ठ के निर्वाण प्रकरण सर्ग १०८ में राजा शिखिध्वज और उसकी भार्या चूडाला की कथा आई है। दोनों नवीन वेदान्त के ब्रह्मज्ञानी हैं। चूडाला पति के ब्रह्मज्ञान की परीक्षा के लिये माया द्वारा जार समागम का दृश्य दिखाती है। राजा अपनी भार्या को पर पुरुष के साथ काम क्रीड़ा करते देखता है तो कहता है। तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा ही करो। तुम्हारे इस कृत्य से मेरे अन्तः करण में क्रोध तो तनिक भी नहीं है। परन्तु मैं अब तुम्हें अपनी वधू के रूप में केवल इस कारण से स्वीकार नहीं करता कि साधु पुरुष इसकी घोर निन्दा करते हैं।

बतलाइये ! यह शिक्षा मनुष्य को कितना निर्लज्ज और भीरु बनाने वाली धूर्तों को उत्साहित करने वाली और दुराचार को फैलाने वाली है।

निर्वाण प्रकरण उ० सर्ग २०० में राजा दशरथ वसिष्ठ जी से कथा श्रवण के पश्चात् उनकी पूजा के लिये कहता है।

"मैं पत्नियों सहित अपने इस शरीर से लौकिक और पारलौकिक सुख के लिये सञ्चित किये शुभ कर्म से तथा सब कृत्यों और सामन्तों सहित इस विशाल राज्य से आप की पूजा करता हूँ।"

यह पढ़कर यदि कोई शिष्य अपनी पत्नी को अथवा शिष्या अपने आपको और घर बार को ढोंगी गुरु के अर्पण करती है तो यह किस का दोष है ?

कल्याण मासिक सुन्दर सस्ता और प्रचुर संख्या में छपने वाला पत्र है। इस से हिन्दु जाति का संगठन, हानिकारक प्रथाओं की रोक थाम और हिन्दुओं का प्रचुर संख्या में विधर्मी बनने का बचाव किया जा सकता है। परन्तु शोक है कि पुराणों के प्रचार से यह हिन्दुओं की भ्रान्त धारणाओं को और दृढ़ कर रहा है।

[शेष ३५३ पृष्ठ का]

बदल गई दुनिया, अचम्भा-
तुम अभी बदले नहीं-
समय बदला-युग निराला-
प्रगति की दौड़ में ले भाग-
समय है कुछ कर दिखाने का-
मिल सकेगा भगवान तेरा-
वह भी आज, प्रगति ही में है।

देश के उत्थान में ही 'विजय'
जब देश अपना हंस रहा हो-
हर तरफ उल्लास सब में-
देखकर उज्ज्वल भविष्य-
बस तुम्हारे एक स्वर पर-
दीन-बन्धु रुक न सकेगा-
छोड़ दो पिछली बिडम्बना-
वह तुम्हारे संग ही में है।

नवदम्पति को भेंट देने योग्य अनुपम

★ उपहार ★

भारतीय स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण व चिरस्थायी बनाने के लिये आज भारत को कर्मवीर, बुद्धिमान् व शौर्य-सम्पन्न युवकों की आवश्यकता है। उस आवश्यकता की पूर्ति आपके हाथों में है।

क्या आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान समाज में सम्मान प्राप्त करे यदि हां! तो उसके लिए प्रयत्न करना आपका कर्त्तव्य है।

किस प्रकार ?

यह जानने तथा अनेक कर्त्तव्य से परिचित होने के लिए

इच्छानुसार संतानोत्पत्ति

यह पुस्तक मँगा कर अवश्य पढ़िए। पुस्तक पढ़ कर आप अनुभव करेंगे कि 'पुत्र या पुत्री, धर्मात्मा या पापी, शासक या चोर, जितेन्द्रिय या व्यभिचारी, गौर या श्याम वर्ण की" सन्तान का निर्माण तथा बर्थ कन्ट्रोल अपने ही हाथों में है।

इसकी महत्ता पढ़ने से ही विदित होगी

सजिल्द मूल्य २।।) डाक व्यय पृथक—

लेखक:—

वीरेन्द्र गुप्त

प्राप्ति स्थान—**वीरेन्द्रनाथ अश्विनी कुमार**

प्रकाशन मन्दिर, बाजार चौक, मुरादाबाद।

[जनवरी अङ्क से आगे]

व्याख्यान माला मूर्ख

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १० ॥

जिन मनुष्यों के अधिकार में न विद्या है न तप है, न दान है न ज्ञान, न शील है न धर्म है न गुण है वे मनुष्य मृत्युलोक में पृथ्वी पर भार होकर मनुष्यों के रूप में मृगवत् घूमते हैं ॥ १० ॥

सज्जन स्वभाव

धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चंचलाः ।
प्रभावोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः ॥ १ ॥

जो धनवान होने पर उन्मादी नहीं होते, युवा होते हुए भी चञ्चल नहीं होते, प्रभावशाली होते हुए भी अप्रमत्त नहीं होते, वे ही सज्जन लोग महामहिमाशाली कहलाते हैं ॥ १ ॥

अहो किमपि चित्राणि चरित्राणि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्त्यपि ॥ २ ॥

अहो आश्चर्य है कि विद्वानों के तथा महातमाओं के चरित्र भी बड़े अद्भुत होते हैं वह लक्ष्मी को तिनके के समान तुच्छ समझते हैं और लक्ष्मी प्राप्त होने पर उसके बोझ से नम्र भी हो जाते हैं ॥ २ ॥

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥ ३ ॥

जो सज्जन लोग लोक में श्रेष्ठ हैं उनके वज्र से भी कठोर हृदय को और फूल से भी कोमल हृदय को कौन जान सकता है। उनके रहस्य को कोई नहीं समझ पाता ॥ ३ ॥

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥ ४ ॥

जो मनुष्य उपकार करने वाले पर साधुता का व्यवहार रखता है उसके साधुपन में कोई गुण नहीं। किन्तु जो अपकार करने वालों के साथ भी साधुता का व्यवहार करता है वही सच्चा साधु कहलाता है ॥ ४ ॥

कुसुमस्तवकस्येव द्वे वृत्ती स्तो मनस्विनः।
मूर्ध्नी वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा ॥ ५ ॥

फूलों के गुच्छे की तरह मनस्वी लोगों की भी दो ही वृत्तियां होती हैं या तो वे सारे संसार के सर्वोपरि होते हैं, मूर्धा पर स्थित होते हैं अथवा वन में जीर्ण शीर्ण हो जाते हैं ॥ ५ ॥

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥ ६ ॥

उदय होते हुए भी सूर्य रक्त होता है और अस्त होते समय भी रक्त ही रहता है उसी तरह बुद्धिमान् सज्जनों का रूप भी विपत्ति में और संपत्ति में एक समान रहता है, विकृत नहीं होता ॥ ६ ॥

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥ ७ ॥

प्रत्येक पर्वत पर माणिक्य नहीं मिलते। प्रत्येक हाथी के मस्तक पर मोती नहीं होते। तथा प्रत्येक वन में चन्दन नहीं होता इसी प्रकार सज्जन भी सर्वत्र नहीं मिलते हैं ॥ ७ ॥

दन्तिदन्तसमानं हि निःसृतं महतां वचः।
कूर्मग्रीवेव नीचानां पुनरायाति याति च ॥ ८ ॥

सज्जनों के मुख से जो वचन निकलता है वह हाथी के दांत के समान होता है उस में परिवर्तन नहीं होता। और दुष्ट जनों का वचन कछुवे की ग्रीवा के समान होता है कभी इधर कभी उधर अस्थिर होता है ॥ ८ ॥

संपदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च धीरत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम् ॥ ९ ॥

जिसको सम्पत्ति पाने पर हर्ष नहीं होता और विपत्ति आने पर दुःख नहीं होता और रण में जो धीर रहता है ऐसे तीनों भुवनों के तिलक विरले सुत को कोई विरली ही माता जन्म देती है ॥ ९ ॥

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ॥ १० ॥

जिनका शरीर प्रसन्नता का घर है, हृदय दयावान है और वाणी अमृत के समान मधुर है और परोपकार जिनका कार्य है वह सज्जन किस के वन्दनीय नहीं होते ॥ १० ॥

मूकः परापवादे परदारनिरीक्षणेऽप्यन्धः ।
पङ्गुः परधनहरणे स जयति लोकत्रये पुरुषः ॥ ११ ॥

जो दूसरों के साथ कलह करने में मूक रहता है और दूसरों की स्त्रियों के देखने में अन्धा बनता है तथा दूसरे का धन हरण करने में पंगु बनता है ऐसा मनुष्य तीनों लोकों में विजय प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

शरदि न वर्षति गर्जति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव ॥ १२ ॥

शरत ऋतु में बादल गर्जता बहुत है किन्तु वरसता नहीं और वर्षा ऋतु में बिना गर्जन के ही वादल वर्षा करता है इसी प्रकार नीच मनुष्य बोलता ही है करता कुछ नहीं है। और श्रेष्ठ पुरुष बोलता नहीं है कर्म कर देता है ॥ १२ ॥

दुर्जन पद्धति

दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम् ।
मुखप्रक्षालनात्पूर्वं गुदप्रक्षालनं यथा ॥ १ ॥

मैं प्रथम दुर्जन को नमस्कार करता हूँ और उसके बाद सज्जन को करता हूँ। जैसे कि मुख धोने से पूर्व गुदा का प्रक्षालन करना होता है ॥१॥

उपकारोऽपि नीचानामपकारो हि जायते ।
पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम् ॥ २ ॥

नीच जनों का तो उपकार करना भी अपकार का ही कारण बन जाता है। जैसे सांपों को दूध पिलाना केवल उनका विप ही बढ़ाने वाला होता है ॥ २ ॥

खलः सर्षपमात्राणि परछिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ३ ॥

दुष्ट मनुष्य दूसरे के सरसों के समान क्षुद्र दोषों को भी देखता रहता है। और अपने बिल्व के समान बड़े दोषों को भी नहीं देखता है ॥ ३ ॥

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाऽग्रे हृदि हलाहलं विषम् ॥ ४ ॥

जो दुर्जन है यदि वह प्रिय बोलता है तो भी वह विश्वास के योग्य नहीं होता । ऐसे दुर्जन के जिह्वाग्र भाग पर मधु मिठास होता है और अंदर हलाहल विष होता है ॥ ४ ॥

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्दुरात्मनाम् ।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं सदात्मनाम् ॥ ५ ॥

जो दुरात्मा नर है उनके मन में कुछ और होता है वचन में कुछ और तथा कर्म में कुछ और ही होता है । जो महात्मा पुरुष हैं उनके मन, वचन तथा कर्म में एक ही बात होती है ॥ ५ ॥

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकाया विषं शिरः ।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम् ॥ ६ ॥

सांप के दांत में विष होता है और मक्खी के सिर में विष होता है । बिच्छु की पूंछ में विष होता है किन्तु दुर्जन के तो सम्पूर्ण अंगों में विष रहता है ॥ ६ ॥

स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधो गतिम् ।
अहो सुसदृशी चेष्टा तुलायष्टेः खलस्य च ॥ ७ ॥

जिस प्रकार तुला की डण्डी थोड़ा सा भार डालने से ऊपर को जाती है और थोड़ा निकालने से नीचे को जाती है उसकी डण्डी की तरह दुर्जन की चेष्टायें होती हैं ॥ ७ ॥

न जारजातस्य ललाटश्रृङ्गं कुलप्रसूतस्य न पाणिपद्मम् ।
यदा यदा मुञ्चति वाक्यबाणं तदा तदा जातिकुलप्रमाणम् ॥ ८ ॥

नीच कुल में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति के मस्तक में सींग नहीं होते और कुलीन के हाथ में कमल नहीं होता । किन्तु दुर्जन जब जब वाक्य रूपी बाण को छोड़ता है तब तब उसकी जाति और कुल का प्रमाण मिल जाता है ॥ ८ ॥

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं कर्णे कलंकिमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥ ९ ॥

पहले पैरों में गिरता है तत्पश्चात् पृष्ठ के मांस को खाता है पुनः शनैः शनैः कान में कुछ विचित्र शब्द करता है और फिर छिद्र पाकर निशंक होकर घुस जाता है । यह सारे के सारे दुष्ट के आचरण मशक (मच्छर) किया करता है ॥ ९ ॥

ते वै सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये,
समान्यास्तु परोपकारनिरताः स्वार्थाविरोधेन ये ।

तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥ १० ॥

वे ही सत्पुरुष कहलाते हैं जो अपना स्वार्थ छोड़कर दूसरे का काम सिद्ध करते हैं। सामान्य पुरुष वह कहलाते हैं जो अपने स्वार्थ के साथ ही साथ दूसरों का उपकार भी करते हैं। किन्तु वे मनुष्य राक्षस कहलाते हैं जो अपने स्वार्थ के लिये दूसरे के हित का नाश करते हैं। और जो बिना ही कारण दूसरे के हित का नाश करते हैं वह कौन हैं वह हम भी नहीं जानते ॥ १० ॥

गुरु महिमा

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १ ॥

जो मनुष्य अज्ञान रूपी तिमिर से अन्धे हैं उनकी आंखों को जिसने ज्ञान रूपी अञ्जन की शलाका से खोल दिया है उस गुरुवर को नमस्कार है ॥ १ ॥

आचिनोति हि शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि ।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यः परिकीर्त्यते ॥ २ ॥

शिष्य को जो शास्त्र के अर्थों का ज्ञान कराता है और सदाचार में उसे स्थापित करता है तथा स्वयं भी सदाचार का जो पालन करता है वह आचार्य कहलाता है ॥ २ ॥

अग्निहोत्री तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ ३ ॥

जो अग्नि होत्री है तप करता है और वेद का अध्ययन कराने वाला है तथा कल्प सहित और रहस्य सहित अध्यापन कराने वाला है उसे आचार्य कहते हैं ॥ ३ ॥

सत्यं गृणाति शिष्येभ्य इत्येवं यो निरुच्यते ।
हितोपदेशकश्चैव गुरुशब्दार्थ एव सः ॥ ४ ॥

मनुष्य जिसे शिष्यों का सत्य उपदेश करने वाला कहते हैं तथा जिसे हितोपदेशक कहते हैं वही गुरु कहलाता है क्योंकि यह गुरु शब्द के ही अर्थ हैं ॥ ४ ॥

गुरुभ्यस्त्वासनं देयमभिवाद्याभिपूज्य च ।
गुरुमभ्यर्च्य वर्धन्ते आयुषा यशसा श्रिया ॥ ५ ॥

गुरुओं का अभिवादन करके और पूजा करके उनको आसन देना चाहिये । क्योंकि गुरुओं की ही पूजा करके मनुष्य आयु, यश और श्री से बढ़ते हैं ॥ ५ ॥

विद्याऽभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥ ६ ॥

विद्या का अभ्यास तप, ज्ञान, और इन्द्रियों का संयम, अहिंसा का पालन, गुरु की सेवा, यह सब कर्म परम कल्याण करने वाले हैं ॥ ६ ॥

परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः ।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ ७ ॥

गुरु के साथ परिवाद करने वाला गधा बनता है और गुरु की निन्दा करने वाला कुत्ता बनता है और परिभोक्ता कृमि बनता है तथा ईर्ष्या द्वेष करने वाला कीट बनता है ॥ ७ ॥

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निःस्नेहान्बान्धवांस्त्यजेत् ॥ ८ ॥

दया से रहित धर्म का त्याग कर देवे । विद्या से हीन गुरु को छोड़ देवे । क्रोधमुखी भार्या का त्याग कर देवे और स्नेह रहित बन्धुओं को छोड़ देवे ॥ ८ ॥

—❀❀❀—

मित्रम्

किञ्चन्दनैः सकर्पूरैः तुहिनैः किञ्च शीतलैः ।
सर्वे ते मित्रगात्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १ ॥

कपूर के सहित शीतल चन्दन का लेप भी कुछ महत्व नहीं रखता तथा शीतलता बर्फ भी अपना कोई महत्व नहीं रखती। इनकी शीतलता तो मित्र के गात्र की सोलहवीं कला को भी नहीं छू सकती ॥ १ ॥

शीलं शौर्यमनालस्यं पाण्डित्यं मित्रसंग्रहः ।
अचोरहरणीयानि पञ्चैतान्यक्षयो निधिः ॥ २ ॥

शीतला शूरवीरता, अनालस्यता, बुद्धिमत्ता, और मित्र संग्रह यह पांच अक्षय निधि हैं जो कभी नष्ट नहीं होती और जिन्हें चोर नहीं चुरा सकता। ॥ २ ॥

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥ ३ ॥

देना, लेना, गोपनीय बातों का कहना, सम्मति लेना, खाना और खिलाना—ये छः मित्रता के लक्षण हैं ॥ ३ ॥

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः ।
ते नरा नरकं यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४ ॥

जो मित्र के साथ द्रोह करते हैं जो कृतघ्नी हैं और जो विश्वासघात करने वाले हैं यह तीनों जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं तब तक नरक का दुःख भोगते हैं ॥ ४ ॥

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः ।
कारणेन हि जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥ ५ ॥

इस संसार में कोई किसी का शत्रु नहीं है और न कोई किसी का मित्र ही है। किन्तु कारणों से ही मित्र बनते हैं तथा कारणों से ही शत्रु बनते हैं ॥ ५ ॥

मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति गावश्च गोभिस्तुरगास्तुरङ्गैः ।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः समानशीलव्यसनेषु सख्यम् ॥ ६ ॥

मृग मृगों के साथ रमण करते हैं, चलते हैं। गौ गौवों के साथ रहती हैं घोड़े घोड़ों के साथ विचरते हैं मूर्ख मूर्खों के संग रहते हैं और बुद्धिमान बुद्धिमानों के साथ रहते हैं क्योंकि जिनका समान शील और व्यसन होता है उन्हीं की परस्पर मैत्री होती है ॥ ६ ॥

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥ ७ ॥

दुर्जनों की मैत्री आरम्भ में गहरी होती है और फिर क्रम से क्षय होती जाती है तथा सज्जनों की आरम्भ में अल्प और बाद में वृद्धि को प्राप्त होने वाली होती है तथा दिन के पूर्वार्ध की तरह जो कि परिधि से भिन्न हैं जो बढ़ती ही है घटती नहीं तथा छाया के समान साथ देने वाली होती है ॥ ७ ॥

मुखं प्रसन्नं विमला च दृष्टिः कथाऽनुरागो मधुरा च वाणी ।
स्नेहोऽधिकं सम्भ्रमदर्शनञ्च सदाऽनुरक्तस्य जनस्य लक्ष्म ॥ ८ ॥

जिसका मुख प्रसन्न रहता है दृष्टि विमल होती है कहने में अनुराग तथा वाणी मधुर होती है, और जिसके अचानक दर्शन से ही अत्यन्त स्नेह होता है जिसका दर्शन प्रीतिकर होता है। यह सब लक्षण अनुरक्त जन के हैं, प्रेमी मनुष्य के हैं ॥ ८ ॥

अदृष्टिदानं कृतपूर्वनाशनममाननं दुश्चरितानुकीर्तनम् ।
कथाप्रसङ्गेन च नामविस्मृतिविरक्तभावस्य जनस्य लक्षणम् ॥ ९ ॥

जो दर्शन देना नहीं चाहता, पहले किये हुए कर्मों का नाशकारी है, मान नहीं करता तथा दुश्चरित्रों का कीर्तन करता है और कथा के प्रसंग में भी जो नाम भूला रहता है यह सब लक्षण विरक्त जन के हैं। जो मनुष्य विरक्त, प्रेम रहित होता है वही इनको करता है ॥ ९ ॥

पापान्निवारयति योजयते हिताय गुह्यानि गूहति गुणान्प्रकटीकरोति ।
आपद्गतञ्च न जहाति ददाति काले सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥१०॥

जो पाप कर्मों से बचाता है और हित कर्मों में प्रवृत्त कराता है तथा गोपनीय बातों का गोपन रखता है और गुणों को प्रकाशित करता है। आपत्ति आने पर जो साथ नहीं छोड़ता और समय पड़ने पर सहायता करता है उसी को विद्वानों ने अच्छे लक्षणों से युक्त सच्चा मित्र कहा है ॥१०॥

उदारः

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ।
वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥ १ ॥

सैंकड़ों मनुष्यों में एक शूर पैदा होता है और हजारों में एक पंडित बनता है और दस हजार मनुष्यों में एक वक्ता बनता है किन्तु दाता होता भी या नहीं कह नहीं सकते ॥ १ ॥

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ २ ॥

यह अपना है या पराया है यह गणना क्षुद्र हृदय वाले मनुष्यों की होती है किन्तु जो उदार चरित्र सज्जन है इनका तो सारी पृथिवी ही कुल होता है ॥ २ ॥

डिक्लेरेशन

(१) प्रकाशन का स्थान		...	...	...	दिल्ली
(२) प्रकाशन की अवधि		...	...	...	मसिक
(३) मुद्रक का नाम...		...	...	...	विजय कुमार
राष्ट्रीयता	...	...	...	...	भारतीय
पता...	...	...	...	...	४४०८ नई सड़क, दिल्ली
(४) प्रकाशक का नाम		...	...	...	विजयकुमार
राष्ट्रीयता	...	...	...	...	भारतीय
पता...	...	...	...	...	४४०८ नई सड़क, दिल्ली
(५) सम्पादक का नाम		...	...	...	विजयकुमार
राष्ट्रीयता	...	...	...	...	भारतीय
पता...	...	...	...	...	४४०८ नई सड़क, दिल्ली

(६) अखबार के मालिक:— M/s गोविन्दाराम हासानन्द नई सड़क, दिल्ली

मैं विजयकुमार यह घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

ता० ५-२-६१. प्रकाशक के हस्ताक्षर—विजयकुमार

वेद वैदिकधर्म के आधार हैं वेदों के प्रचार से ही "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का उद्घोष क्रियान्वित किया जा सकता है।

वेदों का सुन्दर आकर्षक रूप

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थमाला का चतुर्थ व पंचम पुष्प

यजुर्वेद शतकम्

इसमें यजुर्वेद के महर्षि दयानन्द के भाष्य से चुने हुए सौ मन्त्रों का संकलन किया गया है। प्रत्येक मन्त्र पर शीर्षक भी दे दिया गया है। मूल्य १)

सामवेद शतकम्

इस शतक में आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० तुलसीराम स्वामी के भाष्य से १०० मन्त्र दिये हैं। मूल्य १)

दोनों ही शतक बहुत बढ़िया कागज पर बड़े ही आकर्षक ढङ्ग से मोती से अक्षरों में छपाये गये हैं। सुन्दर नयनाभिराम आवरण से सुसज्जित दोनों ही पुष्प सुवासित हो उठे हैं। आर्यों के घरों में वेद अवश्य होना चाहिये अत: शीघ्र इन वेद शतकों को मंगाइये।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली।

स्वाध्याय उपयोगी पुस्तकें

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	४॥)
बाल्मीकि रामायण (शुद्ध संस्करण)	१२)
उपनिषदार्य्य भाष्य (आठ उपनिषदें)	६)
बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला	३)
ओंकार निर्णय	१॥)
सृष्टि का इतिहास	२)
वैदिक सिद्धान्तों पर बहनों की बातें	१।)
कर्तव्य दर्पण	१)
आर्य समाज क्या है ?	।॥)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
दर्शनान्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध	५)
दयानन्द चित्रावली	२॥)
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या	॥)
नास्तिकवाद	॥)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
विवाह और विवाहित जीवन	२॥)
ब्रह्मचर्य जावन-वीर्य नाश मृत्यु	।=)
वैदिक गृहस्थाश्रम	५)
ऋषि गाथा महाकाव्य	४)
संस्कार विधि विमर्श	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
तत्त्वज्ञान म० आनन्द स्वामी	३)
प्रभु दर्शन ,,	२॥)
प्रभु भक्ति ,,	१॥)
आनन्द गायत्री कथा ,,	॥≡)।
एक ही रास्ता ,,	।॥–)
सत्यनारायण व्रत कथा ,,	॥=)
भगवान शंकर और दयानन्द ,,	॥)
मानव जीवन गाथा वा जीवन गीत ,,	१)
भक्त और भगवान ,,	१)
उपनिषदों का सन्देश	१।)
वेद परिचय (स्वामी विवेकानन्द)	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्षयोग प्रदीपिका	३॥)
वर गृहस्थी	३॥)
गीत श्रद्धांजलि (भजन)	१)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१)
आदर्श सुधारक दयानन्द	॥=)
गृहस्थाश्रम (दयानन्द)	॥=)
बाल शिक्षक ,,	।=)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)
स्वामी दयानन्द और वेद	।)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
आर्य सत्संग गुटका	–।)
विश्व विज्ञान परमात्मा बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	॥)
मांस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	=।)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	–।)

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द	२०×३०	१)
गुरु विरजानन्द	,,	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	,,	१)
पण्डित लेखराम	,,	१)
महात्मा हंसराज	,,	१)
सचित्र जीवन घटना	१५×२०	॥)
महर्षि दयानन्द की महत्ता	२०×३०	॥)

मोटोज साइज १४×२२ मूल्य प्रत्येक ।–) सन्ध्या मन्त्र, प्रार्थनामन्त्र, संगठन सूक्त, यम नियम व्याख्या

मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक ≡) सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र, दीर्घ जीवन की प्रार्थना सत्यंवद धर्मं चर।

मोटोज १४×१४ प्रत्येक ।) ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम, गायत्री मंत्र

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क, देहली।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली में छपवाया।

वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

आर्य समाज विशेषांक

नवमार्य महासम्मेलन एवं सार्वदेशिक स्वर्ण जयन्ती के शुभावसर पर बड़ी सजधज के साथ प्रकाशित हो रहा है। इस अङ्क में आर्य जगत् के उच्च कोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख होंगे। आर्य समाज के सम्बन्ध में अन्यत्र ऐसी और इतनी सामग्री कदाचित् ही कहीं मिले अत: अधिक से अधिक प्रतियों का आर्डर दें।

आदरी-सहसम्पादक
जगदीशचन्द्र विद्यार्थी

हमारे पाठक क्या कहते हैं

राधा स्वामी मतालोचना विशेषांक को पढ़ कर बहुत ही खुशी हुई। इसके लिये मैं हृदय से बधाई देता हूँ। श्री अर्जुन प्रसाद आर्य नाथ नगर

राधा स्वामी मतालोचना विशेषाङ्क देखा। महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश के उद्देश्य को ध्यान में रख कर इस अङ्क द्वारा राधा स्वामी मत की आलोचना करके असत्य मतों के खण्डन का "वेद प्रकाश" का प्रयत्न सफल एवं सराहनीय है। इसके लिये हम आर्य जगत् की ओर से अधिकारियों के कृतज्ञ हैं। श्री पं० सुरेशशन्द्र जी वेदालंकार एम० ए०

आपका राधा स्वामी अंक बहुत ही उपयोगी रहा है। बड़े सुन्दर ढंग से आलोचना की गई है। श्री पं० धर्मेन्द्र नाथ जी शास्त्री

मैंने तथा रामपुर और नागपुर के आर्य समाज के मन्त्रियों ने विचार किया है कि इसका तर्जुमा करके सिन्धी में छपवाएं। टी० डी० मोटवानी

राधा स्वामी मत खण्डन अङ्क प्राप्त हुआ धन्यवाद राधा स्वामियों का इस तरफ़ तथा कल्याण कैम्प में बड़ा प्रचार है अतः हमारी इच्छा है कि सिन्धी भाषा में भी इसका अनुवाद हो। कृपया अपनी अनुमति दें।

श्री गंगाराम जी

यदि आप ?

१. आर्यावर्त्त के उच्चकोटि के लेख और ओजस्वी विचार पढ़ना चाहते हैं तो ४) वार्षिक चन्दा भेजकर शीघ्र ग्राहक बनिये। वर्ष में चार विशेषांक प्रकाशित किये जाते हैं—जिनका ग्राहकों से कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं लिया जाता।

२. लेखक और कवि हैं तो आर्यावर्त्त के लिए लेख और कविताएं भेजिए।

३. व्यापारी हैं तो आप अपने व्यापार की उन्नति के लिए आर्यावर्त्त में विज्ञापन दीजिए।

व्यवस्थापक—

आर्यावर्त्त, नया बाजार, लश्कर (ग्वालियर)

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापकः—स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

वर्ष—९ : चैत्र २०१८ वि० : अप्रैल १९६१ : वार्षिक मूल्य ३)

अंक—६ : दयानन्दाब्द १३६ : चैत्र १८८२ : विदेशों से ६ शिलिंग

अदान निन्दा

न वाउदेवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतोरयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ॥

ऋ० ॥ १० । ११७ । १ ॥

अर्थ—(देवा:+वैं) देवगण ने (क्षुधम्+न) सब में क्षुधा नहीं (ददु:) दी हैं, किन्तु (वधस्+इत्) वध ही दिया है । मानो क्षुधा एक प्रकार का वध है । ऐसी वधरूपी क्षुधा को अन्नदान से जो निवारण करता है वही वास्तव में दाता है । जो न देकर खाता है, (आशितम्) उस खाने वाले पुरुष को भी (मृत्यव:+उपगच्छंति) मृत्यु विविध प्रकार से प्राप्त होते हैं, अर्थात् क्षुधार्त और भोक्ता इन दोनों का मरण समान ही है । धननाशरूप दान से क्या प्रयोजन ? इस शंका की निवृत्ति के लिये आगे कहते हैं—(उतो) जिसलिए (पृणत:) दान प्रदान करने वाले पुरुष का (रयि:) धन (न) नहीं (उप+दस्यति) क्षीण होता है, अतः धन दातव्य है । किन्तु तद्विपरीत (अपृणन्) अदानी पुरुष कदापि (मर्डितारम्) सुख देने वाले को (न+विन्दते) नहीं पाता ।

आशय—धन की शोभा दान से है । अन्नादि की शोभा भूखे पियासे की क्षुधा पिपासा निवृत्ति से है । अदानी कँजूस पुरुष सदा दुःखी और चिड़चिड़ा सा रहता है । उसे सुख और आनन्द की प्राप्ति नहीं होती ।

★

सम्पादकीय टिप्पणियां

शास्त्रार्थ के लिये चैलेञ्ज—

आर्य वीरों के सामने से अनेक बार मैदान छोड़ कर भागने वाले श्री माधवाचार्य ने एक विज्ञप्ति निकाल कर स्थाई शास्त्रार्थ की घोषणा की है। ऐसा प्रतीत होता है जो धन उन्होंने अब तक बटोरा था वह समाप्त हो चुका है इसीलिए बासी कढ़ी में उबाल आया है। विज्ञप्ति में आर्य समाजियो से कुछ प्रश्न पूछे हैं। इन सभी प्रश्नों का उत्तर अनेक बार दिया जा चुका है सनातन धर्मी अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर भी उनका खण्डन नहीं कर सके। मैं पुन: उन सभी प्रश्नों के उत्तर देने की बात सोच रहा था परन्तु उन प्रश्नों में कुछ प्रश्न ऐसे भी हैं जो महर्षि दयानन्द पर लागू नहीं होते। कारण जो उद्धरण शास्त्री जी ने दिये है वे ऋषि के ग्रन्थों में हैं ही नहीं। मैं पहले शास्त्री जी तथा सनातन धर्म के अन्य विद्वानों से यह पूछ लूं कि ये उद्धरण कौन से संस्करण के हैं यदि पौराणिकों ने वे स्थल निकाल दिये तो मैं उनके उत्तर दूंगा अन्यथा लोगों को यह तो अच्छी प्रकार पता लग जायेगा कि पौराणिक अपनी झूंठी धाक जमाने के लिये किस प्रकार अनर्गल प्रलाप करते हैं शास्त्री जी लिखते हैं—

संस्कार विधि पृष्ठ १३५ का आशय है कि "विवाह से पूर्व वर कन्या एकान्त स्नानागार में इकट्ठे स्नान करते हुए एक दूसरे की मूत्रेन्द्रिय पर जल डालना" इत्यादि।

सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास पृष्ठ १२३ में लिखा है कि 'पति के मर जाने पर (उसका शव जलाने से पूर्व हो) आर्य समाजी अंगुली निर्देश पूर्वक विधवा से कहें कि तू इस मरे हुए पति को छोड़ कर हम जीवितों में से किसी को वर ले।'

स० प्र० पृष्ठ १२८ में लिखा है कि 'यदि दीर्घ रोगी पुरुष की पत्नी से अथवा सगर्भा के पति से न रहा जाये तो वह अन्य से व्यभिचार कर ले।'

श्री माधवाचार्य के प्रैस में ही मुद्रित विज्ञप्ति से हमने उपर्युक्त तीन स्थल दिये हैं। माधवाचार्य ही क्या संसार के जितने भी सनातनी और पौराणिक विद्वान् हैं मैं उन सब को चैलञ्ज देता हूँ कि यदि उन में शक्ति

और सामर्थ्य है तो इस सफेद झूंठ को सिद्ध करें और इन स्थलों को निकाल कर दिखायें अन्यथा अपनी पराजय स्वीकार करें।

शास्त्री जी! दिन दहाड़े लोगों की आंखों में धूल झोंकना बन्द करो और अपने कुकृत्य के लिये क्षमा मांगों तथा प्रायश्चित करो। एक सनातनी इतनी झूंठ भी बोल सकता है मुझे ऐसी आशा नहीं थी। इस असत्य भाषण से आप आर्य समाज का तो कुछ न बिगाड़ सकेंगे हां जब आप इन स्थलों को महर्षि दयान्द के ग्रन्थों से न दिखा सकेंगे तो आप के सनातन धर्म से और आप से लोगों की श्रद्धा हट जायेगी।

शास्त्री जी! आप ने लिखा है कि आप प्रतिवादियों के लिये भयंकर हैं परन्तु मैं आपके लिये भयंकरतम सिद्ध होऊंगा। आप इस जन्म में तो क्या सात जन्म में भी इन स्थलों को महर्षि के ग्रन्थों से न दिखा सकोगे।

शास्त्री जी! इस भ्रम को भी दूर कर दीजिये कि आर्य समाज में छन्द बद्ध शास्त्रार्थ करने वाले नहीं हैं। आपका मान मर्दन करने के लिये अभी आर्य जगत् में बहुत से महारथी बैठे हुए हैं। आप जब चाहें जिस विषय पर चाहें शास्त्रार्थ कर सकते हैं आर्य समाज का द्वार सदा खुला है।

आर्य समाज में जीव का स्वरूप गड़बड़ में

पाठक! चौंकिये नहीं। ये शब्द मेरे नहीं है अपितु ये शब्द एक ट्रैक्ट का शीर्षक है। ट्रैक्ट के लेखक हैं श्री रघुनाथ सिंह विद्याव्यसनी। लेखक ने "जीव स्वरूप से थोड़ा ज्ञानी है" इस बात को लेकर हवाई महल खड़ा किया है। लेखक ने अपने आपको विद्याव्यसनी लिखा है परन्तु प्रतीत ऐसा होता है कि उन्होने ऋषि दयानन्द के भी सारे ग्रन्थों का पारायण नहीं किया वेद दर्शन और उपनिषद् आदि की तो बात ही क्या? 'आर्यो-द्देश्य रत्न माला" में महर्षि दयानन्द ने जीव का ही स्वरूप इस प्रकार लिखा है—

"जो चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य है वह जीव कहाता है।"

यदि जीव अल्पज्ञ=थोड़े ज्ञान वाला नहीं तो क्या सर्वज्ञ है? यदि यह कहो कि जीव सर्वज्ञ है तो और बातों को छोड़िये, आप विद्या व्यसनी हैं क्या आप विज्ञान, कला, गणित, इञ्जनीयरिंग, फ्रेंच, जर्मन रशियन आदि सभी भाषाओं को जानते हैं। यदि नहीं जानते और जैसा कि मुझे पता है आप नहीं जानते, तो फिर जीव अल्पज्ञ हुआ अथवा नहीं।

विद्याव्यसनी जी ! आपने १६ पृष्ठ व्यर्थ में काले कर दिये। यदि आर्य समाज में जीव का स्वरूप गड़बड़ में है तो उस का वास्तविक स्वरूप क्या है अथवा क्या हो सकता इसका आपने भी निर्देश नहीं किया करते भी कैसे आप स्वयं ही गड़बड़ में है।

सर्व वेद शाखा सम्मेलन

१८ फरवरी से २६ फरवरी तक देहली में स्वामी करपात्री जी के तत्वावधान में एक सर्व वेद शाखा सम्मेलन हुआ था। तीन दिन मैं भी इस सम्मेनन में सम्मिलित हुआ था। इस सम्मेलन को देखकर आयोजकों की दशा पर रोना आया। नाम तो था सर्व वेद शाखा सम्मेलन परन्तु बात हुई गीता, पुरान और तुलसीकृत रामायण की। वेद के जो विषय सूची में छपे हुए थे जिन पर शास्त्रार्थ (वस्तुतः परस्पर आलाप) होना था उन विषयों पर भी वेद के प्रमाण नहीं दिये गये। श्री चन्द्र शेखर शास्त्री और श्री दिवाकर जी शास्त्री के परस्पर जो आलाप हुए उन दो दो - घण्टे के आलापों में भी वेद का एक भी मन्त्र नहीं सुनाया गया।

सारा आयोजन बहुत ही नीरस एवं फीका रहा। उपस्थिति दिन में स्त्री पुरुष सब मिलाकर २५०-३०० से अधिक नहीं होती थी। रात्रि में इस से भी कम होती थी।

जितने भी व्याख्यान दाता आते थे सब ही अपने घर में बैठकर केवल मात्र आर्य समाज की आलोचना करते थे इसके अतिरिक्त मानो उन के पास और कोई विषय ही नहीं हो। क्या आर्य समाज को कोसना ही सर्व वेद शाखा सम्मेलन है ? आप शास्त्रार्थों से तो बच कर भागते हैं घर में बैठ कर अपने मंच पर जो चाहें कह सकते हैं।

इस सम्मेलन में पौराणिकों ने कम से कम एक लाख रुपये पर पानी फेर दिया परन्तु न वेद प्रचार की कोई बात हुई न मानव उत्थान की और न देश निर्माण की। इस एक लाख रुपये से यदि इस का सदुपयोग किया जाता तो चारों वेद शुद्धतम रूप में छप सकते थे परन्तु इस कार्य को करे कौन? यदि यह एक लाख रुपया ईसाई प्रचार निरोध में लगता तो कितना लाभ होता ? यदि इस एक लाख रुपये की कुछ विद्यार्थियों को छात्र वृत्तियां दी जाती तो वे वस्तुतः वेद पढ़ कर उस का प्रचार कर सकते थे। जो हुआ सो हुआ कम से कम आगे के लिये तो चेतो !

यज्ञ चिकित्सा

(YAJNOPATHY)

[लेखकः—डाक्टर सोमराज के० आर्य]

इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रार्थं पुत्रकारणात् ।
अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः ॥
(बाल्मीकि रामायण बाल कांड, १५-२)

अर्थ—महाराज ! आपको पुत्र प्राप्ति के लिये अथर्ववेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करूंगा। वेदोक्त विधि के अनुसार अनुष्ठान करने पर वह यज्ञ अवश्य सफल होगा।

जब पहली बार मैंने यह श्लोक पढ़ा तो मेरे दिल में एक लग्न सी पैदा हुई कि जब यज्ञ करने से श्री रामचन्द्र जैसा श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो सकता है, अर्थात् यज्ञ करने से मनुष्य के अन्दर पुत्र पैदा करने की शक्ति हो सकती है तो अवश्य यज्ञ अन्य रोगों को भी नाश करता होगा। इस लग्न ने मेरे हृदय में एक भावना जाग्रत कर दी और इस ध्येय को पूरा करने के लिये मैंने परिश्रम जारी रक्खा। सिन्धी होने के कारण मुझे संस्कृत और हिन्दी का अभ्यास इतना न था कि मैं इन विषयों पर विद्वानों का लिखा हुआ साहित्य पढ सकूं या समझ सकूं। मैं करांची के सरकारी सिविल अस्पताल में नौकरी करने लगा तो वहां केवल अंग्रेजी औषधियां ही काम में आती थीं किन्तु उनसे कुछ सन्तोष जनक लाभ मुझे नहीं देखने में आता था। वहां मैं संस्कृत और हिन्दी जोर शोर से पढ़ने लगा और आर्यवीर दल का शिक्षक होने के कारण और भी लग्न से अध्ययन करने लगा। अंग्रेजी तरीके (Allopathy) की औषधियों का तो पहले ही ज्ञान था और मेरे पिता हकीम थे अतः मुझे देशी औषधियों का भी ज्ञान हो गया था। मैं जड़ी बूटियों के गुण और स्वभाव की परीक्षा करने में लगा ही था, कि अचानक एक तूफान आया जिसने मुझे अपनी जन्म भूमि से अलग कर दिया। अजमेर में पहुँच कर मैंने अपने ध्येय पर पहुंचने का प्रयत्न जारी रक्खा और एक एक औषधि से उठते हुए गैस का गुण, और स्वभाव अनुभव करता रहा।

पर्याप्त सोच विचार और दस वर्षों के परीक्षण के पश्चात् मैंने यज्ञ चिकित्सा द्वारा बीमारियों का नाश करने का परीक्षण किया इसका सफलता का प्रमाण हमें उन रोगियों से सिद्ध हुआ जिन्होंने अपने जुकाम, नजला, खांसी तथा दमे का इलाज यज्ञ चिकित्सा द्वारा आर्य समाज गांधी

नगर, देहली में कराये। सुन्दर सेवक सभा बम्बई और प्रोफेसर ताराचन्द गाजरा एम. ए. बम्बई द्वारा लगाये हुए मुफ्त कैम्प में करवा कर लाभ प्राप्त किया।

यज्ञ चिकित्सा क्या है ?

बीमारी नाशक औषधियों को अग्नि में विधि पूर्वक डाल कर उनमें से उठती हुई गैस (Fumes) के लम्बे लम्बे साँस लेने (Inhalations) और ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के नियमों के पालन करने को यज्ञ चिकित्सा कहते हैं।

यज्ञ चिकित्सा को मैं सब तरीकों से बीमारियों को सदा के लिये नाश करने का सर्वोत्तम तरीका क्यों मानता हूँ ?

(१) वैज्ञानिकों तथा वेदों का यह मत है कि कोई भी वस्तु नाश नहीं होती परन्तु समयानुसार उनके रूप में परिवर्तन अवश्य होता है गुण, कर्म तथा स्वभाव में कोई भी परिवर्तन नहीं होता। इस मत के अनुसार जो औषधि अग्नि में जलाई जायेगी तो उनका गुण कर्म तथा स्वभाव उसके उठते हुये गैस से हमें अवश्य प्राप्त होंगे।

(२) वैज्ञानिकों, वैद्यों, डाक्टरों तथा हकीमों का इस बात पर एक मत है कि जो शक्ति सूक्ष्म (Subtle) में है वह स्थूल में नहीं और इसी कारण वे भस्म आदि बनाते हैं। परन्तु उन भस्म इत्यादि से भी यदि कोई सूक्ष्म परमाणु किसी और औषधि के मिलते हैं तो वह है यज्ञ गैस (Fumigations) जो हम विधि पूर्वक बीमारी नाशक औषधियों को जला कर प्राप्त कर सकते हैं।

(३) बीमारी के कीटाणु (Germs) सूक्ष्म होने के कारण उनको नाश करने के लिये सूक्ष्म परमाणु की आवश्यकता होती है जो केवल बीमारी नाशक औषधियों के मिश्रण को अग्नि में जलाकर ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

(४) जो औषधि मुंह से खाई जायेगी वे कई रसों से मिलकर शरीर का दौरा कर तथा रक्त से मिलकर फिर कहीं जाकर बीमारी के कीटाणुओं का नाश करेगी या उन्हें निर्बल करेगी। यज्ञ द्वारा पैदा की हुई गैस तत्काल दिमाग (Brain) सांस के नलियों तथा फेफड़ों में पहुंच कर बीमारियों का ही नाश कर देगी और झिल्ली (Mucus Membrane) को शक्ति प्रदान करेगी।

(५) यज्ञ गैस और कोई शारीरिक हानि न पहुँचाकर उन कीटाणु में शक्ति पैदा करेगी जो हमारे शरीर के अन्दर बीमारी के कीटाणु से लड़ते हैं तथा उन्हें नाश करते हैं। यज्ञों का तरीका अपनाने से बीमारी के कीटाणु तुरन्त नाश हो जाते हैं तथा शरीर के अन्दर शक्ति (Vibality) बढ़ती रहती है जिसके कारण बीमारी सदा के लिये छूट जाती है तथा नई बीमारी आक्रमण नहीं कर सकती इसी कारणवश मैं यज्ञ चिकित्सा को सर्वोत्तम प्रणाली मानता हूँ।

शान्त

[ले०—सत्यभूषण 'वेदालंकार' एम० ए०]

हे आर्यवीर ! ललकार उठो ।
भौतिकवादी पाशों में जग, सर्वस्व लुटा बैठा है अब ।
साम्राज्यवाद का दानव भी, दिखलाता है नूतन करतब ।।
पीड़ित, शोषित मानव के, अन्तर में मच रही नई हलचल ।
यन्त्रों से और एटमों से संनद्ध आसुरी है दलबल ।।
तुम सुप्त मानवों के अन्तर की तारों को झंकार उठो ।
आई युग की पुकार फिर से, बढ़ आर्य वीर ललकार उठो ।
हे आर्य वीर ललकार उठो ।। १ ।।

अज्ञान और अन्याय बड़ा, वीरान हुई सुन्दर धरती ।
उसके सुपुत्र क्रन्दन करते, अगणित सन्तापों से जलती ।।
माता वसुन्धरा की छाती, को रौंध रहा है अत्याचारी ।
उसके पग बढ़ने से पहले, तुमको करनी है तैयारी ।।
नव-जीवन का फिर शंख फूंक तुम सिंह समान दहाड़ उठो ।
आई युग की पुकार फिर से...... ।। २ ।।

छाया अभाव सर्वत्र आज, रोगों ने कदम बढ़ाया है ।
भ्रष्टाचारी के शासन से, सारा समाज घबराया है ।।
यह ब्लैक मारकिट की चक्की, दीनों को है नित पीस रही ।
कंकाल बन रहे हैं मानव उनके शव पर है खीझ रही ।।
तुम प्राण हथेली पर रख कर फिर एक बार हुंकार उठो ।
मिट जाय सभी अन्याय त्रास बढ़ आर्यवीर ललकार उठो ।। ३ ।।

है खण्ड खण्ड भारत माता का वक्षःस्थल क्यों सोये हो ।
क्या नहीं दयानन्द की वाणी कानों में गूंजी खोये हो ।।
श्रद्धानन्द का बलिदान नहीं, क्या तुम को याद दिलाता है ।
संगीनों के आगे "छाती छेदो' सन्देश सुनाता है ।।
पुरखों की अमर प्रेरणा ले, माता का भाग्य संवार उठो ।
आई युग की पुकार फिर से...... ।। ४ ।।

भूखों की भूख मिटानी है, प्यासों की प्यास बुझानी है ।
पीड़ित मानव की आहों की सुननी यह करुण कहानी है ।।
दीनों का दैन्य मिटाना है, वदिक सभ्यता को लाना है ।
नित नूतन वादों के भैरव भूतों को मार भगाना है ।।
निश्चय ही विजय करेगी तव शृङ्गार प्रमाद बिसार उठो ।।
आई युग की पुकार फिर से...... ।। ५ ।।

यजुर्वेद शतकम्--सामवेद शतकम्

यजुर्वेद में महर्षि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य से सौ चुने हुए मन्त्र दिये गये हैं तथा सामवेद शतक में आर्य समाज के विद्वान् पं० तुलसीराम स्वामी कृत भाष्य से सौ मन्त्र चुने गये हैं ।

पुस्तक बहुत बढ़िया कागज मोती से अक्षरों में बहुत शुद्ध छापी गई हैं मुख पृष्ठ भी अति सुन्दर है । पुरस्कार में, उपहार में तथा भेंट देने योग्य यह पुस्तक अनुपम बन गई है । प्रत्येक शतक का मूल्य १) है ।

आर्य विद्वानों तथा नेताओं की सम्मतियां:--

पूज्यपाद श्री महात्मा आनन्दभिक्षु जी महाराज:—आपने जिस पद्धति से वेद प्रचारार्थ यजुः और सामवेद के अर्थ सहित शतक प्रकाशित किये हैं, इसी प्रकार ऋग् और अथर्व के शतक भी प्रकाशित कर धन्यवाद के पात्र बनें। आपने यह शुभ कार्य करके आर्य जनता को अनुग्रहित किया है । सब प्रेमियों से साग्रह प्रार्थना है कि वह प्रतिदिन इनका पाठ करके पुण्य के भागी बने ।

आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ कुलपति महाविद्यालय ज्वालापुर:—गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली द्वारा प्रकाशित यजुर्वेद शतकम् तथा सामवेद शतकम् (गुटका रूप में) अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर आकर्षक रूप में मुद्रित हुई हैं। प्रत्येक में सौ सौ मन्त्र हैं । जिनके हिन्दी में सरल अर्थ दिये गये हैं । वस्तुत: ऐसे सस्ते आकर्षक साहित्य से ही आर्य समाज का प्रचार होगा । वेद गुटका का मूल्य १) है जो समय को देखते हुए अधिक नहीं ।

श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री एम० पी०:—आपकी भेजी हुई दो पुस्तकें जो वेदों के १००-१०० मन्त्रों का उत्तम संग्रह करके आपने प्रकाशित की है मिलीं। आपका यह प्रयास सचमुच ही स्तुत्य है । मैं इसलिए भी आपके इस सद्प्रयास की सराहना करता हूं कि आप आर्य साहित्य के अधिकाधिक प्रकाशन में यत्नशील है ।

श्री पं० वासुदेवशरण अग्रवाल काशी विश्वविद्यालय वाराणसी:—सामवेद शतकम् और यजुर्वेद शतकम् के दो सुन्दर संकलन देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। ब्र० जगदीश चन्द्र विद्यावाचस्पति ने सौ सौ मन्त्रों का चुनाव बहुत योग्यता से किया है । वैदिक मन्त्रों के प्रचारार्थ इस नवीन आकर्षक प्रयत्न का स्वागत करता हूं ।

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय इलाहाबाद:—गुटके दोनों ही बहुत सुन्दर हैं । आकृति मनोहारिणी है । मन्त्र बहुत अच्छे हैं । इससे वेद प्रचार में विशेष सहायता मिलेगी । मेरा आशीर्वाद है ।

शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० अमरसिंह जी आर्यपथिक कलकत्ता:— आपके भेजे हुए शतक मिले। देखते ही दिल फड़क उठा। हृदय हर्षित हो गया। यह कार्य आपने बहुत ही उत्तम किया है। आपने तो उन शतकों को इतना सुन्दर छपाया है कि उनकी प्रशंसा न करना पाप प्रतीत होता है। यदि ये सुन्दर शतक हाथोंहाथ न निकल जायें तो समझना चाहिए कि लोग अन्धे हो गये।

मैं यत्न करूंगा कि इनकी सौ सौ प्रतियां यहां मंगाऊं। ये पुस्तकें घर २ में पहुंचनी चाहिए।

श्री प्रि० नित्यानन्द जी वेदालंकार एम० ए०:— वेदों के शतक मिले। छपाई विशेष रूप से आकर्षक है। संकलन बुद्धि पूर्वक हुआ है। शतक सम्पूर्ण वेद प्रेमियों के लिए निश्चित रूप से संग्रह योग्य है।

श्री पं० नरेन्द्र जी मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद:— श्री ब्र० जगदीशचन्द्र विद्यार्थी विद्यावाचस्पति द्वारा वेद मन्त्रों का संकलन और सम्पादन बहुत ही उत्तम तथा स्वाध्यायगम्य हुआ है। इन शतकों की छपाई तथा इन का मुख पृष्ठ बड़ा ही आकर्षक व सुन्दर है। आप मेरे ही नहीं अपितु समस्त आर्य जगत् द्वारा धन्यवाद के पात्र हैं। मुझे आशा है कि आर्य जनता आपके इस संग्रह को पढ़ वेद पढ़ने की प्रेरणा पायेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती के इस महान् उद्देश्य को आत्मसात् करेगी कि 'वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'

श्री पं० देव प्रकाश जी पातञ्जल एम० ए०:— इन शतकों में चुने हुए आवश्यक मन्त्रों का संग्रह है। जीवन की प्रत्येक समस्या को वेद से कैसे सुलझाया जाय इसके लिए संग्रह मार्ग प्रदर्शक है। पुस्तक की छपाई तथा गेट-अप अत्यन्त ही दर्शनीय तथा आकर्षक हैं। पुस्तक को देखते हुए मूल्य बहुत ही थोड़ा है। अतएव आर्य समाजों में इस पुस्तक का शीघ्र ही प्रचार होना चाहिए।

❃ ❃ ❃

ऋग्वेद शतक और अथर्ववेद शतक

शीघ्र ही छपेगें।

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८ नई सड़क, दिल्ली।

सत्यार्थ प्रकाश लेखमाला—२

ईश्वर के विविध नाम और मंगलाचरण

[ले.–सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम. ए. एल. टी., डी. ए. वी. कालेज गोरखपुर]

अपने पहले लेख में सत्यार्थप्रकाश के आधार पर ओ३म् का विभाजन ९ नामों में किया और उन नामों में जड़ और चेतन संसार की सब अवस्थाओं और शक्तियों का समावेश हो जाता है। इसलिए इन अवस्थाओं और इन शक्तियों की दृष्टि से 'ओ३म्' की व्याख्या ९ शब्दों द्वारा पूर्ण हो जाती है अतः उपर्युक्त वर्गीकरण पूर्ण वर्गीकरण प्रतीत होता है और इसीलिए 'ओ३म्' शब्द का जाप करने का विधान किया गया है। इससे परमेश्वर के 'पुरुष' रूप का पूर्णज्ञान होता है।

परन्तु 'ओ३म् शब्द की व्याख्या के रूप में किये गये स्वामी जी के वर्गीकरण को देखकर स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है कि विराट्, अग्नि आदि नाम परमेश्वर से भिन्न अर्थों के वाचक क्यों नहीं? ब्रह्माण्ड पृथिवी आदि भूत, इन्द्रादि देवता और वैद्यक शास्त्र में शुण्ठ्यादि औषधियों के ये नाम हैं या नहीं? और यदि ये नाम पृथ्वी आदि भूतों औषधियों इत्यादि के हों तो परमात्मा के कैसे हुए?

स्वामी जी ने इसका उत्तर बड़े सरल और रोचक ढंग से दिया है। उन्होंने बताया कि यह शब्द परमात्मा के अर्थ के वाचक भी हैं। क्योंकि एक वस्तु के अनेक नाम और एक नाम की अनेक वस्तुयें हुआ करती हैं। परन्तु बात करते हुए, लेख पढ़ते हुए, बड़े बड़े शास्त्रों एवं ग्रन्थों का अध्ययन करते हुए हमें प्रकरण का ध्यान रखना चाहिये। यदि हम आकांक्षा, आसक्ति और प्रकरण का ध्यान रखे बिना अर्थ करेंगे तो सभ्य समाज में उपहास के पात्र बन जायेंगे। अपने कार्यों में भी हमें असफलता मिलेगी। जैसे 'सैन्धव' शब्द दो अर्थों का वाचक है। 'सैन्धव' शब्द का अर्थ नमक भी है और सैन्धव शब्द का अर्थ घोड़ा भी। यदि कोई व्यक्ति अपने सेवक से भोजन करते समय 'हे भृत्य त्वं सैन्धवमानय' कहे अर्थात् हे भृत्य तू सैन्धव ला कहे और वह सैन्धव (नमक) के स्थान पर सैन्धव (घोड़ा) ला कर खड़ा कर दे तो हम अवश्य ही उस भृत्य को मूर्ख समझेंगे। पर यदि इसके विपरीत गमन समय में लवण और भोजन समय में घोड़े को लावे तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि उसका स्वामी उससे क्रुद्ध होकर

कहेगा कि तू मूर्ख है, तुझे तनिक भी बुद्धि नहीं, जरा सी बात नहीं समझता कि गमन समय में घोड़ा और भोजन के समय नमक लाना चाहिए। इसी प्रकार अग्नि आदि शब्दों को भी हमें प्रसंगादि के द्वारा ठीक अर्थ करना चाहिए। परन्तु प्रसंगादि का यह भी तात्पर्य नहीं कि हम अग्नि का अर्थ जल और जल का अग्नि के लिए प्रयोग प्रारम्भ कर दें। ऐसी दशा में अब प्रश्न उठता है कि अग्नि आदि शब्द परमात्मा के नाम के वाचक कैसे हैं ?

ठीक है, वैदिक शब्दों का अर्थ खोजने के लिए हमें इधर उधर अधिक भटकने की आवश्यकता नहीं। उसके लिए हमें वेदों के पास जाना चाहिए। वैदिक शब्दों के कोष तो वेद स्वयं ही हैं। वेदों में अनेक ऐसे प्रमाण आते हैं जिन से अग्नि आदि शब्द परमात्मा के यथार्थ रूप में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरण के लिए निम्न मंत्र देखे जा सकते हैं:—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

जो एक अद्वितीय वस्तु ब्रह्म (परमात्मा) है उसके ही इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, यम गरुत्मान और मातरिश्वा आदि सब नाम हैं।

इसी प्रकार एक और मन्त्र देखिये:—

तदेवाग्निस्तदादित्यः तद् वायु तदु चन्द्रमा ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

अर्थात् वह परमात्मा ही अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप और प्रजापति है।

इस प्रकार 'इन्द्र सूर्यमरोचयत्' 'प्राणस्य नमो यस्य सर्वमिदं वशे इत्यादि अनेकों प्रमाणों से यह बात सिद्ध की जा सकती है कि वेद में यह बात स्पष्ट रूप से पाई जाती है कि अग्नि आदि नाम भौतिक पदार्थों और परमात्मा के भी हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए स्वामी जी ने यह बताया है कि किस शब्द द्वारा हम परमेश्वर के किस गुण को, किस शक्ति को याद करते हैं। वास्तव में परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म और स्वभाव हैं इसलिए उसके अनन्त नाम भी हो सकते हैं। उनके ज्ञान के लिए हमें वेदादि शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करना चाहिए। यदि हम उनका पूरा-पूरा अध्ययन करेंगे तो हमें पूरा ज्ञान हो सकेगा अन्यथा ज्ञान के बिना संशयों में पड़े रहेंगे। परिणाम होगा, 'संशयात्मा विनश्यति' अर्थात् हम अपना नाश स्वयं कर लेंगे।

इस प्रकार सरस्वती, नारायण, विष्णु आदि परमेश्वर के अनन्त गुणों के आधार पर अनन्त नाम तथा उनकी व्युत्पत्तियां प्रदर्शित करने के

बाद मंगलाचरण सम्बन्धी प्रश्न उपस्थित हुआ है। प्रश्न यह है कि यदि सभी नाम परमेश्वर के हैं तो हम जब नया कार्य शुरू करें तो उसके प्रारम्भ में मंगलाचरण करें या न करें ?

स्वामी जी ने उस शंका का निवारण करते हुए लिखा है कि "मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फल दर्शनाच्छ्रुतितश्चेति" यह सांख्य शास्त्र का वचन है। इसका भाव यह है कि जो न्याय, पक्षपात रहित, सत्य, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मंगलाचारण कहलाता है। इसलिये ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त में मंगलाचरण करने का तो यह अभिप्राय होगा कि इन स्थानों पर तो मंगलाचरण हो अन्यत्र चाहे कुछ भी हो। इसलिए हमें न केवल आदि मध्य और अन्त में अपितु सर्वत्र ही मंगलाचरण करने का लक्ष्य रखना चाहिए। और जब सर्वत्र मंगलाचरण होगा तो उस दशा में किसी विशेष स्थान पर मंगलाचरण करने का कोई विशेष प्रश्न ही नहीं उठता।

अब रहा प्रश्न यह कि जब परमेश्वर के अनन्त नाम है तो नारायण, सरस्वती, शिव आदि भी है। इसलिए ग्रन्थों में "सीतारामाभ्यां नमः" "राधाकृष्णाभ्यां नमः" "नारायणाय नमः" "सरस्वत्यैनमः" "दुर्गायैनमः" इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनका ग्रन्थ या कार्य के प्रारम्भ में प्रयोग उचित हैं या अनुचिन ?

इन नामों से कहीं कहीं परमेश्वर का नाम भी होता है परन्तु यह मानवीय पुरुषों के भी नाम हैं और इन पुरुषों को परमेश्वर मानकर प्रयुक्त करने से, असत्य प्रयोग होने के कारण प्रारम्भ से अमंगल का का कार्य हो जाता है अतः इनका प्रयोग ठीक नहीं। ऋषि ग्रन्थों में भी यह प्रयोग नहीं है। वहां 'ओ३म्' या 'अथ' ही देखने में आते हैं। जैसे:—

'अथ शब्दानुशासनम्' अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते। व्याकरण महाभाष्य।

'अथ योगानुशासनम्' 'अथेत्ययंधिकारार्थं' 'योग शास्त्र'। 'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत' छान्दोग्योपनिषत्। 'ओमित्येदक्षरमिदं सर्वं तस्योपाख्यानम्। माण्डूक्य उपनिषद्।

इस प्रकार प्रथम समुल्लास में स्वामी जी ने संक्षेप से ईश्वर के नामादि के विषय में लिखा है। 'ओ३म्' को परमात्मा का सर्वोत्कृष्ट नाम बतलाया है तथा मंगलाचरण का किसी विशेष स्थान की अपेक्षा सर्वत्र प्रतिपादन किया है।

योगी महात्माओं की सेवा में निवेदन

[लेखक—श्री वीरसेन वेदश्रमी, वेद-सदन महारानी रोड इन्दौर]

सेवा में नम्र निवेदन है कि योग दर्शन में विविध लोक लोकान्तरों के ज्ञान प्राप्ति का उपाय बताया गया है। आज संसार के वैज्ञानिक भी चन्द्रमा, मंगल, शुक्र, सूर्य आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयोग कर रहे हैं।

वैज्ञानिकों की अभी तक की उन्नति एवं सफलता ने पृथिवीस्थ मानव जाति को अपनी सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा में इतना निमग्न कर दिया है कि आत्मा परमात्मा आदि का ज्ञान मानव के विचारों से ओझल हो चुका है। परिणामतः नास्तिकता का साम्राज्य मानव जाति में गहरी जड़ें जमा रहा है। ऐसी स्थिति में संसार की विचारधारा को परमात्मा, वेद एवं अध्यात्म की ओर मोड़ने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप समाधिज या प्रातिभ ज्ञान द्वारा चन्द्र, सूर्य, मंगल, शुक्र आदि की भौगोलिक, प्राणिज स्थिति, वहां के प्राणियों के रूप, आकार, रहन सहन वेषभूषा, सामाजिक स्थिति उनकी प्रमुख भाषा एवं वहां प्रचलित विद्याओं के बारे में समुचित प्रकाश शीघ्र ही जनसाधारण के उपयोग तथा वैज्ञानिकों के उक्त लोकों पर पहुँचने से पूर्व ही प्रकट किया जाना आवश्यक है। यदि आपके बताये समाधिज ज्ञान के अनुरूप ही वैज्ञानिकों ने अपना अनुभव प्राप्त किया तो संसार के वैज्ञानिक बलात् ही आपके एवं भारत के योगियों के चरणों में बैठ कर अपना अनुसंन्धान करने लगेंगे और समस्त संसार परमेश्वर, वेद एवम् अध्यात्म विद्या पर झुक जावेगा और पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति एवं शिक्षा-दीक्षा पर वैदिक सभ्यता, संस्कृति एवं शिक्षा-दीक्षा का प्रभुत्व सदा के लिए स्थापित हो जावेगा। क्या यह स्थिति महान् लोकोपकार की नहीं है। भूली भटकी मानव जाति को सत्य-पथ पर ले जाने से अधिक मंगलमय, आनन्ददायक एवं पुण्य कार्य क्या हो सकता है?

आप योगनिष्ठ हैं। योगरत हैं। वर्षों से आपकी साधना चल रही है। प्राणिमात्र के कल्याण की भावना आप में विद्यमान है। ऐसी स्थिति में मैं चाहता हूँ कि आप कृपया समस्त कार्यों को छोड़कर शीघ्रातिशीघ्र ही एक मास के समय में ही लोक लोकान्तरों के बारे में पूर्वोक्त जानकारी मानव के कल्याण और अध्यात्म विद्या के प्रभाव को ठीक प्रकार से प्रकट करने के लिए लेखबद्ध करके भेजने की कृपा करें। यदि एक मास के समय में संभव न हो तो तीन मास में करने की कृपा करें। शीघ्र विवरण भेजने से या प्रकट करने में महान् लाभ है और अध्यात्म विद्या की महान् विजय है और विलम्ब से भेजने में......

आशा है आप मेरे निवेदन को अवश्य स्वीकार करेंगे।

महर्षि दयानन्द और रामकृष्ण परमहंस

[लेखक—श्री जगन्नाथ प्रसाद जी प्रतापगढ़]

"महर्षि दयानन्द और रामकृष्ण परम हंस" शीर्षक से आप का लेख 'वेद प्रकाश' मास फाल्गुन २०१७ वि० में पढ़ा आप के उपरोक्त लेख की पुष्टि तथा स्पष्टी करण के निमित्त निम्नलिखित पंक्तियों का अगले मास के अंक में स्थान पाना परमावश्यक है।

श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, सी० पी० द्वारा प्रकाशित "श्री राम कृष्ण लीलामृत," प्रथम भाग बंगला से अनुदित द्वारा पं० द्वारका नाथ तिवारी बी० ए० एल० एल० बी०, में लिखा है। "आर्यमत प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती एक बार किसी कार्यवश कलकत्ता आये हुये थे। उस समय उनके पाण्डित्य की ख्याति चारों ओर फैली थी। उन्होंने उस समय आर्य समाज की स्थापना नहीं की थी। श्री रामकृष्ण उन से भेंट करने के लिये उनके स्थान पर गये थे।

श्री राम कृष्ण कहते थे कि "दयानन्द से भेंट करने गया। मुझे ऐसा दिखा कि उन्हें थोड़ी बहुत शक्ति प्राप्त हो चुकी है। उनका वक्षस्थल आरक्त दिखाई पड़ता थे। वे बेखरी अवस्था में थे। रात दिन चौबीसों घण्टे लगातार शास्त्रों की ही चर्चा किया करते थे। अपने व्याकरण ज्ञान के बल पर उन्होंने अनेक शास्त्र वचनों के अर्थ में बहुत उल्ट फेर कर दिया है। मैं ऐसा करूंगा मैं अपना मत स्थापित करूंगा, ऐसा करने में उनका अहंकार दिखाई दिया।"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि श्री रामकृष्ण परमहंस से कलकत्ता ही में भेट हुई थी और कोई वार्तालाप नहीं हुआ था। महर्षि को प्रभु का साक्षात्कार हो चुका था उनको शक्ति प्राप्त थी यह श्री रामकृष्ण परमहंस को अनुभव हुआ और जो विचार उन्होने व्यक्त किये उस से स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि वेदज्ञ व ब्रह्मज्ञ दोनों थे।

राम कृष्ण मठ, भलईपुर मद्रास द्वारा प्रकाशित "श्री राम कृष्ण और उनका मिशन" नामक पुस्तक जिस के लेखक है श्री रामकृष्णानन्द में वर्णित महर्षि दयानन्द और राम कृष्ण परमहंस के मध्य एक शास्त्रार्थ, श्री रामकृष्ण लीलामृत पुस्तक द्वारा प्रतिपादित नहीं होता है, यों कहिये श्री राम कृष्ण परमहंस के वचनों के विरुद्ध जाता है। लेखक तथा प्रकाशक महोदय को अपने गुरु के वचनों के प्रति कोई श्रद्धा नहीं है अन्यथा ऐसी भ्रामक बातें न लिखते और न प्रकाशित करते। सन्त महात्माओं के नाम पर चलने वाले संस्थाओं के संचालक अपनी दूकानदारी चमकाने के लिये ऐसे ही ओछे हथियारों से काम लेते हैं। आर्य जनता सावधान!

हमारा लक्ष्य

[ले० पं० चन्द्र सेन आर्य हितैषी सोनीपत निवासी]

—:००:—

बन्धुओ—मनुष्य अपने लक्ष्य पर पहुँचना चाहता है, लक्ष्य भी कई प्रकार के होते हैं एक राजनैतिक जिस का भूत लगभग सभी लोगों पर सवार हो रहा है, दूसरा आर्थिक आज की दुनिया में अर्थ प्रधान माना जाने लगा है किसी व्यक्ति का धार्मिक-सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन कितना भी गिरा हुआ क्यों न हो, धनी मानी होने के कारण उस को फिर भी आदर दिया जाता है। यद्यपि प्राचीन युग में मानवता, चरित्र तथा सामाजिक जीवन को ऊंचा स्थान दिया जाता था। ये तो संसारिक लक्ष्य हैं पर मैं जिस लक्ष्य की चर्चा करने लगा हूँ जिस पथ पर पूर्व ऋषि मुनि महात्मा सन्त चले अन्त को मुक्ति पद प्राप्त किया। यह रास्ता है तो अति कठिन, परन्तु यदि मनुष्य संसारिक इच्छाओं को त्याग दृढ़ निश्चय से वेद पथ का पथिक बने व उसी आधार पर अपना जीवन बनाये तो निसन्देह अपना नाम अमर कर सकता है, इतिहास के पन्ने इस बात के साक्षी हैं, यदि बालमीकि जैसे निर्दयी डाकू ऋषि बन सकते हैं* तो कौन सी संसारिक ऐसी बाधा है जो हमें मुक्ति पद तक पहुँचने से रोक सके, वास्तव में हमारी मंजिल भी यही है, पर हमारा तो बाबा आदिम ही निराला है। सामाजिक जीवन हमारा ठीक नहीं धर्म पर मजाक करना अपना कर्तव्य सा समझ बैठे हैं तो बताओ लक्ष्य पर कैसे पहुंचेंगे, मेरे व आप के जीवन उत्थान के लिये देवता स्वरूप इस लक्ष्य को समझने वाले आर्य समाज के जन्म दाता महर्षि दयानन्द सरस्वती के बनाये दस नियमों पर ध्यान पूर्वक विचार करें तो अन्य साधनों की जरूरत नहीं, धार्मिक-समाजिक जीवन हमारा अच्छा हो, नियम बद्ध जीवन रखें, हमारी इन्द्रियां वश में आ सकती हैं, चंचल मन को अपने अधीन कर सकते हैं **सप्त ऋषियः प्रतिहितः शरीरे** प्रभु ने हमें सात ऋषि प्रदान किये हैं उन्हें ही हम ऋषि बनायें तो निसन्देह हमारा लक्ष्य आसान है मन वचन और कर्म से इस ओर झुकें तो संसारिक लोग भी ऐसे देवताओं के चरणों में आयेंगे। जीवन की मंजिल क्या है यदि इसे समझने का प्रयत्न करें तो हमारा घरेलू जीवन भी सुखी रह सकता है और समाजिक जीवन भी, इसलिये ऋषि के पथ पर चलो ऋषि ने ललकारा था, संसार वालो! तुम

---

*रामायण में इस घटना का उल्लेख नहीं है। —सम्पादक

आगे मत बढ़ो पीछे चलो। यह एक गहरा रहस्य था, जिसको हम ने न समझा, पुराना युग आदर्शवादी था आस्तिकवाद का बोल बाला था, हमारा आचार विचार बहुत ही ऊंचा था सभी कर्मवीर और उच्च श्रेणी के सामाजिक विचारों से ओत प्रोत थे। नम्रता के देवता समझे जाते थे, इस से संसार वाले सुखी थे। इस तत्त्व को युग प्रवर्तक दयानन्द ने समझा था।

शिवरात्रि की वह शुभ घड़ी थी जिसने इस देवता को अपनी मंजिल पर पहुँचने का ज्ञान कराया, वही रास्ता हमें भी बताया।

अतः आर्य्यो! वर्तमान अवस्था को सुधारो अपना जीवन यूं ही बर्बाद न करो, आर्य समाज को सही आर्य समाज बनाओ. विश्व को आर्य बनाने वाले अफसोस स्वयं आर्य नहीं बन रहे। मुक्ति के पथ को जानते हुए भी हम आलसी बने बैठे हैं सब का जीवन धार्मिक और सामाजिक ऊंचे दर्जे का हो, हमारा लक्ष्य हमें बुलाता है, उठो! वेद के अनुयाईयों अपने लक्ष्य की ओर बढ़े चलो और जगत् को चलाओ।

शोक! महा शोक!!

तीन महान् आत्माओं का निधन!

लिखते हुए दुःख होता है परन्तु लिखे बिना रहा भी नहीं जाता कि चतुर्वेद भास्कर श्री पं० जयदेव जी विद्यालंकार मीमांसा तीर्थ अपने निवास स्थान आदर्श नगर अजमेर में वार्तालाप करते करते चल बसे। उनकी मृत्यु से आर्य जगत् को एक और धक्का लगा है। प्रभु उनकी दिवंगत आत्मा को सद्गति और उनके परिवार को धैर्य प्रदान करें यही प्रार्थना है।

सुप्रसिद्ध कर्म काण्डी और दानी सेठ दीपचन्द जी का स्वर्गवास १८-१-६१ को ८६ वर्ष की आयु में कलकत्ता में हो गया। ईश्वर आप की आत्मा को शान्ति और परिवार को धैर्य करें।

महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त, महर्षि के पत्र, विज्ञापन और चित्रों की खोज करने के लिये बचपन से उद्योग करने वाले और इसी धुन में आजीवन ब्रह्मचारी रहने वाले वयोवृद्ध, समाज के प्रशंसनीय कार्य कर्ता श्री मामराज सिंह जी खतौली निवासी १० फरवरी १९६१ को रायपुर के हस्पताल में चल बसे। आपको गुर्दे का रोग था मृत्यु के समय आप की आयु ७० वर्ष थी। परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति और सद् गति प्रदान करें। "सम्पादक"

पूज्य आनन्द स्वामी जी द्वारा

बर्मा में वेद प्रचार और यज्ञों की धूम

—❊❊❊—

पूज्य स्वामी जी को बर्मा गये ५। मास हो गये, लगभग सारे बर्मा में भ्रमण कर चुके हैं, रंगून, जियावाड़ी मांडले, लाशयो, शंख्यारी, नमखम, शवेपो, मनेवा, मूहयिन, मचीना, भामो, कत्था, मदथा, कल्लो, टाऊंजी इत्यादि स्थानों पर बड़ी सफल कथायें की हैं, बर्मी चीनी नर नारियों ने भी, भारतीय लोगों ने भी बड़ी श्रद्धा भक्ति से वेद तथा स्वामी दयानन्द के सन्देश को सुना है। स्वामी जी ने कितने ही बौद्ध फुंगियों (भिक्षुओं) को बर्मी भाषा के सत्यार्थ प्रकाश देकर कहा कि यह ग्रन्थ ध्यान से पढ़ो आपको विशेष ज्ञान प्राप्त होगा। चीन, लाओस की सीमाओं के निकट रहने वाले लोगों ने वेद तथा स्वामी दयानन्द का नाम जीवन में पहली बार सुना, जब "भाभो" में बड़ा विशाल तथा महान् विश्व शान्ति गायत्री यज्ञ कराया तो उसमें भारतीय नर नारियों के अतिरिक्त बर्मी लोगों ने भी भाग लिया, बर्मी देवियों को भी यज्ञोपवीत पहनाये गये, केलों, आम के पत्तों विशाल सुन्दर मण्डप बनाया गया, आहुति देने वाले धोतियां पीले दुपट्टे पहने बड़ी श्रद्धा भक्ति से बैठे थे, सब लोग कह रहे थे कि ऐसा सुन्दर यज्ञ पहली बार देखने को मिला है, अढ़ाई हजार आहुतियां दी गयीं, इसी प्रकार का गायत्री यज्ञ माण्डले में भी हुआ। स्वामी जी के इस भ्रमण से लोगों में एक नई जागृति आई है।

ओ३म् तत्सद् श्री ब्रह्मरण० इत्यादि पाठ का आर्यों में लोप क्यों ?

[ले०—श्री जयदत्त शास्त्री विद्यावाचस्पति]

आर्यसामाजिक विचारधाराओं से अपरिचित अथवा उन्हें न मानने वाले सनातन धर्मावलम्बियों के जिन घरों में सौभाग्य से कोई संस्कार या देवपूजादि शुभकर्म होते हैं वहां सर्वप्रथम "ओं विष्णुः ३ः नमः परमात्मने श्रीब्रह्मपुराण पुरुषोत्तमाय अत्र पृथिव्या जम्बूद्वीपे भरतखंडे आर्यावर्त्तान्तर्गत अमुकदेशे विष्णुप्रजापतिक्षेत्रे ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे श्री श्वेतवाराहकल्पे बौद्धावतारे वैवस्वत नाम मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगस्य प्रथमचरणे षष्ट्यब्दानां मध्ये अमुकनाम संवत्सरे अमुकायने अमुक ऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकवासरे अमुकतिथौ अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकराशिः अमुकनामाहं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलावाप्तये कायिकवाचिकमानसिक ज्ञाताज्ञात भक्ष्याभक्ष्यगम्यागम्य स्पृश्यास्पृश्य सकलपाप क्षयपूर्वकं इदं कर्म करिष्ये" इस पाठ, संकल्प का अवश्यमेव उच्चारण किया जाता है। इस पाठ में सम्प्रति कहीं कहीं थोड़ा भेद पाया जाता है। अस्तु।

इस पाठ का उच्चारण नित्यकर्म, स्नान, ध्यान, संध्यापूजादि तथा सभी सुअवसरों एवं संस्कारों के समय सृष्टि के आरम्भ से ही आर्य लोग करते चले आये हैं। इस बात में प्रायः सभी विद्वान् एक मत हैं। आर्यसमाज के संस्थापक, परमपावन वैदिकधर्म के उद्धारक, महामना महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के इस सम्बन्ध में ये उद्गार हैं:—

"ज्योतिःशास्त्रे प्रतिदिनचर्याऽभिहिताऽर्थैः क्षणमारभ्य कल्पकल्पान्तस्य गणितविद्यया स्पष्टं परिगणनं कृतम्, अद्यपर्यन्तमपि क्रियते प्रतिदिनमुच्चार्यते ज्ञायते चातः कारणादियं व्यवस्थैव सर्वैर्मनुष्यैः स्वीकर्तुं योग्यास्ति नान्येति निश्चयः। कुतो ह्यार्यैः नित्यम् "ओम् तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुकसंवत्सरायनर्तुमासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्तेऽत्रेदं कृतं क्रियते चै इत्याबालवृद्धैः प्रत्यहं विदितत्वादितिहासस्यास्य सर्वत्रार्यावर्तदेशे वर्तमानत्वात् सर्वत्रैकरसत्वादशक्येयं व्यवस्था केनापि विचालयितुमिति विज्ञायताम्।"

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां वेदोत्पत्ति विषयः

इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी का मन्तव्य यह था कि जिस प्रकार से इस पाठ के उच्चारण की अविच्छिन्न परम्परा प्राचीन काल से चलती आ ई है वैसी ही आगे भी बनी रहे। किन्तु आज यह देखते बड़ा दुःख होता है कि आर्यों के परिवारों में इस पाठ का नित्य उच्चारण तो रहा दूर बड़े बड़े संस्कारों एवं उत्सवों में भी कोई उच्चारण नहीं होता। यहां तक कि केवल कुछ एक संस्कृतज्ञ विद्वान् पंडितों के अतिरिक्त और लोगों को इस पाठ का

एक अक्षर भी ज्ञात नहीं है और जो लोग पाठ को जानते भी होंगे वे इसे कभी बोलते नहीं दिखाई देते। ऋषि के ऊपर उद्धृत उद्गारों के अनुसार तो इस संकल्प पाठ के इस भांति लोप करने वाले व्यक्ति सच्चे माने में ऋषिभक्त या उनके अनुगामी नहीं कहे जा सकते किन्तु इसके विपरीत वे कृतघ्न एवं ऋषि की आत्मा को दुःख देने वाले कहे जा सकते हैं।

इस लेख को पढ़ते हुये किन्हीं लोगों को यह शंका हो सकती है कि पौराणिक लोगों के यहां तो संकल्प पद्धति, दशकर्मपद्धति आदि कर्मकांड की पुस्तकों में स्थान स्थान पर इस पाठ को पढ़ने का विधान है। परन्तु महर्षि के सत्यार्थ प्रकाश और विशेषतः संस्कारविधि में किसी भी नित्यकर्म या संस्कार के आरम्भ में इस संकल्प के पढ़ने का विधान नहीं मिलता इसलिये हम लोग क्योंकर उसे पढ़ें ? और यदि उन्हें (महर्षि दयानन्द को) आर्यों द्वारा इसका पढ़ा जाना अभीष्ट होता तो वे इस बात का अवश्यमेव विधान करते। इस शंका के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जैसा कि ऋषि ने स्वयं लिखा है "ओम् तत्सद्० इत्याबालवृद्धैः प्रत्यहं विदितत्वात्… …अशक्येयं व्यवस्था केनापि विचालयितुमिति" अर्थात् इस पाठ व्यवस्था को बालक से लेकर वृद्धपर्यन्त सब जानते है और यह व्यवस्था किसी के द्वारा भी मिटायी, रोकी नहीं जा सकती। इससे स्पष्टतः यह लक्षित होता है कि ऋषि ने इस पाठ का आर्यों में पूर्णतः सर्वत्र प्रचार देखकर पुनः संस्कार विधि आदि ग्रन्थों में उल्लेख नहीं किया। महाभाष्यकार भगवान् पतंजलि का एक स्थान पर जैसा कि यह दृष्टान्त है "यो ब्रूयात् पुरस्तात् सूर्यउदेति पश्चादस्तं गच्छति। मधुरो गुडः कटुकं श्रृंगवेरमिति किं तेन कृतं स्यात्" वैसे ही बहुप्रचलित और सर्वविदित सी बात जानकर सम्भव है कि स्वामी जी ने इसका स्थान स्थान पर उल्लेख न किया हो। परन्तु उनके उपर्युक्त वचनों से इतना तो अवश्य ज्ञात होता है कि वे इस पाठ व्यवस्था का लोप करना घोर अपराध समझते हैं। आर्यसमाज के प्रचारक, उपदेशक तथा पण्डितगण कभी कभी व्याख्यान देते समय और अपने लेखों में सृष्टिसंवत् की गणना आदि के प्रसंग में इस संकल्प की परम्परा एवं पाठ के महत्व पर बड़ा जोर देते और उसकी दुहाई देते देखे जाते हैं। परन्तु यह कहना कठिन है कि वे स्वयं इसका पाठ भी कभी करते होंगे या नहीं।

यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि स्वामी जी द्वारा उद्धृत उपर्युक्त पाठ ही शुद्ध पाठ प्रतीत होता है। पौराणिकों के यहां प्रचलित इस लेख के आदि में उद्धृत पाठ शुद्ध नही। क्योंकि उसमें वैष्णव सम्प्रदायगत अवतारवाद का प्रक्षेप सा दीखता है। अस्तु, समस्त आर्यबन्धुओं से नम्र निवेदन है कि वे अपने प्रतिदिन के कृत्यों, संस्कारों एवम् उत्सवों के आरम्भ मध्य वा अवसान में इस संकल्प को अवश्य पढ़ा करें जिससे कि यह महत्वपूर्ण व्यवहार व्यवस्था, मर्यादा लोप न होने पावे। आशा है आर्य विद्वान् इस सम्बन्ध में समस्त आर्यजनो को समुचित प्रेरणा देने का प्रयत्न करेंगे।

नवदम्पति को भेंट देने योग्य अनुपम

★ उपहार ★

भारतीय स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण व चिरस्थायी बनाने के लिये आज भारत को कर्मवीर, बुद्धिमान् व शौर्य-सम्पन्न युवकों की आवश्यकता है। उस आवश्यकता की पूर्ति आपके हाथों में है।

क्या आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान समाज में सम्मान प्राप्त करे यदि हां! तो उसके लिए प्रयत्न करना आपका कर्त्तव्य है।

किस प्रकार ?

यह जानने तथा अनेक कर्त्तव्य से परिचित होने के लिए

इच्छानुसार संतानोत्पत्ति

यह पुस्तक मँगा कर अवश्य पढ़िए। पुस्तक पढ़ कर आप अनुभव करेंगे कि ' पुत्र या पुत्री, धर्मात्मा या पापी, शासक या चोर, जितेन्द्रिय या व्यभिचारी, गौर या श्याम वर्ण की" सन्तान का निर्माण तथा बर्थ कन्ट्रोल अपने ही हाथों में है।

इसकी महत्ता पढ़ने से ही विदित होगी

सजिल्द मूल्य २।।) डाक व्यय पृथक—

लेखक:—

वीरेन्द्र गुप्त

प्राप्ति स्थान—**वीरेन्द्रनाथ अश्विनी कुमार**

प्रकाशन मन्दिर, बाजार चौक, मुरादाबाद।

[मार्च के अङ्क से आगे]

व्याख्यान माला

दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति ।
अदाता हि धनत्यागी धनं हित्वा हि गच्छति ॥ ४ ॥

मैं कृपण को दाता मानता हूँ जो कि मरने पर भी धन को नहीं छोड़ना चाहता दान करने को साथ ले जाना चाहता है । और धन के त्यागी को अदाता मानता हूँ जो मरने के समय सब धन छोड़ जाता है दान के लिए साथ नहीं ले जाना चाहता ॥ ४ ॥

त्यागभोगविहीनेन धनेन धनिनो यदि ।
भवामः किन्न तेनैव धनेन्न धनिनो वयम् ॥ ५ ॥

जो मनुष्य त्याग और भोग से रहित धन से धनी बना हुआ है तो उस धन से क्या हम धनी नहीं हो सकते हैं । ॥ ५ ॥

दानोपभोगरहिता दिवसा यस्य यान्ति वै ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥ ६ ॥

जिस मनुष्य के दिन त्याग से और उपभोग से रहित होकर व्यतीत होते हैं वह मनुष्य तो लुहार की धोंकनी के समान है वह सांस लेता हुआ भी जीवित नहीं है ॥ ६ ॥

किंशुके किं शुकः कुर्यात्फलितेऽपि बुभुक्षितः ।
अदातरि समृद्धेऽपि किं कुर्युरुपजीविनः ॥ ७ ॥

किंशुक (पलाश) वृक्ष से तोते को क्या लाभ जिसके फलने पर भी वह भूखा ही रहता है । इसी तरह जो अदानी मनुष्य है उसके समृद्ध होने से भी याचकों को क्या लाभ ? कुछ नहीं ॥ ७ ॥

प्राप्तानपि न लभन्ते भोगान् भोक्तुं स्वकर्मभिः कृपणाः ।
मुखपाकः किल भवति द्राक्षापाके बलि भुजां हि ॥ ८ ॥

अपने किये हुए कर्मों के कारण कृपण लोग प्राप्त हुए भोगों को भी नहीं भोग सकते । जैसे कि अंगूरों के पकने के समय बलि खाने वालों को मुखपाक हो जाता है ॥ ८ ॥

दैववशादुत्पन्ने सति विभवे यस्य नास्ति भोगेच्छा ।
न च परलोकसमीहा स भवति धनपालको मूर्खः ॥ ९ ॥

भाग्यवश धन के प्राप्त हो जाने पर भी जिसकी भोग करने की

इच्छा नहीं है और परलोक सहाय के लिए भी पुण्यादि नहीं करता तो वह मूर्ख केवल धन की रक्षा ही करने वाला है ॥ ९ ॥

अतिसाहसमतिदुष्करमत्याश्चर्यञ्च दानमर्थानाम् ।
योऽपि ददाति शरीरं न ददाति स वित्तलेशमपि ॥ १० ॥

अर्थ का दान करना बहुत साहस का कार्य है तथा दुष्कर और आश्चर्यदायक कार्य है। क्योंकि जो सज्जन शरीर का भी दान करता है वह भी किंचित्मात्र धन का दान नहीं करता ॥ १० ॥

सत्सङ्गः

महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ॥ १ ॥

बड़े मनुष्यों का संसर्ग किसका उन्नति का कारक नहीं होता? अर्थात् सब की उन्नति करने वाला होता है। जैसे कि कमल के पत्र पर गिरी हुई बून्द मुक्ताफल की सदृशता को धारण करती है ॥ १ ॥

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥ २ ॥

हे तात! हीनों का समागम संसर्ग करने से मति हीन हो जाती है। और समानों के साथ संसर्ग से बुद्धि समान रहती है और उत्कृष्टों का संसर्ग करने से बुद्धि उत्कृष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीर्द्युतीः ।
तथा सत्संनिधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम् ॥ ३ ॥

जैसे शीशा सोने के संसर्ग से मरकतमणि की द्युति को धारण कर लेता है उसी प्रकार सत्संग करने से मूर्ख भी प्रवीणता को प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥

यदि सत्सङ्गनिरतो भविष्यसि भविष्यसि ।
अथ दुर्जनसंसर्गे पतिष्यसि पतिष्यसि ॥ ४ ॥

हे मनुष्य तू सत्संग में लगा रहेगा तो तू उन्नति करके उन्नत हो जायेगा। यदि तू दुर्जन के संसर्ग में पड़ जायेगा तो नीचे गिर कर हीन दशा को प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति
सत्सङ्गतिः कथयकिन्न करोति पुंसाम् ।। ५ ।।

सत्संगति मनुष्य की जड़ता को हरती है वाणी में सत्य का संचार करती है मानोन्नति का उपदेश करती है पाप को दूर करती है चित्त को प्रसन्न करती है कीर्ति को चारों दिशाओं में फैलाती है सत्संगति क्या लाभ नहीं देती ? सत्पुरुषों को सत्संगति सब प्रकार का लाभ प्रदान करती है ।। ५ ।।

दूरीकरोति कुमतिं विमलीकरोति चेतश्चरन्तनमघं चुलुकीकरोति ।
भूतेषु किञ्च करुणां बहुलीकरोति सङ्गः सतां किमु न मङ्गलमातनोति ।६।

सत्संगति कुमति को दूर करती है चित्त को शुद्ध करती है और बड़े भारी पाप को भी तुच्छ बना देती है और सब प्राणियों पर दया का वर्ताव बहुलता से कराती है सत्संगति सभी प्रकार से मनुष्यों के लिये हितकारी मंगलकारी है ।। ६ ।।

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनी पत्रस्थितं राजते ।
स्वात्यां सागरशुक्तिसंपुटगतं तज्जायते मौक्तिकं
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ।। ७ ।।

खूब संतप्त गरम लोहे पर पड़ी हुई जल की बून्द का नाम भी नहीं दिखाई देता वही जल की बून्द नलनी कमल के दल पर पड़ी हुई मुक्ता की सदृशता को धारण कर लेती है और वही बून्द स्वाती नक्षत्र में सागर की सीप की संपुट में यदि गिर जाये तो मोती बन जाती है। प्रायः करके अधम मध्यम और उत्तम गुण संसर्ग से ही आते हैं ।। ७ ।।

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता सङ्गमेमहि ॥ ८ ॥

हम सूर्य तथा चन्द्रमा की तरह सुख पूर्वक उत्तम मार्ग में विचरण करें उत्तम ही आचरणों का अनुष्ठान करें तथा बार बार ज्ञानी दानो तथा अहिंसक की संगति प्राप्त करें ।। ८ ।।

असत्सङ्गाद्धानिः

अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानिः पदे पदे ।
पावको लोहसङ्गेन मुद्‌गरैरभिहन्यते ॥ १ ॥

अहो ! दुर्जन के संग करने से तो पग पग पर अर्थात् सब स्थानों पर मान की हानि होती है जैसे कि अग्नि यदि लोहे का संग करती है तो उसकी मुद्‌गरों से ताड़ना की जाती है ॥ १ ॥

असतां सङ्गदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम् ।
दुर्योधनप्रसङ्गेन भीष्मो गोहरणे गतः ॥ २ ॥

दुर्जन मनुष्यों के संग के कारण साधु लोग भी विकार को प्राप्त हो जाते हैं जैसे कि दुर्योधन के संग से भीष्म भी गो हरण में गये थे ॥ २

बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचैः सह समागमात् ।
मध्यमैर्मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः ॥ ३ ॥

नीच लोगों के साथ समागम करने से पुरुषों की बुद्धि भी हीन हो जाती है मध्यमों के समागम करने से मध्यम रहती है और उत्तमो के समागम से उत्तम बन जाती है ॥ ३ ॥

परापकारनिरतैर्दुर्जनै सह संगतिः ।
वदामि भवतस्तत्त्वं न विधेया कदाचन ॥ ४ ॥

जो सदा दूसरों के अपकार में लगे रहने वाले दुर्जन हैं उनकी सगति कभी भी नहीं करनी चाहिए यह मैं आपको तत्व से श्रेष्ठ बात बतलाता हूँ ॥ ४ ॥

सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत संगतिम् ।
सद्भिर्विवाहं मैत्रीं च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत् ॥ ५ ॥

सज्जनों के साथ ही बैठे और सज्जनों की ही संगति करे। सज्जनों के साथ ही विवाह और मैत्री आदि व्यवहार करने चाहियें दुर्जनों के साथ कोई आचरण न करे ॥ ५ ॥

दुर्वृत्तसंगतिरनर्थपरम्पराया हेतुः सतां भवति किं वचनीयमत्र ।
लङ्केश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रं प्राप्नोति बन्धनमसौ किल सिन्धुराजः ।६।

दुराचारियों की संगति सज्जनों के लिए अनर्थ का ही कारण होती है इसमें अधिक कहने को आवश्यकता नहीं है। जैसे स्पष्ट है कि रावण ने राम की पत्नी सीता का हरण किया और निश्चय ही सिन्धुराज समुद्र का बन्धन किया गया ॥ ६ ॥

गुणाः

यदि सन्ति गुणाः पुंसां विकसन्त्येव ते स्वयम् ।
नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन निवार्यते ॥ १ ॥

यदि मनुष्य में गुण होंगे तो वह स्वयं ही विकसित हो जाते हैं। जिस प्रकार कोई भी मनुष्य शपथ के द्वारा भी कस्तूरी की सुगन्धि का निवारण नहीं कर सकता ॥ १ ॥

गुणेष्वेव हि कर्तव्यः प्रयत्नः पुरुषैः सदा ।
गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः समः ॥ २ ॥

पुरुषों को सदा गुणों की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्न करते रहना चाहिए। जो दरिद्र होने पर गुणवान् है वह गुण रहित धनवानों से श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः ।
वासुदेवं नमस्यन्ति वसुदेवं न मानवः ॥ ३ ॥

गुणों की ही सर्वत्र पूजा होती है पितृवंश तो निरर्थक है उससे पूजा नहीं होती। जैसे वासुदेव (श्रीकृष्ण) को ही सब नमस्कार करते हैं वसुदेव को कोई नमस्कार नहीं करता ॥ ३ ॥

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम् ।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां दानं भूषयते धनम् ॥ ४ ॥

गुण रूप को शोभित कर सकते हैं शील स्वभाव कुल को भूषित करता है सिद्धि विद्या को भूषित करती है और दान धन को भूषित करता है ॥ ४ ॥

गुणिनि गुणज्ञो रमते नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः ।
अलिरेति वनात्पद्मं न दर्दुरस्त्वेकवासोऽपि ॥ ५ ॥

गुणज्ञ व्यक्ति गुणों में ही रमण करता है किन्तु जो गुण रहित है वह गुणों मैं सन्तोष नहीं करता। जैसे भ्रमर बन छोड़ कर भी पद्मों का सेवन करता है किन्तु एक जगह रहने वाला मैंडक नहीं ॥ ५ ॥

गुणाः गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः ।
सुस्वादुतोयाः प्रभवन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥ ६ ॥

गुण सदा गुणज्ञों में होकर ही गुण कहलाते हैं यदि वही गुण निगुण में चले जाते हैं तो वह दोष कहलाते हैं। जैसे कि नदियाँ सुस्वादु

जल वाली होती हैं किन्तु वह भी समुद्र में पड़ कर पीने योग्य नहीं रहती ॥ ६ ॥

गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणो बली बलं वेत्ति न वेत्ति निर्बलः ।
मधोर्गुणं वेत्ति पिको न वायसः करी च सिंहस्य बलं न मूषकः ॥ ७ ॥

गुणवान् मनुष्य ही गुण को जानता है निर्गुणी नहीं जान सकता। बलवान् के बल को बली ही जानता है निर्बल नहीं। मिठास के गुण को कोयल ही जान सकती है कौआ नहीं। और सिंह के बल को हाथी ही जान सकता है चूहा नहीं ॥ ७ ॥

—❀❀❀—

वाङ्माधुर्यम्

नहीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
दया मैत्री च भूतेषु दानञ्च मधुरा च वाक् ॥ १ ॥

सब प्राणियों के साथ दया और मैत्री रखना, दान देना और मधुर वाणी बोलना यही श्रेष्ठ यज्ञ है इससे बढ़ कर तीनों लोकों में भी कोई श्रेष्ठ कार्य नहीं हैं। कोई यज्ञकर्म इससे बढ़ कर नहीं है सदा इन का ही पालन करना चाहिए ॥ १ ॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥ २ ॥

प्रिय मधुर वाक्यों के बोलने से सारे ही प्राणी सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिए सदा प्रिय वचन ही बोलने चाहिये वचनों में भी दरिद्रता क्या करनी ॥ २ ॥

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवादसस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥ ३ ॥

यदि तू एक ही कर्म के द्वारा सारे जगत को वश में करना चाहता है तो दूसरों की निन्दा करने वाली वाणी का निवारण कर दूसरों को अपवादयुक्त वचन न कह ॥ ३ ॥

लक्ष्मीर्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्रबान्धवाः ।
जिह्वाग्रे बन्धनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

जिह्वा के अग्रभाग पर ही लक्ष्मी बसती है और जिह्वा के आगे मित्र तथा बान्धव लोग रहते हैं और जिह्वाग्र पर ही बन्धन है तथा जिह्वाग्र से ही ध्रुव मृत्यु है ॥ ४ ॥

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तया विद्धं न संरोहति वाक् क्षतम् ॥ ५ ॥

बाणों से बीन्धे हुए शरीर के घाव भी भर जाते हैं और कुल्हाड़े से काटा हुआ वन भी फिर फल फूल जाता है परन्तु कठोर वाणी से बीन्धा हुवा घाव कभी नहीं भरता ॥ ५ ॥

ऐक्यम्

समानी प्रपा सह वो अन्न भाग: समाने योक्त्र सह वो युनिज्म ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारानाभिमिवाभित: ॥ १ ॥

हे मनुष्यो ! तुम सब की प्याऊ एक समान हो तुम्हारा सब का परस्पर समान भोजन हो अन्न समान हो। इसलिए मैं तुम लोगों को एक ही समान बन्धन में बांधता हूं, जोड़ता हूँ। तुम सब उत्तम रीति से फल प्राप्त करने के लिए एकत्र होकर केन्द्र के चारों ओर लगे अरों के समान ज्ञानरूप परमेश्वर व गुरु तथा यज्ञाग्नि की उपासना किया करो ॥ १ ॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्च: सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ २ ॥

भाई भाई से तथा वहिन से द्वेष न करे और बहन अपनी बहिन तथा भाई से द्वेष न करे। हे प्रजाजनो ! तुम सब एकत्र होकर एक दूसरे के अनुकूल तथा एक चित्त होकर कल्याणकारी तथा सुखप्रद रीति से एक दूसरे के प्रति वाणी बोला करो ॥ २ ॥

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जनाना उपासते ॥ ३ ॥

हे मनुष्यो ! तुम सब मिल कर रहो परस्पर मिल कर प्रेम से बातचीत करो तुम सब समान चित्त होकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार पूर्व ज्ञानी विद्वान् लोग सेवनीय प्रभु की उपासना करते रहे उसी तरह तुम भी ज्ञान प्राप्त करके उस सेवनीय प्रभु की उपासना करो ॥ ३ ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ४ ॥

आप सब के विचार समान हों। परस्पर संगति भी समान हो। आप सब का अन्तःकरण भी समान हो चित्त भी एक दूसरे के समान हों। मैं आप लोगों को समान विचार वाला बनाता हूं और एक समान अन्न से तुम सब का पालन पोषण करता हूँ ॥ ४ ॥

वयं पञ्च वयं पञ्च वयं पञ्च शतञ्च ते ।
अन्यैः सह विवादे तु वयं पञ्च शतञ्च वै ॥ ५ ॥

परस्पर में युद्ध करने के समय हम पाण्डव पांच ही हैं और वह दुर्योधनादि कौरव सौ हैं किन्तु दूसरों के साथ युद्ध करने के समय तो हम दोनो मिल कर एक सौ पांच हैं ॥ ५ ॥

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्वध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥ ६ ॥

जैसे कि संगति को प्राप्त हुआ वेणु समूह खूब कटकीले वृक्षों से घिरा हुआ होने पर भी छिन्नता को नहीं प्राप्त होता उसी प्रकार भाइयों के साथ वाला मनुष्य नष्ट नहीं किया जा सकता ॥ ८ ॥

कुलीनैः सह सम्पर्क पण्डितैः सह मित्रताम् ।
ज्ञातिभिश्च समं मेलं कुर्वाणो नावसीदति ॥ ७ ॥

कुलीन जनों के साथ सम्पर्क करने वाला, और पण्डितों के साथ मित्रता रखने वाला तथा समान जन्म तथा जाति वालों से मेल करता हुआ मनुष्य कभी दुखी नहीं होता है ॥ ७ ॥

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवन्तहि भिन्नाः ।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति ॥ ८ ॥

पृथक् हुए लोग धर्म का आचरण नहीं करते। और पृथक् लोग सुख भी प्राप्त नहीं करते। पृथक् हुए लोग गौरव को नहीं पा सकते। और पृथक् हुए लोग शोभित भी नहीं होते ॥ ९ ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ ६ ॥

वह आत्मा श्रेष्ठ है जो ज्ञान तथा बल से युक्त हो वह देश उत्तम है जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय सन्तुष्ट रहें तथा ब्राह्मण भी राज्य के साथ रहें। वह आचार्य कुल श्रेष्ठ है जहां दीक्षा पाने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय सब वर्ण वाल शिष्य आचार्य के साथ मिल कर रहें ॥ ६ ॥

स्वाध्याय उपयोगी पुस्तकें

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	४॥)
बाल्मीकि रामायण (शुद्ध संस्करण)	१२)
उपनिषदार्य्य भाष्य (आठ उपनिषदें)	६)
बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला	३)
ओंकार निर्णय	१॥)
सृष्टि का इतिहास	२)
वैदिक सिद्धान्तों पर बहनों की बातें	१।)
कर्तव्य दर्पण	१)
आर्य समाज क्या है ?	।॥)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
दयानन्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध	५)
दयानन्द चित्रावली	२॥)
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या	॥)
नास्तिकवाद	॥)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
विवाह और विवाहित जीवन	२॥)
ब्रह्मचर्य जाधन-वीर्य नाश मृत्यु	।=)
वैदिक गृहस्थाश्रम	५)
ऋषि गाथा महाकाव्य	४)
संस्कार विधि विमर्श	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
तत्त्वज्ञान म० आनन्द स्वामी	३)
प्रभु दर्शन ,,	२॥)
प्रभु भक्ति ,,	१॥)
आनन्द गायत्री कथा ,,	॥≡)।
एक ही रास्ता ,,	।॥-)
सत्यनारायण व्रत कथा ,,	॥=)
भगवान शंकर और दयानन्द ,,	॥)
मानव जीवन गाथा वा जीवन गीत ,,	१)
भक्त और भगवान ,,	१)
उपनिषदों का सन्देश	१।)

वेद परिचय (स्वामी विवेकानन्द)	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्षयोग प्रदीपिका	३॥)
घर गृहस्थी	३॥)
गीत श्रद्धांजलि (भजन)	१)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१)
आदर्श सुधारक दयानन्द	॥=)
गृहस्थाश्रम (दयानन्द)	॥=)
बाल शिक्षक ,,	।=)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)
स्वामी दयानन्द और वेद	।)
वैदिक धर्म शिक्षा	≡)
आर्य सत्संग गुटका	-।)
विश्व विज्ञान परमात्मा बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	॥)
मांस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	=।)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	-।)

चित्र चित्र चित्र

महर्षि दयानन्द	२०×३०	१)
गुरु विरजानन्द	,,	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	,,	१)
पण्डित लेखराम	,,	१)
महात्मा हंसराज	,,	१)
सचित्र जीवन घटना	१५×२०	॥)
महर्षि दयानन्द की महत्ता	२०×३०	॥)

मोटोज साइज १४×२२ मूल्य प्रत्येक ।-)
सन्ध्या मन्त्र, प्रार्थनामन्त्र, संगठन सूक्त, यम नियम व्याख्या

मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक ≡)
सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र, दीर्घ जीवन की प्रार्थना सत्यंवद धर्मं चर।

मोटोज १४×१४ प्रत्येक ।)
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री मन्त्र

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, देहली।

महात्मा आनन्द स्वामी जी

की नई पुस्तक

उपनिषदों का सन्देश

आध्यात्मिक पुस्तक होते हुए भी उपन्यास से रोचक,

प्रभु प्राप्ति के उपाय

सरल भाषा में

बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, २०४ पृष्ठ की पुस्तक केवल ३।) में डाकखर्च ।।।), मनिआर्डर द्वारा २) भेज कर आज ही पुस्तक मंगाईये ।

आनन्द स्वामी जी की

अन्य पुस्तकें

❀ प्रभुभक्ति	...	१।।)
❀ प्रभुदर्शन	...	२।।)
❀ तत्वज्ञान	...	३)
❀ भक्त भगवान	...	१)
❀ मानव जीवन गाथा...		१)
❀ आनन्द भगवत कथा...		।।=)
❀ आनन्द गायत्री कथा		७० न. पै.
❀ एक ही रास्ता...		८० न. पै.
❀ शङ्कर और दयानन्द		।।)

बृहदाकार आकर्षक चित्र

साईज प्रत्येक का २०×३०

प्रत्येक का मूल्य १)

महर्षि दयानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द

गुरु विरजानन्द

महात्मा हंसराज

पंडित लेखराम

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

स्वामी दर्शनानन्द

७ चित्र एक साथ मंगाने पर डाक खर्च १।) आता है । सातों चित्रों का डाकखर्च सहित ८।) आने पर रजिस्ट्री द्वारा भेज दिये जावेंगे । १ दर्जन चित्रों का १२) पेशगी आने पर डाकखर्च माफ ।

अत्यन्त सुन्दर

तथा

आकर्षक

११"×१४" साइज में

* ओ३म्	...	मूल्य	।)
* नमस्ते	...	,,	।)
* स्वागतम्	...	,,	।)
* गायत्री मन्त्र...		,,	।)

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली ।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली में छपवाया ।

वेद प्रकाश

वेदो ऽखिलो धर्ममूलम्

आर्य समाज अंक

आदरी सम्पादक

जगदीश चन्द्र विद्यार्थी

हमारे आगामी विशेषाङ्क

अगस्त १९६१ में 'वेद प्रकाश' अपने जीवन के ९ वर्ष पूर्ण कर दसवें वर्ष में पदार्पण करेगा। इस वर्ष में हम अपने पाठकों और सहयोगियों को निम्न विशेषाङ्क देंगे:—

"नित्यानन्द व्याख्यान माला बृहद विशेषाङ्क"—यह अंक अगस्त में मिलेगा और पुस्तक साइज के लगभग १८० पृष्ठों का होगा। इस पुस्तक में ब्र० नित्यानन्द जी के विभिन्न सैद्धान्तिक विषयों पर महत्वपूर्ण व्याख्यान हैं।

इस विशेषाङ्क के अतिरिक्त हमारी योजना तीन अथवा चार विशेषांक और देने की है। यद्यपि ये विशेषांक छोटे होंगे परन्तु प्रत्येक अनूठी सामग्री से युक्त और अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा। ये विशेषांक होंगे:—

"ब्रह्माकुमारी अंक":—इस में ब्रह्माकुमारियों के पाखण्ड का दिग्दर्शन होगा।

योगाङ्क:—इस अंक में योगासनों का विशद वर्णन होगा। यूं तो बाजार में योगासनों के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें मिलती हैं परन्तु इस अंक की अपनी कुछ विशेषता होगी।

"विष्णु पुराणालोचनांक":—आर्य जगत् के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी वेदानन्द जी ने कुछ पुराणों की आलोचना निकलवाई थी परन्तु पाकिस्तान बनने के कारण वह क्रम टूट गया। उस कड़ी को पुनः चालू करने के लिये हम अपने पाठकों को इस वर्ष विष्णु पुराण आलोचनांक भेंट करेंगे।

दयानन्द अंक:—यह अंक दीपावली अथवा बोधरात्रि के अवसर पर निकलेगा। पाठकों ने ऋषि के बहुत से जीवन पढ़े होंगे परन्तु इस अंक में ऋषि के जीवन को एक अनोखे ढंग में ही चित्रित किया जायेगा।

आप स्वयं ग्राहक बनें और कम से कम अपने दो साथियों को और ग्राहक बनायें। यदि आप वैदिक धर्म का प्रचार और प्रसार चाहते हैं तो हमें सहयोग दें। यदि आपको वेद प्रकाश की विचारधारा पसन्द है, यदि आप चाहते हैं कि आर्य समाज के विरुद्ध जो साहित्य लिखा जा रहा है उस के उत्तर दिये जाये, यदि आप चाहते हैं कि वेद विरुद्ध मतों पर लेखनी चलती रहे तो स्वयं ग्राहक बने और अन्यों को बना कर हमें उत्साहित करें।

—व्यवस्थापक

मुफ्त पांच वार्षिक ग्राहक बनाने वाले सज्जन को एक वर्ष तक वेदप्रकाश मुफ्त भेजा जावेगा।

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापकः—स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

वर्ष—९ : बैशाख २०१८ वि० : मई १९६१ : वार्षिक मूल्य ३)

अंक—१० : दयानन्दाब्द १३६ : वैशाख १८८२ : विदेशों से ६ शिलिंग

अज्ञानी का त्याग

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।

अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥४२५॥

(ऋ० ॥ १० । ७१ । ८)

(सखायः) समान योग्यता वाले (ब्राह्मणाः) ब्रह्मवित् पुरुष (यत्) जब (हृदा तष्टेषु) बुद्धिमानों के हृदय से विनिश्चत (मनसः जवेषु) मनोवेगों में गुणदोषनिरूपण करने के लिये (सं यजन्ते) एकत्रित होते हैं (अत्र) तब इस सभा में (त्वम्) अविज्ञातार्थी वेदानभिज्ञ (पुरुष) को (वि जहुः) त्याग देते हैं। वे वेद विद्या में अपूर्ण पाए जाते हैं (अह) और (त्वे) कोई और (ब्रह्माणः) जिन की विद्या, बुद्धि और ब्रह्मज्ञान परिपक्व पाए जावें, वे (वेद्याभिः) वेदितव्य विद्याओं के द्वारा (विचरन्ति) स्वतन्त्रतया प्रजाओं में विद्या प्रचार के लिये विचरण करते हैं, (उ) यह बात प्रसिद्ध है।

आशय—विद्वान् ब्राह्मणों को उचित है कि वे सभा कर के विद्या की परीक्षा करें। जो परीक्षोत्तीर्ण हों, वे ही प्रजाओं में उपदेश करने के लिए योग्य समझे जायें और जो वेदार्थतत्त्ववित् नहीं और आचार से भी ही न हों, वे उपदेशार्थ कहीं न भेजे जाय। ऐसी सुव्यवस्था होने से ही समाज का मंगल और विद्यादि की वृद्धि होती है। अन्यथा विपरीत ज्ञान फैलकर बहुत हानि पहुंचती है और अविद्या के विस्तार से ब्राह्मण समूह की भी अवनति होती है।

अनुवाद—जब अनेक ब्राह्मण एकत्र होकर मन का भाव हृदय में आलोचनापूर्वक अवधारित करने को प्रवृत्ति होते, तब किसी किसी अनभिज्ञ को त्याग देते और कोई कोई ब्रह्मवित् पुरुष परिचित होकर सर्वत्र विचरण करते हैं।

सम्पादकीय—

आर्य समाज किस ओर ?

हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होंगे अभी ।
आओ, विचारें आज मिल कर ये समस्याएं सभी ॥

जिस समय महर्षि दयानन्द भारतीय रंगमञ्च पर आये उस समय देश की अवस्था बड़ी विचित्र थी। लोग वेदों को भूल चुके थे। वर्ण व्यवस्था गुणकर्म एवं स्वभाव की बजाय जन्मना मानी जाने लगी थी। मत मतान्तर तीव्र गति से बढ़ कर लोगों को अपने अपने चुंगल में फंसा रहे थे। धर्म के नाम पर लोगों को लूटा जाता था। पण्डे और पुजारियों की तूती बोलती थी। नारी अपमानित और अनादृत समझी जाती थी। उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। ईसाई और मुसलमान भी अपने जाल बिछा कर लोगों को अपने मत में सम्मिलित कर रहे थे। महर्षि दयानन्द ने इस अवस्था का गम्भीर अध्ययन किया और इस का सुधार करने के लिये कार्य क्षेत्र में कूद पड़े।

महर्षि दयानन्द ने प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति की। वेद भाष्य कर उन्होंने वेद के गौरव को बढ़ाया। वर्ण व्यवस्था गुण कर्मानुसार ही हो सकती है जन्म से कोई ब्राह्म, क्षत्रिय आदि नहीं है, स्वामी जी ने अकाट्य युक्तियों एवं प्रबल प्रमाणों द्वारा इस मत की पुष्टि की। मत मतान्तरों की पोल खोल कर उनका सत्य स्वरूप लोगों के समक्ष रक्खा और लोगों को उनके कुचक्र में फंसने से सावधान किया। धर्म के सच्चे स्वरूप का दिग्दर्शन कराया। नारी को उसका उचित स्थान दिलाया तथा उसे वेद पाठ का अधिकारी बतलाया। ऋषि के सिंहनाद से संसार में एक क्रान्ति आई।

महर्षि दयानन्द का मिशन आगे भी चलता रहे अतः बहुत से व्यक्तियों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि वे किसी ऐसी संस्था का निर्माण करें जो उनके वेद प्रतिपादित उद्देश्यों और मन्तव्यों का प्रचार और प्रसार करती रहे। अपने भक्तों के आग्रह पर महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की। महर्षि दयानन्द को ही नहीं संसार के बड़े बड़े व्यक्तियों को आर्य समाज से बड़ बड़ी आशायें थी। अमेरीका के सुप्रसिद्ध दार्शनिक एण्ड्रयू जैक्सन ने अपनी आशाओं को व्यक्त करते हुए लिखा था—

"मैं एक अग्नि देख रहा हूँ जो सर्व व्यापक है। वह प्रेम की अग्नि है जो समस्त विद्वेष को भस्मसात् करने के लिये प्रज्वलित हो रही है। अमेरीका के क्षेत्रों अफ्रीका के बड़े स्थलों, एशिया के पर्वतों योरुप के विशाल राज्यों और राष्ट्रों में इस अग्नि की ज्वालाएं मुझे दृष्टिगोचर हो रही है... इस अनन्त अग्नि को जो निश्चय ही संसार भर के राज्यों, साम्राज्यों और शासन सम्बन्धी दोषों का सामना करेगी, देख कर मैं अत्यन्त हर्षित हो रहा हूं और उत्साह से जीवन धारण कर रहा हूँ..." इत्यादि।

परन्तु आज के आर्य समाज को देखकर आश्चय होता है। क्या आज का समाज वही समाज है जिसके लिये एण्ड्र्यू जैक्सन ने उपर्युक्त शब्द कहे थे। हम क्या थे और क्या हो गये, आइये तनिक अपनी अवस्था का अवलोकन करें।

आर्य समाज का उद्देश्य विश्व प्रेम और भ्रातृभाव का प्रचार तथा प्रसार करना था। आर्य समाजों में यह भजन बड़े प्रेम से गाया जाता था—

समाजों में उलफत की गंगा बहा दो।

परन्तु आज आर्य समाजों में द्वेष की गंगा बह रही है। पार्टीबाजी, दलबन्दी, गुट बन्दी और धड़ेबन्दी बढ़ रही हैं। आज जो व्यक्ति एक बार अधिकारी बन जाता है वह अपनी गद्दी को छोड़ना नहीं चाहता उसी पद पर चिपटा रहना चाहता है। यदि किसी प्रकार से चुनाव में उस की पराजय हो जाये तो वह एक नई पार्टी का निर्माण करता है और अगले चुनावों में दूसरी पार्टी को गिरा कर सत्तारूढ़ होना चाहता है। परिणाम स्वरूप अनेक दल, गुट, और पार्टियां बनी हुई है।

इन पार्टियों के कारण फूट, वैमनस्य, ईर्ष्या और द्वेष बढ़ रहा है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में मैं तो यही प्रार्थना करूंगा—

"आपस की फूट से कौरव पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है, न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख सागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन, गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चल कर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राज रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाये।"

अपने आपको आर्य कहने वालो! महर्षि के इन शब्दों पर गम्भीरता पूर्वक विचार कीजिये और दुर्योधन के मार्ग को छोड़ आर्य मार्ग का अवलम्बन कीजिये। इस महा सम्मेलन के अवसर पर वैर भाव और पारस्परिक विद्वेष को भुला कर एक दूसरे को गले लगाइये और अपने प्रेम का परिचय दीजिये।

आज ये गुरुकुल और डी० ए० वी० स्कूल आर्य समाज के ऊपर भार बने हुए हैं। वस्तुतः इन्हें दयानन्द कुल या स्कूल नहीं कहा जा सकता। ये तो ईसाकुल हैं। कारण स्पष्ट है स्कूलों में वेद और ऋषि द्वारा प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्तों की शिक्षा नहीं दी जाती हां ऋषि की शिक्षा के विरुद्ध आचरण अवश्य होता है। महर्षि लिखते हैं—

"विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिये—स्त्रियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिये—स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों को पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे।"

आज डी० ए० वी० और हंसराज कालिजों में सह शिक्षा हो रही है। महर्षि दयानन्द के नाम पर स्थापित स्कूल और कालिजों में उनके ही सिद्धान्तों का हनन। "किमाश्चर्यमतः परम्"

इस का परिणाम क्या होता है। स्कूलों से लड़कियां भगाई जाती हैं इतना ही नहीं कालिजों में व्यभिचार होता है। स्कूल कालिजों में अंडे और मांस पकें और छात्र खायें क्या यह दुःख और लज्जा की बात नहीं ?

अब भारत स्वाधीन है और दुर्भाग्यवश, यह Secular state है। शिक्षा का कार्य राज्य स्वयं कर ही रहा है अतः इन डी० ए० वी० स्कूलों और साथ ही गुरुकुलों को भी बन्द कर देना चाहिये। गुरुकुलों में भी अब स्वामी श्रद्धानन्द अथवा स्वामी दर्शनानन्द जी का आदर्श नहीं रहा है। आज ज्ञान की महत्ता नहीं है डिगरियों की महत्ता हो गई है। गुरुकुलों से निकलने वाले विद्यार्थियों के सम्बन्ध में एक पद्य गाया जाता था—

आयेंगें खत अरब से लिखा यह जिन में होगा।
गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है॥

आज गुरुकुल के विद्यार्थी से यह आशा करना दुराशा मात्र है अतः इन संस्थाओं को बन्द कर इन पर होने वाले व्यय को वेद प्रचार में लगाइये इसी में कल्याण है।

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन काल में काशी और मिर्जापुर में वैदिक पाठशालाओं की स्थापना की थी परन्तु जब उन्होंने देखा कि इन पाठशालाओं से उनका उद्देश्य पूरा नहीं होता तो उन्होंने पाठशालाओं को तोड़ दिया। मैं सम्मेलन के अधिकारियों से प्रार्थना करूंगा कि वे इस विचार समस्या पर गम्भीरता पूर्वक करें और इन स्कूल और गुरुकुलों को तोड़कर ऋषि के सच्चे अनुयायी होने का परिचय दें।

वेद प्रचार का दायित्व आर्य समाज के कन्धों पर है परन्तु आर्य समाज ने अपने इस उत्तरदायित्व को सर्वथा भुला दिया है। वेद के सम्बन्ध में आर्य समाज की स्थिति निम्न कार्टून से जो कुछ इसी प्रकार किसी पत्र में छपा था, बिल्कुल ठीक मिलती है—

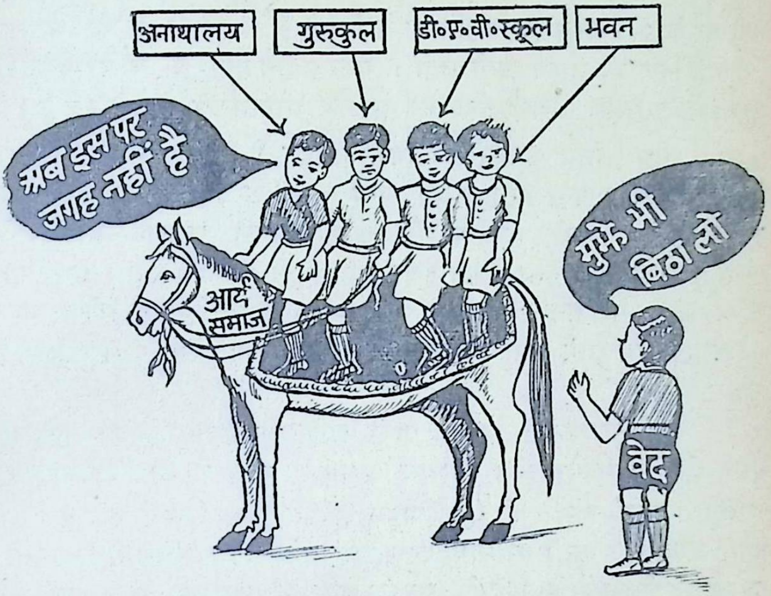

आर्य समाज को स्थापित हुए लगभग ८० वर्ष हो गये परन्तु ८० वर्ष में भी हम वेद के सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सके। वेद हमारा धर्म ग्रन्थ है परन्तु ८० वर्ष में भी वेद का ऐसा शुद्ध संस्करण आर्य समाज नहीं दे पाया है जिस के हृदय पर हाथ रखकर कहा जा सके कि इस संस्करण में कोई अशुद्धि नहीं है। मुसलमानों के यहां दो रुपये से लेकर २००) रुपये तक की कुरान मिल सकती है और ईसाइयों ने सवा-चार रुपये से लेकर २००) रुपये तक के बाइबल के विभिन्न शुद्ध एवं आकर्षक संस्करण छापे हैं। हम इस विषय में कितने पीछे हैं।

महर्षि दयानन्द का वेद भाष्य सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्कृष्ट है। श्री अरविन्द घोष ने महर्षि के भाष्य पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा—

In the matter of vedic interpretation, I am convinced that whatever may be the final vedic interpretation, Dayananda will be honoured as the first discoverer of the right clues.

(Dayananda and the Vedas P. 60)

वेद भाष्य के सम्बन्ध में मेरा ऐसा निश्चय है कि चाहे अन्तिम भाष्य कुछ भी हो परन्तु दयानन्द सर्वप्रथम सच्चा मार्ग दर्शक हैं।

ऋषि के इस भाष्य का विविध भाषाओं में अनुवाद होना चाहिए था परन्तु अन्य भाषाओं में अनुवाद की बात ही दूर रही हिन्दी भाषा में भी इसके २-३ संस्करण कठिनता से निकले हैं। स्वामी जी के भाष्य की मांग है फिर भी भाष्य छपते नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि परोपकारिणी सभा के प्रबन्धक अपने कर्तव्य को भूल कर आराम की नींद ले रहे हैं।

आर्य समाज का साहित्य विभाग बहुत ही ढीला, ढाला, थोदा और लचर है। आज अन्य मतावलम्बी आर्य समाज के विरुद्ध दनादन साहित्य लिख रहे हैं। आर्य समाज के और ऋषि दयानन्द पर खूब आक्षेप किये जाते हैं परन्तु आर्य नेताओं का इधर ध्यान नहीं। हो भी कैसे ? पार्टी बाजी से अवकाश मिले तब न ? आज आवश्यकता हैं ऐसे विद्वानों को बैठाने की जो वैदिक धर्म आर्य समाज और ऋषि दयानन्द पर होने वाले आक्षेपों का उत्तर दे सकें।

आर्य समाज को अपनी सारी शक्ति केन्द्रित करके एक सुदृढ़ और गीता प्रेस गोरखपुर जैसे विशाल प्रकाशन विभाग की स्थापना करनी चाहिए। आर्य समाज की शक्ति महान् है परन्तु वह बिखरी पड़ी है। आज आर्य जगत् में पचासों साप्ताहिक और मासिक पत्र पत्रिकायें निकलती है परन्तु इनकी संख्या क्या है? 'गुरुकुल पत्रिका' लगभग ३०० छपती है। 'आर्योदय' एक हजार से कम ही निकलता है। यही दशा 'आर्य सेवक' और 'आर्य मार्तण्ड' की भी है। और तो और आर्य जगत् की शिरोमणी सभा का पत्र 'सार्वदेशिक' ८००-९०० छपता है। हां 'आर्य मित्र' और 'आर्यवर्त्त' लगभग २००० की संख्या में छपते हैं। एक व्यक्ति सभी पत्रों को नहीं खरीद सकता हां यदि यह शक्ति एक स्थान पर केन्द्रित हो जाए तो "कल्याण" जैसा पत्र निकालना कोई कठिन बात नहीं है। आवश्यकता है इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने की और अपने साहित्य विभाग को दृढ़ बनाने की।

राजनीति धर्म का एक अंग है। यदि राजनीति कोई चिड़िया है तो धर्म वह पंख है जिसके द्वारा वह उड़ती है। वेद में राजनीति का सुन्दर वर्णन हैं। आर्य समाज वेद का प्रचारक है। अतः आर्य समाज को राजनीति में भाग लेना चाहिए। महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित सत्यार्थप्रकाश का छटा समुल्लास बहुत उपेक्षित रह चुका अब तो उसकी सुध लो। महर्षि ने राज्यार्य सभा बनाने का निर्देश किया है इस सम्मेलन के अवसर पर इस राज्यार्य सभा को क्रिया शील हो ही जाना चाहिए।

कांग्रेस के १३-१४ वर्ष के शासन से जनता संतुष्ट नहीं है। इन १३-१४ वर्षों में भ्रष्टाचार, अनाचार अत्याचार और पाखण्ड बढ़ा ही है घटा नहीं। प्रतिदिन समाचार पत्रों में बलात्कार आत्म हत्याओं और लूटमार की सूचनायें छपती हैं। घूंस खोरी और चोर बाजारी बढ़ रही है। चरित्र का पतन होता जा रहा हैं। वाममार्ग मद्य, माँस, मछली और मैथुन का प्रचार बढ़ रहा हैं। मुसलमानों की प्रवृत्तियां पुनः उभर रही हैं। ईसाई मिश्नरियों के जाल बिछ रहे हैं। सूर्योदय से पूर्व लाखों गोओं के ऊपर कटारी चल जाती है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में गो आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है।" सचमुच आज प्रजा मर रही है। जबरदस्ती हमारे ऊपर भाषा थोपी जा रही है और आर्य समाज सो रहा है।

भारत माता की बिन्दी (काश्मीर) पौंछी जा रही है। चीन ने भारत का काफी भाग दबा लिया है और हमारी सरकार को कोई चिन्ता ही नहीं। इन्होंने तो चारवाक का सिद्धान्त अपनाया हुआ है ऋण लो और घी पीओ। संसार का कुछ भी हो। आज दूसरे राष्ट्रों से ऋण लिया जा रहा है। चाणक्य ने कहा है—

ऋणकर्ता पिता शत्रुः

राजा और प्रजा का पिता पुत्र सम्बन्ध तो प्रसिद्ध ही है, अतः ऋण लेने वाला राजा शत्रु है। हमारे साथ भी शत्रता की जा रहो है।

एक बात और कांग्रेस लुके छुपे बौद्ध मत का प्रचार कर रही है स्कूल और कालिजों में बौद्ध प्रतिमाएं स्थापित की जा रही हैं कांग्रेस द्वारा अशोक चक्र का अपनाया जाना इसी बात का अन्य प्रमाण है। बुद्ध जयन्ति मनाने के लिए पर्याप्त धन खर्च किया जाता है। जिस बौद्धमत ने भारत-वासियों को कायर और भीरू बनाया आज वही मत फिर पनप रहा है।

केवल मात्र प्रस्ताव पास करने से न गोवध बन्द होगा और न ही ईसाइयों का कुचक्र रुकेगा न वैदिक धर्म का प्रचार और प्रसार होगा। तनिक सोचिये तो सही इस्लाम का प्रचार कैसे हुआ? ईसाइयत कब फैली? बौद्ध धर्म का विस्तार कब हुआ? जब राज्य सत्ता इनके हाथों में आई।

वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए संसार को स्वर्गधाम बनाने के लिए देश को इसका प्राचीन गौरव एवं वैभव पुनः प्राप्त कराने के लिए आर्य समाज को राजनीति में सामूहिक रूप से भाग लेना ही चाहिए अन्यथा वाममार्ग बढ़ेगा, और देश के ऊपर आपत्तियां आयेंगी।

एक समय था जब आर्य समाज सब से आगे था। परन्तु आज आर्य-समाज साहित्य और समाचारपत्र दोनों में नहीं है। आज महर्षि दयानन्द की आशा और मन्शाओं की होली हो रही है, महर्षि का उत्तराधिकारी आर्य समाज पथ भ्रष्ट हो रहा है। गुरुदत्त विद्यार्थी का त्याग और तप व्यर्थ जा रहा है। पं० लेखराम जी और श्रद्धानन्द जी की वाटिका उजड़ रही है। लाला लाजपतराय की लाज और पत जा रही है और महात्मा हंसराज जी का सर्वस्व लुट रहा है। हम कहां भटक गये ? किधर जाना था कहां चल दिये। आर्य नेताओं और सभासदों ! क्या आर्य समाज को इसी पथ पर बढ़ने दोगे—

क्या पतन देखा करोगे आर्यों बैठे हुए।

निराश होने और घबराने की आवश्यकता नहीं—

शानदार था भूत भविष्य भी महान् है।
सम्भल जाय यदि जो कि वर्त्तमान है॥

खड़े हो जाइये लंगर लंगोटे कस लीजिये। वेद रूपी ज्योति लेकर कूद पड़िये अन्याय, अनाचार, पाप, पाखण्ड और दम्भ से लड़ने के लिए। कमर कस लीजिये आर्य समाज में आई हुई शिथिलता को दूर करने के लिए, आर्य समाज के खोये हुए गौरव एवं वैभव को पुनः लौटाने के लिए। और अन्त में मैं प्रभु से भी यही प्रार्थना करूंगा—

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्।
पुनर्नो नष्ट माजतु सं नष्टेन गमेमहि॥ अथर्व ७। ९४॥

परमात्मा अपना कृपापूर्ण वरद हस्त हमारे ऊपर रक्खे जिस से हमारा खोया हुआ बल और वैभव पुनः प्राप्त हो और उस वैभव को प्राप्त कर हम मिले रहें।

"विद्यार्थी"

नवम आर्य महासम्मेलन पर
बिकने वाली
भक्तिभाव से पूर्ण नई पुस्तक
★ सन्ध्या विनय ★
सन्ध्या के प्रत्येक मन्त्रार्थ-पदार्थ
करके मन्त्र के भाव की भक्तिमय प्रार्थना लिखी गई मूल्य १)

स्वामी दयानन्द का राष्ट्र बोध

[ले०—सत्यदेव विद्यालङ्कार]

[विद्वान् लेखक ने अनेक उद्धरण और घटनाओं का उल्लेखकर महर्षि दयानन्द के राष्ट्रवादी स्वरूप का संक्षिप्त परन्तु अति सार गर्भित चित्रण कर वर्तमान आर्यों को उनके सच्चे स्वरूप को समझने तथा उसके प्रचार और प्रसार पर बल दिया है। वस्तुतः ऋषि दयानन्द के राष्ट्रवाद को भूल जाना कृतघ्नता नहीं तो और क्या है ? इस लेख को ध्यान पूर्वक पढ़कर हमें अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होना चाहिये।]

सम्पादक

'कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा, मत मतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराए का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय एवं दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है।' स्वामी दयानन्द के ये शब्द दिल्ली आर्य सम्मेलन के अध्यक्ष स्वर्गीय डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने जब पढ़े थे तब वे गद्गद् हो गये थे। उन्होने स्वीकार किया था कि वे आर्य समाज को एक धार्मिक संस्था समझते थे और स्वामी दयानन्द को उन्होंने केवल समाज सुधारक धार्मिक नेता के रूप में देखा था। ये पंक्तियां पढ़ कर उन्हें उनके सम्बन्ध में अपना पुराना अभिमत बदलना पड़ गया। स्वामी दयानन्द की देश भक्ति, राष्ट्रप्रेम और उत्कृष्ट राष्ट्रीय भावना की सराहना करते कभी थकते नहीं थे।

शिवरात्रि एक धार्मिक त्यौहार है उस दिन व्रत, उपवास, जागरण तथा पूजन आदि का अनुष्ठान विशुद्ध धार्मिक दृष्टि से किया जाता है। स्वामी दयानन्द का मूल नाम मूलशंकर था। मूलशंकर ने मन्दिर में शिवलिंग पर चूहे को चढ़ते और प्रसाद खाते हुए जब देखा तब उसके हृदय में कौतुकपूर्ण जिज्ञासा पैदा हुई और उससे प्रेरित होकर वह गौतम बुद्ध की तरह घर से निकल गया। इस जिज्ञासा भावना ने ही उसको स्वामी दयानन्द बना दिया। परन्तु यह घटना उनके जीवन की एकाकी ही नहीं है। जिन घटनाओं के तारतम्य से उनके महान् जीवन का निर्माण हुआ उसको भुलाकर केवल इस एक घटना में उलझ जाने का दुष्परिणाम यह

हुआ कि समस्त आर्य समाज और आर्य समाजी भी केवल मूर्तिपूजा के खण्डन में उलझ कर रह गये।

स्वामी दयानन्द का महान् जीवन उनकी आँखों से ओझल हो गया। उनके उस राष्ट्रबोध का उनके लिये प्रायः कुछ भी न रहा, जो उनके जीवन सन्देश का सार है और जिसके पीछे उन्होंने सर्वमेध यज्ञ रच डाला था। जो लोग शिवरात्रि की इस घटना को ही सब कुछ मान बैठे हैं उनकी दृष्टि इतनी संकीर्ण बन गई कि वे आर्य समाज के संस्थापक की राष्ट्रव्यापी उदात्तभावना तक पहुँच नहीं सकते। इतिहास और राजनीति के विद्यार्थी को किसी घटना विशेष को ही सब कुछ नहीं मान लेना चाहिए; अपितु घटनाचक्र के लम्बे तारतम्य को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के प्रकाश में समझने का प्रयत्न करना चाहिए। किसी घटना विशेष पर एकाकी दृष्टि से विचार करने का सब से बड़ा दुष्परिणाम यह होता है कि विचार करने वाले की दृष्टि एकांगी बन जाती है। स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में आर्य समाजियों की दृष्टि इसी कारण एकांगी बन गई है!

१७५७ में पलासी के मैदान में भारतवासियों को अंग्रेजों के हाथ जो पहली पराजय भोगनी पड़ी थी और जिस पराजय से पूरी दृढ़ता के साथ अंग्रेजों के पैर भारत में जम गये थे, उसकी प्रतिक्रिया के रूप में बंगाल में राजा राममोहन राय, ब्रह्म समाज तथा स्वामी विवेकानन्द और श्री राम कृष्ण मिशन आदि का प्रादुर्भाव हुआ था। दक्षिण में इसी प्रकार जो चेतना सत्यशोधक समाज तथा प्रार्थना समाज और उनके महान् नेताओं के रूप में उद्दीप्त हुई थी उसको बम्बई में मराठा साम्राज्य की पराजय की प्रतिक्रिया कहा जाना चाहिये। इसी प्रकार उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द और आर्य समाज का आविर्भाव १८५७ की महान् राज्य क्रान्ति के विफल होने की प्रतिक्रिया है। जो लोग इन महान् उत्क्रान्तियों के सम्बन्ध में केवल एकांगी दृष्टि से विचार करते हैं वे उनको धार्मिक पुर्नजागरण का रूप देकर सन्तोष मान लेते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि हमारे देश में स्वाभिमान, स्वदेशाभिमान तथा राष्ट्रीयता का जन्म इसी धार्मिक पुर्नजागरण के गर्भ में से हुआ है। जिस राष्ट्रीय चेतना को कुचल कर अंग्रेज कूटनीतिज्ञों ने देशवासियों को पूरी तरह नपुंसक बना देने में कुछ भी उठा न रखा था वह इस धार्मिक पुर्नजागरण के माध्यम से ही दोबारा प्रस्फुटित हो सकी थी। स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द का जीवन कार्य इस प्रक्रिया की प्रबल साक्षी है। दोनों के रग रग में देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम की भावना व्यापी हुई थी। स्वामी दयानन्द का महान् ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश

इसका प्रबल प्रमाण हैं। उनके अन्य ग्रन्थ भी राष्ट्रप्रेम और देश भक्ति की उत्कट भावना से ओतप्रोत हैं। वैदिक प्रार्थनाओं को राष्ट्रीय रूप देने वाले और ईश्वर को राष्ट्रीय संबोधनों से स्मरण करने वाले वे पहले महापुरुष हैं। उनकी छोटी सी प्रार्थना पुस्तक "आर्याभिविनय" राष्ट्रीय प्रार्थनाओं से ओतप्रोत है।

अंग्रेज कूटनीतिज्ञों ने भारतीय राष्ट्रवाद का गला घोटने के उद्देश्य से ही हमारे देश में ईसाई धर्म के प्रचार और अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार का देश व्यापी सिलसिला शुरू किया था। उसकी इस दुर्नीति का जैसा भंडाफोड़ स्वामी दयानन्द ने स्वदेश में और स्वामी विवेकानन्द ने विदेशों में किया उसका शुभ परिणाम यह हुआ कि उनकी राक्षसी महत्वकांक्षाएं पूरी न हो सकीं और भारत के सम्बन्ध में पश्चिमी लोगों के विचार एकाएक बदल गये। इस लेख के प्रारम्भ में स्वामी दयानन्द का जो उद्धरण दिया गया है, वह उनके महान् ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में से लिया गया है। उसका एक-एक शब्द मानो महारानी विक्टोरिया की उस घोषणा के विरोध में लिखा गया है, जिसका एकमात्र उद्देश्य भारतीयों को वरगलाना था। महारानी विक्टोरिया ने उस घोषणा में यह विश्वास दिलाया था कि उनके राज्य में किसी के भी धर्म में कोई हस्तक्षेप न किया जायगा, अपने व पराये का भेदभाव न बरता जाएगा, भारतीय प्रजा के प्रति माता पिता के समान कृपा, न्याय एवं दया दृष्टि से व्यवहार किया जायगा और अंग्रेजी राज्य को भारतीयों के लिए पूरी तरह सुखदायक बनाया जायगा। उस घोषणा के विरोध में ही स्वामी दयानन्द ने अपने देशवासियों को सावधान करते हुए ऊपर के शब्द लिखे थे। सम्पूर्ण सत्यार्थ प्रकाश में सर्वत्र ऐसी ही भावनायें प्रकट की गई हैं। अपने देश के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि यह "आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा देश नहीं है। इस लिए इस भूमिका नाम सुवर्ण भूमि है क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारस मणि पत्थर सुना जाता है वह बात झूठी है परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेश छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।" कितने ही ऐसे उद्धरण दिए जा सकते हैं। छठा समुल्लास राजनीति प्रधान है और उसमें राष्ट्रवाद के ऊंचे से ऊंचे सिद्धान्तों की व्याख्या स्वदेश की दृष्टि से की गई है। अपने देश के लिए स्वराज्य ही नहीं अपितु सार्वभौम अखण्ड चक्रवर्ती साम्राज्य की कल्पना करने वाले वर्तमानयुग में पहले महापुरुष स्वामी

दयानन्द हैं। उन्होंने देशवासियों के सम्मुख मानव जीवन के दो महान् प्रयोजन अपने वेद भाष्य में उपस्थित किये हैं। पहला है चक्रवर्ती साम्राज्य की प्राप्ति और दूसरा है विद्या प्रसार।

स्वामी दयानन्द के इस राष्ट्र बोध के अधिक विस्तार में न जाकर सूत्र रूप में उसके दो-एक मूलभूत तत्वों का निर्देश करना आवश्यक है। उनमें सबसे प्रमुख यह है कि आर्य कहीं बाहर से इस देश में नहीं आये। वे यहाँ के ही मूलनिवासी हैं। अपने देशवासियों को आर्य, अपने देश को आर्य-वर्त और अपने समाज को आर्य समाज कहना कोरी कल्पना ही नहीं है। उसमें उत्कृष्ट स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान निहित है। वेद को ईश्वरीय ज्ञान तथा सबसे पहले इस देश में ही प्रकट हुआ मानना और अपने इसी देश से मानव सृष्टि का प्रारम्भ बताना भी उनकी देशभक्ति पूर्ण भावना का सूचक है। सभी देशों के निवासी अपने अपने देश के सम्बन्ध में कोई न कोई अभिमान रखते हैं। हमारा सबसे बड़ा अभिमान यही है कि संसार के समस्त मानवों ने सभ्यता का पाठ हमारे ही देश से ग्रहण किया है। स्वामी दयानन्द ने जिस आग्रह के साथ इस तथ्य की स्थापना की, ठीक उसी आग्रह से स्वामी विवेकानन्द ने उसको अमरीका व युरोप जाकर प्रकट किया था। इस दृष्टि से स्वामी दयानन्द के महान् व मौलिक राष्ट्र बोध के सम्बन्ध में कुछ विचार किया जाना आवश्यक है। तभी हम उनकी महानता के दर्शन कर सकते हैं। अन्यथा उनको केवल एक धार्मिक समाज सुधारक के रूप में देखना और समाज की अन्य अनेक सम्प्रदायों के समान संकीर्ण साम्प्रदायिक संस्था मान लेना उनके प्रति सब से बड़ा अन्याय और सबसे बड़ी कृतघ्नता है।

स्वामी जी का देश प्रेम

ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज को सम्बोधित करते हुए ऋषि-वर कहते हैं—

'इसलिये जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्य समाज के साथ मिल कर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा उसकी उन्नति तन, मन, धन, से सब जने मिलकर प्रीति से करें।'

कैसा उत्कट देशप्रेम है।

आर्यसमाज: उपलब्धियों और भविष्य

[ले०-प्रो० भवानीलाल भारतीय एम० ए०, आर० ई. एस०
सिद्धान्त वाचस्पति]

[श्री भारतीय जी एक मंजे हुए विचारक हैं। विद्वान् लेखक ने अपने चिन्तन का परिणाम हृदय खोल कर रख दिया है। आवश्यकता है इन विचारों पर ध्यान देने की। क्या हम अन्तर्मुख होकर चिन्तन करेंगे ?] सम्पादक

उन्नीसवीं शताब्दी के महान् सुधारक और भारत के पुर्नजागरण के सूत्रधार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आज से लगभग ८७ वर्ष पूर्व सन् १८७५ में वम्बई में आर्य समाज की स्थापना की थी। आर्य समाज के पूर्व हीं बंगाल में ब्राह्मसमाज और महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज के द्वारा सुधार और संस्कार का महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ हो चुका था। स्वामी दयानन्द के समक्ष एक प्रस्ताव यह भी आया था कि नवीन संस्था को स्थापित करने की अपेक्षा ब्राह्मसमाज के माध्यम से ही यदि देशोन्नति के कार्य में योग दिया जाय तो श्रेष्ठतर होगा परन्तु वेद विषयक मान्यताओं में अन्तर होने के कारण ब्राह्मनेताओं से उनकी पटरी नहीं बैठी, फलत: आर्यसमाज को स्थापित करना आवश्यक हो गया।

यह वह युग था जब कि भारत राजनैतिक दृष्टि से ही पराधीन नहीं था, अपितु इसे सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से भी पूर्णतया पर-मुखापेक्षी बनाये रखने की सुदृढ़ योजना गौरांग प्रभुओं ने बना ली थी। यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि आर्य समाज की स्थापना के दस वर्ष पश्चात् राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का जन्म हुआ।

अपने जीवन की इस लम्बी अवधि में आर्य समाज ने अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। एक युग वह भी था जब आर्यसमाज ने धार्मिक सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति का अग्रदूत बनकर चतुर्मुख उन्नति का शंखनाद किया था। उस समय उसके क्रान्तिकारी कार्यक्रम तथा गतानुगतिकता एवं रूढ़िवादिता को समाप्त कर देने के लिये तत्पर उसके उत्साही अनुयायियों को कार्यक्षेत्र में उतरा देख कर लोगों को यह आशा होने लगी थी कि समस्त राष्ट्र के साँस्कृतिक नेतृत्व की क्षमता केवल आर्यसमाज में ही है।

वह युग समाज के शताब्दियों से जर्जर और रूढ़िग्रस्त ढांचे को नष्ट कर उसके स्थान पर एक सशक्त और स्थायी समाज व्यवस्था स्थापित करने का युग था। युग की मांग को पूरी करने के लिये आर्यसमाज ने यथाशक्य प्रयास किया। देश के सामाजिक जीवन में प्रजातन्त्र प्रणाली के आधार पर कार्य संचालन आर्य समाज की सबसे बड़ी देन है। और आर्य समाज के अनुयायियों को इस बात का गर्व होना चाहिये कि उन्होंने अपनी संस्था के जनताँत्रिक ढांचे को स्वीकार करते समय पश्चिम से तनिक भी प्रेरणा नहीं ली। यह दूसरी बात है कि आज वही प्रजातन्त्र प्रणाली आर्यसमाज के लिये कहीं २ अभिशाप सिद्ध हो रही है जब कि केवल वोटों के बल पर सिद्धान्त और सदाचार से हीन व्यक्ति समाज के अधिकारी बन बैठते हैं, और विद्वानों तथा संन्यासियों को उनका मुंह ताकना पड़ता है।

आर्य समाज के इतिहास में एक युग वह भी आया जिसे 'संस्थावाद का युग' कह सकते हैं। प्रचलित शिक्षा पद्धति को देश के सुयोग्य नागरिकों के निर्माण में बाधक समझकर आर्यसमाज ने अपने तत्वावधान में दो प्रकार की शिक्षण संस्थायें चलाई। डी. ए. वी. कालेज लाहौर की स्थापना ऋषि दयानन्द के स्मारक के रूप में की गई। डी० ए० वी० संस्थाओं में जो शिक्षा दी जाती थी। वह यद्यपि राजकीय शिक्षणालयों में दी जाने वाली शिक्षा से अधिक भिन्न नहीं थी, फिर भी राष्ट्रभाषा को शिक्षा का माध्यम बना कर पाठ्य विषयों के रूप में क्षात्र वर्ग में स्वधर्म, स्वदेश और स्वसंस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करने में इन कालेजों को अभूतपूर्व सफलता मिली।

डी० ए० वी० कालेज के द्वारा वेद और संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य को पूरा होता न देख कर महान् शिक्षा-शास्त्री आचार्य श्रद्धानन्द ने गुरुकुलों का प्रवर्तन कर प्राचीन शिक्षा पद्धति को मूर्तिमान करने का प्रयास किया। नवयुग की सभी श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को आत्मसात् करके भी गुरुकुल पुरातन युगीन संस्कृति की याद ताजा करते रहे। गुरुकुलों के पाठ्यक्रम में वेद, वेदांग और संस्कृत के पुराने साहित्य को तो स्थान मिला ही परन्तु अर्थशास्त्र, राजनीति, मनोविज्ञान, दर्शन, भौतिक विज्ञान आदि की भी उपेक्षा नहीं हुई। हिन्दी माध्यम से तो शिक्षा दी ही जाती थी। गुरुकुलों का ध्येय केवल पुस्तकीय विद्यादान तक ही सीमित नहीं रहा। छात्रों के शारीरिक, मानसिक, आत्मिक तथा सामाजिक विकास की ओर पूर्ण ध्यान दिया गया। गुरुकुल शिक्षा ने देश और धर्म को अनेक निष्ठावान सेवक और कार्यकर्ता प्रदान किये हैं, इसे कौन विस्मृत कर सकता है?

केवल शिक्षा संस्थायें ही नहीं, अनाथालय, विधवाश्रम आदि अन्यान्य समाज की दृष्टि से उपयोगी संस्थाओं का भी संगठन और संचालन आर्यसमाज के नेतृत्व में हुआ। ऐसा प्रतीत होता था मानो कर्मस्रोत खुल गया है। समाज सेवा की यह प्रवृत्ति दुष्काल, बाढ़, महामारी आदि दैवी आपदाओं में तो साकार ही हो उठती थी, परन्तु सामान्य रूप से भी दलितोद्धार, नारी जागरण आदि के रूप में समय २ पर प्रकट होकर कार्यकर्ताओं की कर्मठता और उनके सेवाभाव की सूचना देती रहती थी।

इसे हम आर्य समाज का स्वर्णयुग कह सकते हैं। चारों ओर उत्साह और उमंग का वातावरण था। देश, जाति और धर्म के लिये कुछ कर गुजरने की भावना लोगों में काम कर रही थी। इसी उत्साह की लहर में आर्यसमाज को अनेकों अग्नि परीक्षाओं में से गुजरना पड़ा, परन्तु अपने अनुयायियों की दृढ़ता और सिद्धान्त प्रेम के कारण वे सभी विपत्तियों को पार करने में सफल रहे, जिनके कारण एक बार तो इस महान् संस्था का अस्तित्व ही शंका का विषय बन गया था। हैदराबाद दक्षिण का विराट् सत्याग्रह आन्दोलन और सिंध में सत्यार्थ प्रकाश की जब्ती का आन्दोलन हमारे प्रगति पथ को अंकित करने वाले दृढ़ चरण चिह्न हैं।

आर्य समाज के विगत गौरवपूर्ण अतीत का यह सिंहावलोकन मात्र है। आज परिस्थितियां बदल चुकी हैं। विज्ञान की आश्चर्यजनक उन्नति ने हमारी आस्थाओं और धारणाओं को डावांडोल कर दिया है। धर्म और आध्यात्म की आवश्यकता और उपयोगिता के प्रति मानव संशयग्रस्त हो गया है। ऐसी संक्रमणकालीन स्थिति में यदि आर्य समाज का जराजीर्ण ढांचा भी चरमरा उठे तो आश्चर्य ही क्या? जिस प्रकार मनुष्य की आयु को हम निश्चित मानते हैं उसी प्रकार संस्थाओं और आन्दोलनों की उन्नति और विकास करने के निश्चित दिन होते हैं।

महाकाल के इस निर्मम नियति चक्र में पिसे जाकर न जाने कितने विराट जन आन्दोलन समाप्त हो गये और हो रहे हैं। ऐसी अवस्था में यदि आर्य समाज के नेता और संचालक यह सोचते हों कि उन्होंने अपनी संस्था को संजीवनी बूटी पिला कर अमर कर दिया है तो वे भ्रम में हैं। आर्य समाज की मौलिक धारणायें और उसके प्रवर्तक के सिद्धान्त और मन्तव्य अजर तथा अमर हो सकते हैं परन्तु इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि संस्था और आन्दोलन के रूप में आगामी दो शताब्दियों में आर्य समाज जीवित रहे ही। हमारे सामने ब्राह्मसमाज का उदाहरण विद्यमान

है। राजा राममोहन राय के सुधार सम्बन्धी कार्य भारत के इतिहास में अपनी अमर छाप छोड़ गये परन्तु उनके द्वारा प्रवर्तित ब्राह्मसमाज आज कहां है? बंगाल में उसकी दो चार शाखायें नाम मात्र के लिये भले ही विद्यमान हों अन्यथा उन्नसवीं शताब्दी का यह सजीव, प्रगतिशील आन्दोलन आज इतिहास के पृष्ठों में ही शेष रह गया है। यह अवश्य है कि आर्यसमाज राष्ट्रीयता की सुदृढ़ भिति पर टिका होने के कारण कुछ अधिक दीर्घजीवी हो सकता है, परन्तु कौन कह सकता है कि कालान्तर में आर्य समाज की भी यही गति न हो। क्रूर काल के कठोर थपेड़ों से कौन बचा है?

अतः निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि आज आत्म निरीक्षण और आत्मालोचन की सर्वोपरि आवश्यकता है। हम एक क्षण के लिये अन्तर्मुखी होकर सोचें—हमारे संगठन में क्या २ दोष आ गये हैं? क्यों हमारी विविध प्रवृत्तियां आलस्य, प्रमाद और अवसाद के कारण कुण्ठित हो गई हैं? अपने आदर्शों के अनुकूल हम स्वयं अपने को ही नहीं बना सके तो विश्व को आर्य बनाने की बात करना विडम्बना नहीं तो और क्या है? धियो यो नः प्रचोदयात्।

वेद वैदिकधर्म के आधार हैं वेदों के प्रचार से ही "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का उद्घोष क्रियान्वित किया जा सकता है।

वेदों का सुन्दर आकर्षक रूप

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थमाला के चार पुष्प

ऋग्वेद शतकम् यजुर्वेद शतकम्

इनमें यजुर्वेद और ऋग्वेद के महर्षि दयानन्द के भाष्य से चुने सौ २ मन्त्रों का संकलन किया गया है। प्रत्येक मन्त्र पर शीर्षक भी दे दिया गया है। मूल्य १) प्रति

सामवेद शतकम् अथर्ववेद शतकम्

इन शतकों में आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० तुलसीराम स्वामी और पं० क्षेमकरण दास जी के भाष्य से सौ सौ मन्त्र दिये हैं। मूल्य १) प्रति

दोनों ही शतक बहुत बढ़िया कागज पर बड़े ही आकर्षक ढङ्ग से मोती से अक्षरों में छपाये गये हैं। सुन्दर नयनाभिराम आवरण से सुसज्जित दोनों ही पुष्प सुवासित हो उठे हैं। आर्यों के घरों में वेद अवश्य होना चाहिये अतः शीघ्र इन वेद शतकों को मंगाइये।

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क, दिल्ली।

सुराज्य की स्थापना और आर्य समाज

[सुरेशचन्द वेदालंकार एम. ए., एल. टी., डी. वी. कालेज, गोरखपुर]

—❀❀❀—

[भारत स्वतन्त्र हो गया परन्तु स्वाधीन नहीं हुआ। स्वराज्य हो गया परन्तु सुराज्य नहीं आया। सुराज्य स्थापना में आर्य समाज किस प्रकार योग दे सकता है इस विषय में विद्वान् लेखक के विचार मननीय, पठनीय तथा आचरणीय हैं।]

—सम्पादक

भारतवर्ष को स्वराज्य प्राप्त हुए आज १३-१४ वर्ष हो गये परन्तु इन वर्षों में हमने जो आशायें और विकास की कामनायें की थी वह पूर्ण रूप से असफल सिद्ध हुईं। क्यों? आज यह प्रश्न प्रत्येक समझदार भारतीय के सामने उपस्थित है। यदि हम इनके कारणों पर विचार करें तो मैं इन्हें दो भागों में विभक्त करूंगा। पहली बात तो यह है कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद विषमता को उत्पन्न करने वाले तत्वों ने देश की एकता को नष्ट करने में बहुत अधिक सफलता प्राप्त की। यह तत्व हैं प्रान्तीयता, जातियता भाषाभिमान और कांग्रेस के कर्णधारों की अनुचित नीति के फलस्वरूप उत्पन्न साम्प्रदायिकता। साम्प्रदायिकता का सब से बड़ा कारण मुसलमान हैं। मुसलमानों में आज भी ६० प्रतिशत मुसलमान हिन्दुस्तान में रहते हुए भी अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा, विश्वास और भावनायें पाकिस्तान के साथ रखे हुए हैं। उन्हें हिन्दुस्तान के विकास के प्रति कोई अभिरुचि नहीं और मैं दावे के साथ यह कह सकता हूँ कि अभी कम से कम १०० वर्ष तक इस देश के प्रति उनका रुख यही रहेगा। आज पाकिस्तान बनने के बाद भी वे नए पाकिस्तानों की कल्पना कर रहे हैं। वे समझते हैं नम्बर १ पाकिस्तान पंजाब, सिन्धु, फ्रेन्टियर, काश्मीर और बंगाल नं० २. पाकिस्तान पूर्वी पंजाब और दिल्ली नं० ३. आगरा, रुहेलखण्ड और नं० ४. हैदराबाद और भूपाल इत्यादि तथा इन पाकिस्तानों को मिलाने के लिए गलियारे। यह है उनकी योजना। परिणाम स्पष्ट है कि आज भी वे स्थान स्थान पर उपद्रव करके भारत तथा भारतीय नेताओं को अपमानित कर रहे हैं। अभी कुछ दिन पूर्व कुछ लोगों ने इस देश में सत्यार्थप्रकाश जब्ती की मांग की थी। वास्तव में यदि सत्यार्थप्रकाश जब्त किया जा सकता है तो कुरान को जब्त करना भी आवश्यक हो जायगा। क्योंकि मूर्तिपूजकों (हिन्दुओं) को काफिर मानकर उनकी हत्या को पवित्र कर्तव्य बनाने वाली पुस्तक क्या सत्यार्थप्रकाश की

अपेक्षा अधिक घातक नहीं ? वास्तव में मुसलमान जो इस देश में रहते हुए पाकिस्तान के प्रति अपनी भक्ति रखते हैं उन्हें यहां से चले जाना चाहिए और यदि षड्यन्त्रवश यहां रह रहे हों तो सरकार को उनके प्रति कड़ी कार्यवाही करनी चाहिए तथा जनता को भी उनसे सतर्क और उनके प्रति सावधान रहना चाहिए। हम तो समझते हैं कि आर्य समाज ही एक मात्र ऐसी संस्था है जो इन षड्यन्त्रकारी पाकिस्तानी मुसलमानों से देश की रक्षा कर सकती है और उसे इस दिशा में संगठित रूप से प्रयत्न करना भी चाहिए।

इसी प्रकार देश में अनेकता को पैदा करने वाली इसी श्रेणी की तीन वस्तुएं और हैं प्रान्तीयता, जातीयता और भाषाभिमान। भाषा के आधार पर प्रान्तों का निर्माण जहां भाषाभिमान को प्रकट करता है वहां वह प्रान्तीयता को भी बढ़ावा देता है और इन दोनों का मूल नेताओं के स्वार्थ और राजगद्दियां हैं। आर्य समाज को इस रोग की ओर भी ध्यान देना है। क्योंकि आर्य समाजी चाहे किसी भी प्रान्त और भाषा से संबंधित हो वह इन भावनाओं का विरोधी ही नहीं इनके प्रतिरोध में डटने वाला व्यक्ति है अतः इस दिशा में भी हमें कार्य करना है।

जातीयता के सर्वनाश का आन्दोलन सबसे पहले आर्य समाज ने चलाया। कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था जातीयता की भावना को समूल नष्ट कर सकती है। आज इस भावना ने कितना भीषण रूप धारण कर रखा है यह उत्तर प्रदेश और बिहार की राजनीति को देखने से समझ में आ सकता है। बिहार की राजनीति का आधार भूमिहर और राजपूत थे तो उत्तर प्रदेश में अब गुप्ता और सिंह मिलकर ब्राह्मणों और दूसरों का विरोध कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में आर्य समाज को जाति पाति तोड़कर मंडलों जैसी संस्थाओं का पुनर्निर्माण करना चाहिए। अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित करने चाहिए। आर्य समाज यदि इस दिशा में कदम उठाये, तो आज देश की जनता दहेज आदि बीमारियों से ऊब चुकी है और वह अवश्य आर्य समाज के नेतृत्व को स्वीकार करेगी। परन्तु समस्या तो यह कि बिल्ली के गले में घंटी बांधे कौन ? आर्यसमाजी स्वयं जाति में विवाह कर रहे हैं। उनके सामने कठिनाइयां हैं पर क्या ये कठिनाइयां वे स्वयं नहीं दूर कर सकते ? अतः आर्य समाज को देश की अनेकता को और उसमें बढ़ती हुई बुराइयों को स्वार्थ रहित होकर दूर करने का प्रयत्न करना है और यही उसके भविष्य के प्रोग्राम का अंग होना चाहिए।

दूसरी बात जो स्वराष्ट्र रक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है वह है चरित्र निर्माण। वास्तव में स्वतन्त्रता या स्वाधीनता शब्द का ही अर्थ है

कि जो राष्ट्र चरित्र की दृष्टि से उन्नत न रहेगा वह परतन्त्र हो जायगा। अंग्रेजी का एक शब्द है 'इण्डिपैन्डैंस' इण्डिपैन्डैन्स शब्द का अर्थ है अनधीनता। अनधीनता या स्वतन्त्रता अथवा स्वाधीनता शब्दों में अन्तर है। अनधीनता या इण्डिपैण्डैंस का मतलब है किसी के आधीन न रहना। अंग्रेज गए और हमने अपने को अनधीन किया। परिणामतः रेलों में बिना टिकट यात्रायें प्रारम्भ हुई, कोई ब्लैकमार्किटिंग आदि अपराधसे नहीं बचा, व्यापार में दूसरे को धोखा देना चतुर व्यापार कुशलता मानी जाने लगी, कचहरियों में घूस का बोलबाला हुआ, कम काम और अधिक दाम का रिवाज प्रचलित हुआ, खाद्य पदार्थों इत्यादि में मिलावटें शुरू हुई। अनधीन या इण्डिपैन्डैंस होने का यही परिणाम हमारे सामने आया। परन्तु भारतीय भाषाओं की दृष्टि से हमने उस दिन अनधीनता न प्राप्त करके स्वाधीनता प्राप्त की। स्वतन्त्रता, स्वराज्य और स्वाधीनता इन सब में 'स्व' का बन्धन अवश्य रखा। 'स्व' के बन्धन का अर्थ है अपने आप पर अपने २ द्वारा लगाया हुआ बन्धन। अर्थात् मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा ? क्या यह सुख मशीनों, उद्योगों, बाह्य उपकरणों एवं धन की वृद्धि से मिलेगा ? हमें तो ऐसा नहीं लगता। हमें यह सुख 'स्व' के आधीन रहने से मिलेगा। अर्थात् हम बाहर नहीं भीतर की ओर देखेंगे। इसको दूसरे शब्दों में कहा जाय तो हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को मिटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, स्वार्थ को परार्थ में परिवर्तित करो, परमेश्वर की सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकत्व में विश्वास करो तब हम 'स्व' के आधीन होंगे। याद रखिये तभी चरित्र निर्माण हो सकेगा। उच्छृंखलता पशु प्रवृत्ति है 'स्व' का बन्धन मनुष्य का स्वभाव है।

अतः आर्यसमाज को स्वराष्ट्र निर्माण के लिए मुख्य रूप से दो भावनाओं का प्रचार करना है और इस प्रचार की प्रथम सीढ़ी मानव का अपना घर ही होगा। देश में फैलती हुई अनेकता की भावनाओं का अन्त और दूसरी चरित्र निर्माण। यदि हमने इस दिशा की ओर अपना कदम बढ़ाया तो हम सफल हो सकेंगे अन्यथा आर्य समाज का भविष्य यहां सम्मेलनों तक ही अवरुद्ध हो जायगा। परन्तु आर्य समाज क्योंकि सदा से ही एक प्रगतिशील संस्था रही है अतः वह अवश्य समय की मांग को पूरा करेगी तथा प्रान्तीयता, जातियता, साम्प्रदायिकता एवं भाषाभिमान को समाप्त कर राष्ट्र के नवयुवकों को चरित्रवान् बनाने के लिए मार्ग प्रशस्त करेगी यह निश्चय है। और तब हमारा देश स्वर्ग बनेगा।

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

★ आर्य समाज क्या है ? ★

[श्री डा० सूर्यदेव शर्मा साहित्यलङ्कार एम. ए. एल. टी., डी. लिट्., अजमेर]

(१)

आर्य समाज ? अहो यह क्या है ? क्या कोई आन्दोलन है ?
अथवा सामाजिक सागर का विस्तृत विन्ध्य विलोडन है ?
वा मुमूर्ष प्राचीन रूढ़ियों का यह अन्तिम रोदन है ?
चना बना लोहे का उनको जो समझे थे ओदन है ?

(२)

अथवा वैदिक वाङ्मय गो का गवेषणा-पय-दोहन है ?
श्रुति संगीत मयी सरगम का आरोहण अवरोहण है ?
मान्य मनीषी मस्तिष्कों का उत्तम ऊहापोहन है ?
अथवा श्रुतिप्रिय वंशीवाला विश्वविमोहन मोहन है।

(३)

कुटिल क्रूर कट्टर कुरीतियों का कटु कण्टक-शोधन हैं ?
अल्प-आयु पर ज्ञान वृद्ध है, कोरा बाल अबोधन है।
मत मतान्तरों के मन्तव्यों का निष्पक्षालोचन है।
विषम विषय विषधर विस्तारित बहु बिध बन्ध विमोचन है।

(४)

यह प्रज्वलित अग्नि ज्वाला है पाप पुंज जहं जलते हैं।
अशुभ अनय अत्याचारों के हिमगढ़ घोर फिसलते हैं।
जिसमें पड़कर असत् असित आयस के गोले गलते हैं।
स्वच्छ सुवर्ण रूप होकर के सत् सिद्धान्त निकलते हैं ।।

(५)

वा प्रचण्डं मार्तण्ड अण्ड है खण्ड-खण्ड तम करने को ?
अनय अविद्या अनाचार की निशा तमिस्ता हरने को।
हृत-सरसिज़ विकसित कर उनमें अतुलित आभा भरने को ?
सहस्र रूप में सत्साहित्यिक दैवी दीधित धरने को।

(६)

अहह ! चमत्कृत चारु चन्द्र है दिव्य छटा छिटकाने को।
जगज्जनों के मन कुमुदों को मुद से मुदित बनाने को ।।

तपते जगती तल पर शीतल शान्ति सुधा बरसाने को।
नव जीवन की भव्य-ज्योत्सना से सुखमा सरसाने को॥

(७)

अथवा यह मानव-हिमगिरि में सुन्दर मान सरोवर है?
ब्रह्मज्ञान सिन्धू का जिसमें आदि स्रोत अति सुख कर हैं॥
जहाँ समिति संस्था सरसीरूह खिलते नव्य निरन्तर हैं।
नीर क्षीर वत् सद्सत ज्ञाता हंस आर्य नारी नर हैं॥

(८)

अथवा पुण्यपगा जान्हवी का यह पुण्य प्रवाह बहे।
जिसकी कल-कल मन्त्रध्वनि में प्रभु का शुभ सन्देश रहे॥
कलि मल मलिन मनुज तन जो भी उसका पावन पुलिन गहे।
पौराणिक भव बाधाओं से छूट मुक्ति का मार्ग लहे॥

(९)

अथवा यह संसार सिन्धु में सुदृढ़ संगठित वोहित है?
अनगिन आन्दोलन मय अतुलित तुङ्ग तरङ्गाक्षोभित है,
मत मतान्तरों की आन्धी से आवेष्टित आलोद्रित है।
है आरूढ़ आर्य जन नेता खेता नित समयोचित है॥

(१०)

अथवा वह मन्दार हार है सुन्दर सुखकर सुरभित है।
जो बलिदानी वीर नरों के बलि पुष्पों से भूषित है॥
धर्म-प्रेम भावना सूत्र में समावद्ध से गुम्फित है।
मातृभूमि की भेंट हेतु जो सदा सर्वथा सज्जित है॥

धार्मिक परीक्षाएं

सरकार से रजिस्टर्ड आर्य साहित्य मण्डल अजमेर द्वारा संचालित भारवर्षीय आर्य विद्या परिषद् की विद्याविनोद, विद्यारत्न; विद्याविशारद विद्यावाचस्पति की परीक्षाएं आगामी जनवरी में समस्त भारत में होंगी कोई भी किसी भी परीक्षा में बैठ सकता है। प्रत्येक परीक्षा में सुन्दर सुनहरा उपाधि पत्र प्रदान किया जाता है। धर्म के अतिरिक्त साहित्य, इतिहास, भूगोल, समाज विज्ञान आदि का कोर्स भी इन में सम्मिलित है निम्न पते से पाठ विधि व आवेदन पत्र मुफ्त मंगाइये।

डा० सूर्यदेव शर्मा एम० ए० डी० लिट्०

परीक्षा मंत्री, आर्य विद्या परिषद् अजमेर।

आर्य समाज में क्रान्ति की महती आवश्यकता

[ले०—स्वा० मेधानन्द सरस्वती]

—◊◊—

[पूज्य स्वामी जी के हृदय में एक ज्वाला जलती है। स्वामी जी आर्य-समाज को उस रूप में देखना चाहते हैं जिन आदर्शों और उद्देश्यों को लेकर ऋषिवर ने इस की स्थापना की थी। इस में तो सन्देह नहीं कि आज आर्य समाज अपने मार्ग से कुछ भटक सी गई है। अतः आर्य समाज में क्रान्ति की महती आवश्यकता है और यह क्रान्ति जितनी जल्दी हो उतना ही श्रेयस्कर होगा। आर्य जगत् के कर्णधारों और युवकों को इस लेख पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर अपने कर्तव्य का निश्चय करना चाहिये।]

—सम्पादक

महती क्रान्ति द्वारा सच्चे शिव का दर्शन करने और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिये मूलशंकर जी का गृहत्याग, योग प्राप्ति के लिये वन-पर्वतों में भ्रमण करके योगियों से योग विद्या प्राप्ति और संन्यासाश्रम में प्रवेश द्वारा स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम स्वीकार करके आर्षविद्या के महान् आचार्य श्री स्वा० विरजानन्द दण्डी जी के आदेश से अपने अनार्ष ग्रन्थों को यमुना में प्रवाहित करना आदि विविध घटनाएं उन की क्रान्ति-कारिणी भावना की प्रकाशक हैं। मूर्तिपूजादि के विरुद्ध शास्त्रार्थ और विधर्मियों की शुद्धि, विदेशियों से देश को पादाक्रान्त होते देखकर स्वदेश निवासियों के स्वराज्य, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की प्रेरणा, वेदादि सत्य शास्त्रों का सत्यार्थ प्रकाश, वैदिक आर्य साहित्य, धर्म, सभ्यता और संस्कृति की रक्षार्थ राजस्थान के राजाओं को प्रेरणा और गोकरुणानिधि द्वारा गवादि की रक्षा और सेवा के लिये महदुद्योग उन के क्रान्तिकारी पुरोगम के स्पष्ट प्रमाण हैं। आर्ष पद्धति से वेदभाष्य निर्माण करके वेदार्थ में महती क्रान्ति ऋषि दयानन्द का मानव जाति को सन्मार्ग में चलाने का महदुद्योग है। यदि आर्य समाज के महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिये ऋषि दयानन्द दीर्घ जीवी होते तथा मानव जाति और भारत के सौभाग्य से ऋषि दयानन्द के महान् उद्देश्य को देश के नेता, पण्डित और विद्वान् ठीक ठीक समझ पाते तो मानव जाति और भारत की महती उन्नति अवश्यम्भावी थी। शिक्षा संस्थाएं प्रायः राज्य बल से ही ठीक चलती हैं। उस राज्यबल विहीन आर्य समाज ने शिक्षा संस्थाओं को ही प्रायः अपना उद्देश्य बना लिया और वेदादि शास्त्रों के साहित्य प्रचार और प्रवचन से

हट कर प्रबन्ध जनित राग, द्वेष, अहंकार और तुच्छ स्वार्थ के चक्र में अपने को फंसा लिया है।

इस अवस्था से उद्धार के कुछ उपायः—

(१) आर्य समाज के विद्वान् उत्साही और साहसी कुछ संन्यासी और वानप्रस्थी तप, त्याग, बुद्धि और विद्याबल इस अवस्था से आर्य समाज के उद्धार का संगठित उद्योग करें।

(२) सच्चरित्र, संयमी तपस्वी और त्यागी एवं उत्साही लोग आर्य समाज का आन्तरिक संशोधन विधिपूर्वक करें।

(३) सामाजिक सामूहिक प्रयत्न द्वारा प्रचलित राजधर्म-राजनीति में महान् परिवर्तन का महदुद्योग हो।

(४) शिक्षादि संस्थाओं को वैदिक धर्म के प्रचार का साधन बना कर प्रचार युग को पुनरपि लाने का प्रयत्न किया जावे। श्री आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने जो अपनी "आत्म कथा अर्थात् आपबीती-जगबीती" में आर्य समाज की अवस्था का सिंहावलोकन चित्र खींचा है उस की ओर आर्य समाज के नेता और अधिकारी विशेष ध्यान देकर स्वकर्तव्य पालन करें। देखिये आचार्य जी क्या लिखते हैं:—

"यह तो मानना ही पड़ेगा कि दलबन्दियों के कारण आर्य समाज की समष्टि शक्ति का बहुत कुछ दुरुपयोग हुआ है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि आर्य समाज के संगठन में कोई त्रुटि है जिस के कारण शक्ति का सम्मिलित सदुपयोग नहीं हो रहा है।...

यह तो मानना ही पड़ेगा कि जब तक विद्यासभा, राजसभा, धर्म-सभा इस नाम की तीन स्वतन्त्र सभाओं का निर्माण होकर कार्य नहीं किया जायगा, संसार भर के उपकार की बात दूर ही रहेगी। यह तो मानना ही पड़ेगा कि आर्य समाज में मूर्खों के बहुमत ने नाश और अज्ञ और विज्ञों के मिश्रित मत के कारण सब काम अधूरे रह गये हैं। जब तक सभा में उस उस विषय में उस उस विषय के तज्ज्ञ पुरुषों के बहुमत द्वारा निर्णय होकर कार्य न होगा समाज की यथार्थ उन्नति नहीं होगी। यह तो मानना ही पड़ेगा कि आर्य समाज जमाने साज समाज बनता जा रहा है और धर्म की अपेक्षा धन को प्रधानता दे रहा है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि समाज में रजोगुण की प्रधानता है और आध्यात्मिकता का प्रवेश अति न्यून।...यह तो मानना ही पड़ेगा कि आर्यों के बच्चे आर्य नहीं बन

[शेष पृष्ठ ४१६ पर]

आर्य समाज से आशा

[कविरत्न—पं० प्रकाशचन्द्र जी, अजमेर]

भजन

यह आर्यसमाज सकल जग में वेदों का नाद बजायेगा ।
इस उजड़े आरत भारत को पुनि स्वर्ग समान बनायेगा ।।
कर्त्तव्य क्षेत्र में आयेगा, पग पीछे नहीं हटायेगा ।
बाधाओं को सिर पर अपने, फूलों की भांति उठायेगा ।।
कायरपन मार भगायेगा, नवजीवन ज्योति जगायेगा ।
निजदेश धर्म पर तन मन धन, अर्पण करना सिखलायेगा ।।
ईश्वर का बोध करायेगा, मिथ्या विश्वास मिटायेगा ।
कर नष्ट अविद्या अन्धकार विद्या प्रकाश फैलायेगा ।।
वैदिक सन्देश सुनायेगा, ध्रुव धर्म-ध्वजा फहरायेगा ।
शिक्षा देकर स्त्री दल को, कर्त्तव्य मार्ग बतलायेगा ।।
सुख शान्ति सुधा बरसायेगा, प्यासों की प्यास बुझायेगा ।
हां भेदभाव सब कांट छांट, आपस में प्रेम बढ़ायेगा ।।
पतितों को पुनः उठायेगा, बिछुड़ों को गले लगायेगा ।
पाखण्डी और विधर्मियों के, चुंगल से उन्हें छुड़ायेगा ।।
गउओं के प्राण बचायेगा, विधवादल दुःख मिटायेगा ।
इन आश्रयहीन अनाथों को निज गोदी में बिठलायेगा ।।
स्वावलम्ब पथ बतलायेगा, उन्नति के शिखर चढ़ायेगा ।
ऋषि मुनियों का गौरव 'प्रकाश' भूमण्डल को दिखलायेगा ।।

[शेष पृष्ठ ४१५ का]

रहे हैं।...यह तो मानना ही पड़ेगा कि आर्य मण्डल में आतिथ्यधर्म का नाश हो गया है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि गृहकलहों के कारण समझदार शान्ति प्रिय लोग आर्य समाज से दूर रहने लगे हैं।"...इन समस्त रोगों का उपाय हो इस बात को गम्भीरता पूर्वक सोचने का अवसर आया है।...आर्य समाज के संगठन में घोर क्रान्ति की आवश्यकता है। नहीं तो वर्तमान भ्रान्ति बढ़ती ही जायगी।"

।। इत्योम् शम् ।।

वह कौन था ?

[ले०—सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए० नई दिल्ली]

—:००:—

[आर्य समाज और महर्षि दयानन्द का घनिष्ठ सम्बन्ध है । प्रस्तुत लेख में लेखक महोदय ने बहुत थोड़े शब्दों में महर्षि दयानन्द का सुन्दर चित्रण किया है पढ़िये और आनन्द लीजिये ।]

—सम्पादक

देश को जड़ पूजा और बहु देवतावाद से छुड़ाकर एक ईश्वर की उपासना सिखाने वाला कौन था ? जब लाखों अबलाओं का करुण क्रन्दन सुनकर आकाश भी आंसू बहा रहा था, तब उनके असीम कष्टों को निवारण करने वाला कौन था ? पद दलित और "स्त्री शूद्रौनाधीयाताम्" के मन्त्र से वेदाधिकार वंचित नारी को पुनः वेद पढ़ने का अधिकार किसने दिलाया ? घोर नरक का द्वार और ताड़न की अधिकारिणी समझी जाने वाली नारी को माता, देवी, नहीं नहीं साम्राज्ञी का दर्जा किसने दिलाया ? दर दर भटकते हुए, ठोकरें खाते हुए अनाथों का विलाप किसने सुना ? हजारों फिरकों जाति, उपजातियों एवं मत मतान्तरों में बंटी हुई विदेशियों से पद पद पर अपमानित आर्य-जाति को संगठन एकता और स्वतन्त्रता का पाठ किसने पढ़ाया ?

असत्य को दूर कर सत्य के अर्थ का प्रकाश करने वाला कौन था ? किसने निबिड़ अन्धकार पूरित विश्व को वेद की ज्योति से पुनः प्रकाशित किया ? मुस्लिम ईसाई, कुरानी, पुरानी आदि के प्रहारों से किसने रोका ? वेद-सूर्य के प्रकाश से अविद्यान्धकार को किसने हटाकर दिखाया ?

पाश्चात्य सभ्यता के प्रबल झंझावात से देश की डगमगाती नौका को संभाल कर खेने वाला कौन था ? वेदों को गडरियों का गीत समझने वालों को मुँह तोड़ उत्तर किसने दिया ? अन्ध विश्वास और पोप लीला के जाल को किसने तर्क के तीर बरसा कर छिन्न भिन्न किया ?

तर्क के तीर बरसाये इस जोर से ।
होश पाखण्डियों के हवा कर गये ॥

क्या यह सच नहीं है ।

इस युग में जब ब्रह्मचर्य का नाम लेना भी मूर्खता थी, सरदार विक्रमसिंह की तेज घोड़ों वाली बग्घी को हाथ से रोककर किसने ब्रह्मचर्य का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया ? राव कर्णसिंह जैसे अपने को शूरमा कहने वाले मदोन्मत्त विरोधी की तलवार मूठ से दबाकर उसके दो टूक

करके भी अपनी क्षमा शीलता का परिचय देने वाला कौन था ? "मैं संसार को बन्धन में डालने नहीं आया, किन्तु बन्धन से, कारागार से मुक्त कराने आया हूँ" ऐसा कहकर पान में विष मिलाकर देने वाले अभियोगी को भी दण्ड देने से छुड़ाने वाला कौन था ?

जब राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) अभी भविष्य के गर्भ में थी। स्व-राज्य स्वतन्त्रता के शब्द मंच पर भी न उचारे गये थे। तब "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये के पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। (स० प्र० ८ म समु०) की सिंह गर्जना करने वाला कौन था ?

विरोधियों के मर्म-प्रहारों से भी जो अभिभूत न हुआ। पर्वतों में, बीहड़ वनों में, सागर की उत्ताल तरंगों में, हिम खण्डों में, बैठकर भी जो सत्य की खोज में नहीं घबराया। जो ज्योति का पुंज था, जो कौपीनधारी रहकर भी बड़े बड़े सम्राटों से बढ़कर था। जो अकेला होते हुए भी लाखों से जूझने की हिम्मत रखता था, वह कौन था ?

अन्त समय में जीवन में कई बार विष पान करके भी किसने अपने प्राणघाती, जाति देश के विश्वास घाती विष देने वाले को भी रुपये देकर क्षमा कर दिया ?

पाठक ! जानते हो, वह कौन था ? बताने की आवश्यकता नहीं, सुझाने की जरूरत नहीं। भारतीय इतिहास के एक एक पृष्ठ पर, नहीं एक-एक पंक्ति में शब्दों स्वर्ण अक्षरों से लिखा हुआ है, वह था, "महर्षि दया-नन्द सरस्वती" अखण्ड ब्रह्मचारी, युग-निर्माता सबका त्राता, यति, योगी अद्भुत संन्यासी "स्वामी दयानन्द" ॥ इति ॥

विनय-प्रार्थना

[सेवाधर्म्मी भक्त की हार्दिक भावना]

(श्री पं० अमरनाथ वैद्य शास्त्री)

नत्वहं कामये राज्यम्, न च स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःख तप्तानां, प्राणिनामार्ति नाशनम् ॥

अर्थात्

न मैं राज भोग को चाहूँ न मैं मोक्षधाम का इच्छुक
न मैं स्वर्ग सौख्य अभिलाषी, न मैं रहूँ कभी प्रत्याशी।
केवल एक ईश अभिलाषा दीन जनों की सेवा करते
कृपा दृष्टि हो तेरी, कटे अवस्था मेरी ॥

विश्व कल्याण व गौमेध महायज्ञ

[लेखक—राष्ट्रीय संन्यासी श्री डा० अग्निहोत्री स्वामी]

[लेखक महोदय को अपने ऊपर कितना आत्म विश्वास है और कैसी वेदना है लेख में दोनों का सम्मिश्रण हैं। नक्कार खाने में तूती की आवाज कौन सुनता है। सम्मेलन के अधिकारी मेरे जैसे छोटे आदमी की बात सुनने के लिये कहां तैयार होंगे। सम्मेलन में क्रियात्मक बातें नहीं होती प्रस्ताव पास होते हैं और वे भी रद्दी की टोकरी में डाल दिये जाते हैं। हां चन्दे वाली बात मुझे पसन्द है। यदि कुछ श्रद्धालु यज्ञ प्रेमी चमत्कार देखना चाहें तो तब सब से पहली राशि २५) मैं देने को तैयार हूं। क्या अन्य यज्ञ प्रेमी भी तैयार होंगें ?] सम्पादक

आजकल देश में चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है प्रजा का हर व्यक्ति महादु:खी जीवन बिता रहा है ! जो देश कभी सोने की चिड़िया अथवा पारसमणि पत्थर समझा जाता था आज उस देश के निवासियों को भरपेट भोजन, रहने को स्वास्थ्य प्रद स्थान भी नहीं मिलता ! शिक्षा दीक्षा सब उल्टी हो रही है, सबके स्वास्थ्य बिगड़ रहे हैं ! और चिकित्सा जो विदेशी की जाती है, वह सिवाय देश के धन-जन का नाश करने के रोगों को बढ़ा तो रही है उससे उपकार कुछ भी नहीं होता !

मैं इस विषय पर वैसे तो सन् १६०४ से गम्भीरतापूर्वक विचार करता रहा हूँ, और उसी के लिए आर्य समाज कांग्रेस हिन्दु महा सभा इत्यादि संस्थाओं में कार्यकर्ता भी रहा हूँ। आर्य समाज तो मेरी माता ही है, जिसकी गोद में मैं पला हूं ! पर मुझे शोक है कि वर्तमान आर्य समाज मेरी वह माता नहीं है जिसकी गोद में मैं पाला गया था ऐसा लगता है कि मेरी वह माता किसी और से बदल गई है ! खैर इस समय तो यज्ञ विषय पर बात करनी है। मेरा विचार है कि हमारी इन सब मुसीबतों का मुख्य कारण गौमाता पर महान् अत्याचार है ! सरकारी तौर पर अंडा, मांस, मछली का प्रचार विषय-वासना का प्रचार, धर्म से घृणा करने का प्रचार वृद्ध जनों की निन्दा करने का प्रचार, सब ही उपाय जब विनाश के हों, और गौ माता पर इतना अत्याचार होता है कि उसकी हत्या न करने का न तो कानून बनाया जाता है जहां बनाया गया है उसकी पाबन्दी नहीं होती और सरकारी बड़े अफसर ऐसा साहित्य लिखकर जनता को बहका रहे हों

कि गौ का स्थान ट्रैक्टर और भैंस को देना होगा वहां नाश के सिवाय उन्नति कैसे हो सकती है ?

हमारे प्राचीन साहित्य में ऐसे ही अवसर के लिए विश्व कल्याण और गौमेधयज्ञ इस समस्या के चिकित्सा रूप बताये गये हैं, परन्तु ऐसे यज्ञ की विधि जानने वाले विद्वान् मिलने कठिन होते है, और विद्वानों को श्रद्धालु यजमान खोजते नहीं। मैं इसका यजमान और पुरोहित दोनों में से एक बनने को उद्यत हूँ पर शर्त यह है यदि मैं यजमान बनूंगा तो मैं अपनी सब सम्पत्ति उसमें लगाने को उद्यत हूँ जो मैंने संन्यास लेते समय गौ माता के अर्पण कर दी है कोई पुरोहित वैज्ञानिक ढंग से मुझे विश्वास दिला दे कि इस यज्ञ की पूर्णाहुति होने के पश्चात यह दोनों कार्य सिद्ध हो जावेंगे ! यज्ञ विद्या के विद्वानों से मैं पत्र व्यवहार भी कर रहा हूँ पर अभी तक किसी ने उस पर प्रकाश भी नहीं डाला है इधर उधर की बातें की हैं इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्ण विधि जानने वालों का अभाव है। मैं जो विधि जानता हूँ, उस विधि से मैं पुरोहित बनकर दोनों यज्ञ करा सकता हूँ। मेरी विधि में मेरे लिए कोई दक्षिणा नहीं चाहिए, केवल यज्ञ का सामान चाहिए, जिसमें कम से कम पांच सच्चे ब्राह्मण, पांच सौ सच्चे क्षत्रिय और १०० सच्चे धार्मिक श्रद्धालु वैश्यों की आवश्यकता होगी। यदि वेद प्रकाश के सम्पादक जी यज्ञ पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं, तो इसका प्रबन्ध नवमार्य सम्मेलन पर करावें और गौ माता और विश्व दोनों का कल्याण करें अन्यथा चन्दा करने, जंगल में चिल्लाने, मिनिस्टरों को दावत खिलाने जैसे पाप कर्मों को करके जनता को और कष्ट देने से क्या लाभ ?

यज्ञ के सम्बन्ध में लेख लिखने का समय मेरे लिए बीत गया। अब मैं लेख लिखना बिल्कुल व्यर्थ समझता हूँ, जो अपना ज्ञान इस विषय में बढ़ाना चाहें, वह मेरी बनाई "यज्ञ चिकित्सा" पुस्तक पढ़कर अपना ज्ञान बढ़ा सकते हैं और जो यज्ञ की प्रत्यक्ष महिमा देखना चाहते हैं वह मेरी बताई विधि से यज्ञ करके निराश रोगियों को जीवन दान देकर देख सकते हैं। हाथ कंगन को आरसी क्या है ?

स्वाध्याय उपयोगी पुस्तकें

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	४॥)
वाल्मीकि रामायण (शुद्ध संस्करण)	१२)
उपनिषदार्य्य भाष्य (आठ उपनिषदें)	६)
बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला	३)
ओंकार निर्णय	१॥)
सृष्टि का इतिहास	२)
वैदिक सिद्धान्तों पर बहनों की बातें	१।)
कर्तव्य दर्पण	१।)
आर्य समाज क्या है ?	।॥)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
दर्शनान्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध	५)
दयानन्द चित्रावली	२॥)
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या	॥)
नास्तिकवाद	॥)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
विवाह और विवाहित जीवन	२॥)
ब्रह्मचर्य जीवन-वीर्य नाश मृत्यु	।=)
वैदिक गृहस्थाश्रम	५)
ऋषि गाथा महाकाव्य	४)
संस्कार विधि विमर्श	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
वेदपरिचय (स्वामी वेदानन्द)	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्षयोग प्रदीपिका	३।)
घर गृहस्थी	३॥)
गीत श्रद्धांजलि भजन	१)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१)
आदर्श सुधारक दयानन्द	॥=)
गृहस्थाश्रम (दयानन्द)	॥=)
बाल शिक्षक ,,	।=)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान	।)
स्वामी दयानन्द और वेद	।)
वैदिक धर्म शिक्षा	।)
आर्य सत्संग गुटका	।–)
विश्व विज्ञान परमात्मा बोध	≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)	॥)
मांस मदिरा निषेध	≡)
गायत्री व्याख्या	।)
गीता वचनामृत	।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य	॥)
स्वास्थ्य विज्ञान	।–)

चित्र	चित्र	चित्र
महर्षि दयानन्द	२०×३०	१)
गुरु विरजानन्द	,,	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	,,	१)
पण्डित लेखराम	,,	१)
महात्मा हंसराज	,,	१)
प० गुरुदत्त	,,	१)
स्वामी दर्शनानन्द	,,	१)
सचित्र जीवन घटना	१५×२०	॥)
महर्षि दयानन्द की महत्ता	२०×३०	॥)

मोटोज साइज १४×२२ मूल्य प्रत्येक ।–)
सन्ध्या मन्त्र, प्रार्थनामन्त्र, संगठन सूक्त, यम नियम व्याख्या

मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक ≡)
सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र, दीर्घ जीवन की प्रार्थना सत्यवद धर्मं चर।

मोटोज ११×१४ प्रत्येक ।)
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम, गायत्री

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली।

महात्मा आनन्द स्वामी जी की नई पुस्तक

उपनिषदों का सन्देश

आध्यात्मिक पुस्तक होते हुए भी उपन्यास से रोचक,

प्रभु प्राप्ति के उपाय सरल भाषा में

बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई, २०४ पृष्ठ की पुस्तक केवल १।) में डाकखर्च ।।।), मनिआर्डर द्वारा २) भेज कर आज ही पुस्तक मंगाईये ।

आनन्द स्वामी जी की अन्य पुस्तकें

❀ प्रभुभक्ति	...	१।।)
❀ प्रभुदर्शन	...	२।।)
❀ तत्वज्ञान	...	३)
❀ भक्त भगवान	...	१)
❀ मानव जीवन गाथा...		१)
❀ आनन्द भगवत कथा...		।।=)
❀ आनन्द गायत्री कथा		७० न. पै.
❀ एक ही रास्ता...		८० न. पै.
❀ शङ्कर और दयानन्द		।।)

बृहदाकार आकर्षक चित्र

साईज प्रत्येक का २०×३०
प्रत्येक का मूल्य १)

महर्षि दयानन्द
स्वामी श्रद्धानन्द
गुरु विरजानन्द
महात्मा हंसराज
पंडित लेखराम
पं० गुरुदत्त विद्यार्थी
स्वामी दर्शनानन्द

७ चित्र एक साथ मंगाने पर डाक खर्च १।) आता है । सातों चित्रों का डाकखर्च सहित ८।) आने पर रजिस्ट्री द्वारा भेज दिये जावेंगे । १ दर्जन चित्रों का १२) पेशगी आने पर डाकखर्च माफ ।

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

लेखक श्री स्वामी सत्यानन्द जी

महर्षि का प्रमाणिक ललित भाषा में लिखा गया सम्पूर्ण जीवन चरित्र

इतने मोटे अक्षरों में

मूल्य १२)

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली ।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली में छपवाया ।

वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

आर्य महासम्मेलन समीक्षा अङ्क

आदर्श सम्पादक
ब्र० जगदीश चन्द्र विद्यार्थी

स्वाध्याय उपयोगी पुस्तकें

दयानन्द ग्रन्थ संग्रह	४।।)
बालमीकि रामायण (शुद्ध संस्करण)	१२)
उपनिषदार्य्य भाष्य (आठ उपनिषदें)	६)
बृहदारण्यक उपनिषद कथा माला	३)
ओंकार निर्णय	१।।)
सृष्टि का इतिहास	२)
वैदिक सिद्धान्तों पर बहनों की बातें	१।)
कर्तव्य दर्पण	१।)
आर्य समाज क्या है ?	।।।)
वैदिक यज्ञ रहस्य	।=)
दर्शनान्द ग्रन्थ संग्रह पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध	५)
दयानन्द चित्रावली	२।।)
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या	।।)
नास्तिकवाद	।।)
आर्य सिद्धान्त दीप	१।)
विवाह और विवाहित जीवन	२।।)
ब्रह्मचर्य जावन-वीर्य नाश मृत्यु	।=)
वैदिक गृहस्थाश्रम	५)
ऋषि गाथा महाकाव्य	४)
संस्कार विधि विमर्श	३)
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग	३)
वेदपरिचय (स्वामी वेदानन्द)	।=)
महर्षि दयानन्द (प्रो० इन्द्र)	२)
आर्षयोग प्रदीपिका	३।।)
घर गृहस्थी	३।।)
गीत श्रद्धांजलि भजन	१)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक	१)
आदर्श सुधारक दयानन्द	।।=)
गृहस्थाश्रम (दयानन्द)	।।=)

बाल शिक्षक	,,	।=)
सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान		।)
स्वामी दयानन्द और वेद		।)
वैदिक धर्म शिक्षा		।)
आर्य सत्संग गुटका		।-)
विश्व विज्ञान परमात्मा बोध		≡)
अखण्ड भारत (चन्द्र गुप्त)		।।)
मांस मदिरा निषेध		≡)
गायत्री व्याख्या		।)
गीता वचनामृत		।=)
गोरक्षा परम कर्त्तव्य		।।)
स्वास्थ्य विज्ञान		।–)
चित्र	**चित्र**	**चित्र**
महर्षि दयानन्द	२०×३०	१)
गुरु विरजानन्द	,,	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	,,	१)
पण्डित लेखराम	,,	१)
महात्मा हंसराज	,,	१)
पं० गुरुदत्त	,,	१)
स्यामी दर्शनानन्द	,,	१)
सचित्र जीवन घटना	१५×२०	।।)
महर्षि दयानन्द की महत्ता	२०×३०	।।)

मोटोज साइज १४×२२ मूल्य प्रत्येक ।-)
सन्ध्या मन्त्र, प्रार्थनामन्त्र, संगठन सूक्त, यम नियम व्याख्या

मोटोज साइज ११×१४ मूल्य प्रत्येक ≡)
सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र, दीर्घ जीवन की प्रार्थना सत्यंवद धर्मं चर ।

मोटोज ११×१४ प्रत्येक ।)
ओ३म्, नमस्ते, स्वागतम्, गायत्री

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली ।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापकः—स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

वर्ष—९ : ज्येष्ठ २०१८ वि० : जून १९६१ : वार्षिक मूल्य ३)

अंक—११ : दयानन्दाब्द १३६ : ज्येष्ठ १८८२ : विदेशों से ६ शिलिंग

कुसंस्कारोंको दूर करो

यदाशसा निःशसाऽभिशसोपारि जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यपदुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥ २५ ॥
(ऋ० १०।१६४।३)

"(आशसा) आशा के कारण, (निःशसा) दोष के कारण, (अभिशसा) कुसंस्कार के कारण, (जाग्रतः स्वपन्तः) जाग्रति के समय अथवा स्वप्न के समय, (यद् यद् उपारिम) जो जो दोष हम सब से हुए हैं, वे (अ-जुष्टानि) असभ्य (विश्वानि दुष्कृतानि) सब दुराचार (अग्निः) तेजस्वी आत्मा (अस्मद् आरे) हम सब से परे (अपदधातु) करे।"

लोभ, दोष और कुसंस्कारोंके कारण मनुष्यों से दुराचार होते हैं। इसलिए असभ्य भाव और दुराचारके भाव सबसे प्रथम दूर करने चाहिए।

सम्पादकीय :

आर्य महा सम्मेलन—एक समीक्षा

आदरणीय पाठकगण !

इस लेख को लिखने से पूर्व मैंने गम्भीरता पूर्वक विचार किया है कि इस लेख को लिखूं अथवा नहीं। अन्त में यही निश्चय किया कि अपने वर्त्तमान अधिकारियों का वास्तविक चित्र में जनता के सामने उपस्थित कर ही दूं जिससे लोग वास्तविक स्थिति को जानकर अपने कर्तव्य का निश्चय कर सकें।

मुझे जो कुछ लिखना होता है सीधा लिखता हूँ और निर्भय होकर इन उपर्युक्त पंक्तियों को लिखने की मुझे क्या आवश्यकता हुई उसका भी एक कारण है "आर्य समाज किस ओर" लेख और कार्टून को सभी ने बहुत पसन्द किया है। जब पण्डित भगवद्दत जी ने इसे देखा तो कहा "बधाई हो।" श्री रामगोपाल जी शालवाले ने कहा "आप का कार्टून बहुत अच्छा रहा।" आचार्य विश्वश्रवा जी ने इसे किसी व्यक्ति के पास देखा तो इतने प्रसन्न हुए कि स्वयं दुकान पर आकर एक प्रति ले गये और कहा, "लेखक को इस पर पुरस्कार मिलना चाहिये।" श्री आनन्द स्वामी जी ने कहा, "वस्तुतः आज आर्य समाज की यही स्थिति है।" श्री अर्जुन प्रसाद आर्य ने लिखा है—"हमें आर्य समाज अंक का आर्य समाज तथा वेद वाला कार्टून बहुत ही जचा। यही आधुनिक समाज का अक्षरशः चित्रण है। आप को वेद प्रकाश के इस नये मोड़ के लिये शतशः धन्यवाद देता हूँ।" इसी प्रकार और भी अन्य अनेक व्यक्तियों ने इसकी प्रशंसा की। परन्तु शायद कुछ लोगों को यह अखरा भी।

श्री भवनानी लाल जी भारतीय श्री शिवपूजन जी तथा मैं विद्वानों से मिल रहे थे। इस प्रसंग में आर्य प्रतिनिधि सभा के शामयाने में जा पहुंचे। वहां श्री हरिदेव जी सिद्धान्त भूषण भी बैठे थे। मुझे देखकर अपने स्वभाव के अनुरूप ही शब्दों में अपने एक साथी से कहने लगे ये हैं 'वेद प्रकाश' के आदरी सम्पादक। फिर मुझे कहने लगे "आदरी का अर्थ क्या होता है ? और आप ही व्याख्या करने लगे 'दृ विदारणे' धातु से आङ्उपसर्ग पूर्वक आदरी बनता है जो चारों ओर से विदीर्ण कर डाले।

कम से कम लिखने से पूर्व हम से ही पूछ लेते। उसी घर में खाना और उसी की बुराई ?

मुझे ये शब्द चुभे और मैंने बड़े दृढ़ स्वर में कहा, "क्या मैंने आर्य समाज के सम्बन्ध में जो लिखा है वह गलत है। क्या मैंने झूठी बातें लिखी हैं ? क्या सचाई प्रकट नहीं करनी चाहिये ?" वे कहने लगे नहीं मेरा भाव यह नहीं था आपने गलत समझा।" इतने वार्तालाप के पश्चात् हम वहां से बाहर आ गये।

इस घटना को लिखने का तात्पर्य यह है कि बहुत से व्यक्ति मेरे इस लेख को पढ़कर मुझे अपनी रंगीन ऐनक से ही देखेंगे परन्तु मुझे उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं हैं। मैं समाज का नहीं खाता न समाज का उपदेशक हूँ। श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के शब्दों में आर्य समाज का प्रचार वह कर सकता है जो रोटी खाये घर से और गाली खाये समाज से। मैं उन्हीं व्यक्तियों में से हूँ। अस्तु। अब मैं अपने विषय पर आता हूँ।

आर्य महासम्मेलन का प्रचार कई मास पूर्व से प्रारम्भ हो गया था। इस का प्रचार करने के लिये भांति भांति के एवं नित नये पोस्टर छपते थे। इन पोस्टरों पर जो धन राशि व्यय की गई वह सम्मेलन अधिकारियों की अदूरदर्शिता की परिचायक है। प्रचार हो या न हो कोई देखे या न देखे सभाधिकारियों का नाम पोस्टरों पर छपता रहे बस यही तथ्य यहां कार्य कर रहा था। आर्य समाजियों की खून पसीने की कमाई द्वारा प्राप्त चन्दे की धन राशि को यार लोगों ने किस बेदर्दी से खर्च किया यह इसका एक छोटा सा नमूना है।

बिना स्वागत समिति का चुनाव किये सम्मेलन का स्वागताध्यक्ष श्री देशराज चौधरी और मन्त्री श्री लक्ष्मीदत्त दीक्षित को बनाया गया। हमारी समझमें नहीं आया इन दोनों में क्या विशेषता थी जो यह महत्वपूर्ण कार्य इन्हें सौंपा गया। आर्य समाज सारे संसार को आर्य बनाना चाहता है परन्तु इन दोनों व्यक्तियों के पीछे जाति सूचक चौधरी और दीक्षित लगा हुआ है। इस सम्मेलन में भी जातिपाति को समाप्त करने से सम्बन्धित एक प्रस्ताव पारित हुआ था। स्वयं चौधरी और दीक्षित हैं परन्तु दूसरों को जाति पांति से ऊपर उठने को बातें करते हैं यह बिडम्बना नहीं तो और क्या है ? ये दोनों महानुभाव तनिक बैठकर विचार तो करें।

१२ मार्च को सम्मेलन के सम्बन्ध में एक बैठक सार्वदेशिक कार्यालय में हुई। मैं भी वहां उपस्थित था। वहां जो काण्ड हुआ उसे लिखते हुए लेखनी को भी लज्जा आती है। उस सभा में श्री प्रकाश चन्द्र वैद्य ने मई

मास की भीषण गर्मी में मैं इस सम्मेलन को स्थगित करने का सुझाव दिया था यदि वह स्वीकार कर लिया जाता तो इस सम्मेलन की शान कुछ और ही होती परन्तु चौधरी यदि अन्य लोगों की बात सुनने लग जाये तो फिर वह चौधरी किस बात का। एक व्यक्ति इसी सभामें खड़े हुए और उन्होंने गर्ज कर कहा "एक व्यक्ति जिसने रूस में जाकर बोटका (रूस की एक तेज शराब) और पैरिस में (बीयर) पी हो क्या वह हमारा अधिकारी बनने योग्य है ?" संकेत चौधरी जी की ओर था और चौधरी जी यह नहीं कह सके कि मैंने ऐसा कुकर्म नहीं किया। बैठक समाप्त हुई। लोग घरों को जाने लगे। एक व्यक्ति ने श्री विजय कुमार जी से कहा "इस प्रकार तो कुत्ते और बिल्लियां भी नहीं लड़ती।" पंजाब नैशनल बैंक कमला नगर के मैनेजर केदारनाथ शर्मा ने कहा "इन नेताओं से तो हमारा जीवन अधिक अच्छा है।"

इस बैठक के पश्चात् इन तथाकथित नेताओं ने जिन्होंने यह अश्वासन दिया था कि स्वागताध्यक्ष का चुनाव होगा अन्य कोई बैठक करने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की। और स्वागत अध्यक्ष का चुनाव नहीं हुआ। स्वामी ध्रुवानन्द जी ने स्वागताध्यक्ष का पद महात्मा आनन्द स्वामी जी को सौंपा था परन्तु फिर भी चौधरी देशराज स्टेज पर दनदनाते रहे।

सम्मेलन की तिथि १६ मई आ पहुँची। यज्ञ का कार्यक्रम ठीक ५ बजे प्रारम्भ होना था। परन्तु ५ की बजाये ५.४५ बजे आरम्भ हुआ। वेदी को देख कर रोना आता था। कहाँ मथुरा की भव्य वेदी जो बन्दरवार तथा तोरण पताकों के अतिरिक्त चांदी से सजाई गई थी और कहां दिल्ली की वीरान और उबड़ खाबड़ वेदी। अति दैन्य दृश्य था। इसकी दैन्यता को बढ़ाने के लिए चौधरी साहब ने एक चाल और चली। आचार्य विश्वश्रवा जी ने मुख्य वेदी के चारों ओर चार वेदियां बनवाई थी परन्तु चौधरी जी ने उन चारों वेदियों को एक सीध में कराकर इसके गौरव में चार चांद लगा दिये।

स्वर्ण जयन्ति के लिए जो संकल्प दिया हुआ है वह बहुत लम्बा है। पौराणिक भाषामें उसे द्रौपदी का चीर कहा जा सकता है और उर्दू भाषा का प्रयोग करूं तो शैतान की आंत कहना अधिक उपयुक्त होगा। इसका अधिकांश भाग अनावश्यक और व्यर्थ है। आचार्य जी ने प्रशस्ति गाने में हद कर दी है। मुद्रण की अशुद्धियां भी हैं।

यदि यज्ञ के सम्बन्ध में एक बात न लिखूं तो यह प्रकरण अधूरा ही रहेगा। पहले दिन के यजमान श्री पूर्णचन्द एडवोकेट सभा प्रधान बनाये गये। आप सभा के प्रधान हैं परन्तु आपको अङ्गस्पर्श करना तक

नहीं आता। मेरे एक मित्र नरेन्द्र कुमार ने तो वेदी पर बैठे हुए ही अनेक व्यक्तियों का ध्यान उस ओर आकर्षित किया था और सभी देखने वालों की गर्दन लज्जा से झुक गई थी। चम्चा भी प्रधान जी ने गलत ढंग से पकड़ा हुआ था। यदि इस प्रकार के व्यक्ति हमारी शिरोमणि सभाओं के प्रधान होंगे तो सदस्यों पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? मैं सार्वजनिक रूप में श्री पूर्णचन्द्र जी से पूछना चाहता हूँ कि क्या आप दोनों समय सन्ध्या करते हैं ? क्या आप दैनिक यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं ? क्या आप प्रतिदिन वेद पाठ करते हैं ? यदि नहीं तो आप को यह पवित्र एवं गौरव पूर्ण आसन तुरन्त छोड़ देना चाहिए। और यदि ये स्वयं नहीं छोड़ते तो फिर मैं आर्यों से भी प्रार्थना करूंगा कि वे उन्हें इस पद से पृथक् कर दें। प्रधान जी आर्य समाज को कोई लाभ नहीं पहुँचा रहे, हां हानि अवश्य कर रहे हैं। सम्मेलन में इस बात की भी चर्चा सुनाई दे रही थी कि प्रधान जी को कांग्रेस से एक बहुत बड़ी राशि इसलिये मिलती है कि वे आर्य समाज को राजनीति में भाग लेने से रोके रक्खें। भगवान् जाने यह कहां तक ठीक है। प्रमाण स्वरूप १९ मई की रात्रि को गो कृष्यादि रक्षा सम्मेलन हुआ था उसमें कुछ वक्ताओं ने कांग्रेस के विरुद्ध भी कुछ शब्द कहे थे। अगले दिन आपने एक वक्तव्य दिया जो वीर अर्जुन में छपा था जिसका भाव यह था कि आर्य समाज के मंच से इस प्रकार के शब्द नहीं कहे जाने चाहिये थे। आर्य समाज से पौराणिक, किरानी, कुरानी, राधास्वामी और ब्रह्म कुमारियों का खण्डन किया जा सकता है तो कांग्रेस का क्यों नहीं ? क्या श्री प्रधान जी के पास इसका कोई उत्तर है ?

कार्य क्रम में ५ बजे ही छपा रहा परन्तु आगे चल कर यज्ञ ६॥ बजे आरम्भ होने लगा।

इस महासम्मेलन के अवसर पर एक प्रदर्शनी भी लगाई गई। प्रदर्शनी क्या थी बस नाम ही नाम था। दुकानों का किराया बस तोबा ही भली। छः दिन का किराया केवल ७०)। अधिक कुछ नहीं बस १२) रुपया प्रतिदिन ही तो हुआ। हाँ यह बात दूसरी है कि एक दुकानदार की छः दिन में भी ७०) की बिक्री नहीं हुई।

एक ऋषि दयानन्द चित्र प्रदर्शनी लगाई गई। लोग तो अपना प्रचार करने के लिये पता नहीं कितना धन खर्च करते हैं परन्तु वणिक वृत्ति वाले अधिकारियोंने यहां भी बनियांपन दिखाया और प्रदर्शनी का टिकट १० नये पैसे रख दिया। मैं भी एक दिन प्रदर्शनी में गया था। १० नये पैसे व्यर्थ ही गये। चित्रों को देखकर जी जला वह अलग। महात्मा हंसराज और

आनन्द भिक्षु और इसी प्रकार के कई अन्य चित्रों को तो यदि उनके नीचे नाम न होता तो पहचानना भी कठिन था। आकृति बिल्कुल बिगाड़ी गई हैं। अश्वपति की घोषणा का जो चित्र लगा हुआ था 'न मे स्तेनो जनपदे— इत्यादि इस में कई अशुद्धियां थी। प्रदर्शनी ३ भागों में बांटी गई थी। एक में ऋषि दयानन्द आर्य समाज और विशिष्ट आर्य पुरुषों का परिचय था शेष दो का आर्य समाज से कोई सम्बन्ध नहीं था।

प्रदर्शनी के बाहर ऋषि दयानन्द की एक मूर्ति भी यमुना रेती की बनाई गई। किसी स्त्री ने उस पर पैसे चढ़ा दिये अतः उस मूर्ति को तुड़वा दिया गया। प्रदर्शनी का बाह्य आकर्षण इतना भव्य एवं विशाल था कि प्रत्येक व्यक्ति को यह पूछना पड़ता था कि प्रदर्शनी किधर है? पुस्तकों की दुकानें किधर हैं? कहते हैं इस प्रदर्शनी का नकशा चौधरी देशराज ने कारपोरेशन के एक इन्जीनियर से बनवाया था। धन्य हो इन्जीनियर महोदय की कारीगरी को।

विद्वत् सम्मेलन में अपनी गुट बन्दी का ध्यान रखकर कुछ व्यक्तियों को बुलाया गया और वहां निबन्ध पढ़े गये। आचार्य प्रिय व्रत जी का भाषण वही रटारटाया था जिसे वे अनेक स्थानों पर बोल चुके हैं। शेष भाषणों में भी कोई आकर्षण नहीं था। हां, श्री वैद्यनाथ शास्त्री और पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड के भाषण उत्तम थे।

१७ मई को एक स्थान पर दर्शन सम्मेलन था और पण्डाल में आर्य कुमार सम्मेलन। मैं दर्शन सम्मेलन में जा रहा था परन्तु एक मित्र ने रोक लिया कि आप का नाम कुमार सम्मेलन के वक्ताओं में है। विवश होकर मुझे बैठना पड़ा। सम्मेलन का समय प्रातः ८ बजे था परन्तु ८॥। बजे आरम्भ हुआ। लगभग १ घण्टा तो उद्घाटन और अध्यक्षीय भाषण में समाप्त हो गया फिर प्रस्ताव रखे गये जिन पर बोलने वाले थे श्री देव व्रत जी धर्मेन्दु केवल ६० वर्ष श्री जगन्नाथ जी मुरादाबाद ५० वर्ष, डाक्टर सूर्य देव जी ५० वर्ष। इनके अतिरिक्त भी २।३ व्यक्ति और बोले जिन्हें कुमार कहना भूल होगी। जब युवकों के बोलने की बारी नहीं आई तो मैं अपने एक साथी से कहने लगा कि यह कुमार सम्मेलन है या बूढ़ा सम्मेलन। फिर तो सभी कुमार कहने लगे सोच तो हम भी यही रहे थे कि यह बूढ़ा सम्मेलन है। कुमार सम्मेलन के संयोजक थे श्री देवीदयाल जी आर्य। मेरा उन का निकट का सम्पर्क है। मैंने उन्हें भी यही कहा कि क्या यह कुमार सम्मेलन है? उन्होंने बताया कि सभा के अधिकारियों का ऐसा ही आदेश था कि नाम कुमार सम्मेलन हो परन्तु बोलने वाले बूढ़े हों। जब सम्मेलन समाप्त होने को आया तो नवयुवकों के बोलने का समय

भी आया प्रत्येक को दो दो मिनट दिये गये। मैंने तो न बोलना ही उचित समझा।

इस सम्मेलन से सभाधिकारियों और जनता की मनोवृत्ति का परिचय मिल गया। सभा अधिकारी एक ओर तो यह रोना रोते हैं कि आर्य जगत् में युवक नहीं आते दूसरी ओर यह प्रयत्न करते हैं कि युवक आगे न बढ़ जायें। सभा की बात छोड़िये समाजों के अधिकारियों की मनोवृत्ति भी ऐसी ही है। हमारे प्रधान श्री पूर्णचन्द जी की आवाज ऐसी है जैसी फटे बांस की होती है इसी लिये शायद जब एक दिन वे महाशय कृष्ण जी से बात करने के लिए आगे बढ़े तो महाशय जी ने कहा "परे हटो! तुम्हारी आवाज खराब है मेरे कान खराब हैं।" उनके व्याख्यान में कोई रस भी नहीं आता परन्तु वे सभा प्रधान हैं उन्हें समाजों के उत्सवों पर बुलाया जाता है और प्रथम श्रेणी का किराया दिया जाता है।

१७ मई को मध्याह्नोत्तर प्रमुख आर्यों का सम्मेलन हुआ। मैं प्रमुख आर्यों में नहीं था न हूँ न वहां जा सकता था अतः नहीं गया। वहां प्रस्ताव बाजी और व्याख्यानों के अतिरिक्त कुछ नहीं हुआ यह भी मुझे पता है। मुझे यहां प्रमुख आर्यों के सम्मेलन के प्रधान के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहने हैं। इसके अध्यक्ष थे अनेक बार आर्य समाज की पीठ में छुरा घोंपने वाले अनन्त श्री विभूषित श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त? हिन्दी रक्षा आन्दोलन का सत्यानाश इन्होंने ही किया। आर्य समाज को राजनीति से पृथक् रखने का प्रयास इन्होंने ही किया। अभी कुछ दिन पूर्व जब इनकी धर्मपत्नी का देहान्त हुआ तो वह अपने स्वीकार पत्र में लिखवा गई थी कि 'मेरा संस्कार पौराणिक रीति से हो।' इस व्यक्ति ने अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के अतिरिक्त कोई कुर्बानी की हो तो कोई मुझे बताये। कहते हैं कि अपने गांव दुर्ग के सब से बड़े धनपति श्री घनश्याम सिंह गुप्त हैं इनकी लाखों की सम्पत्ति है किन्तु ये परले दर्जे के कंजूस भी हैं। सार्वदेशिक सभा से ये महानुभाव भी मन्त्री और प्रधान की भांति अपना प्रथम श्रेणी का किराया और खर्चा धेला पाई समेत वसूल करते हैं। यह है इनका त्याग? जिसके कारण इन्हें आर्य समाज में ऊंचे से ऊंचा स्थान दिया जाता है। क्या आर्य जगत् में और कोई व्यक्ति नहीं था?

सम्मेलन का कार्यक्रम इतना नीरस था कि कहीं जाने को इच्छा नहीं होती थी। १८ मई को प्रातः शिक्षा सम्मेलन था। इसके अध्यक्ष थे श्री गोवर्धनलाल दत्ता। आपका जीवन भी नेताओं की भांति ही आर्य जीवन है। आप मांस भक्षण करने में कोई बुराई नहीं समझते। ऐसा मैंने सुना है इनके स्थान पर यदि श्री सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार अथवा ऐसे ही अन्य

किसी व्यक्ति को सभापति वनाया जाता तो अधिक उत्तम रहता। इस सम्मेलन के उद्घाटन कर्त्ता थे श्री कालू लाल जी श्री माली केन्द्रिय शिक्षा मन्त्री। बहुत सोचने पर भी इस समस्या का समाधान नहीं हुआ कि जब ये लोग आर्य समाज को राजनीति से अलग रखना चाहते हैं तो फिर राज-नैतिक नेताओं के पीछे क्यों भागते हैं। इन राजनैतिक नेताओं को आर्य-समाज की बहुत अधिक जानकारी हो यह बात भी नहीं है। ये आर्य समाज की वेदी पर आकर सिद्धान्तों पर व्याख्यान देते हों अथवा कोई बहुत महत्व-पूर्ण प्रवचन करते हों ऐसी बात भी नहीं है। प्रदर्शनी उद्घाटनार्थ श्री जग-जीवनराम जी को बुलाया गया और भारतीय संस्कृति और सभ्यता से रहित श्रीमती इन्द्रा गाँधी को महिला सम्मेलन में बुलाया गया जो सर्वथा अनुचित था।

१६ मई को शोभायात्रा (जलूस) निकलना था। शोभा यात्रा में सभा अधिकारियों ने भयंकरभूल की। शोभा यात्रा के लिए जो मार्ग निश्चित किया गयाथा उसमें कनाट प्लेस, था मसन रोड़ चांदनीचौक और फव्वारा भी सम्मलित था। परन्तु यह मार्ग कई बार बदला। आर्य समाज की कितनी ही क्षति हो जाये परन्तु कांग्रेसी नेताओं की टोपी नीची न हो इस मार्ग को बार बार बदलने में यही भावना थी। मित्रवर श्री भवानी लाल जी भारतीय ने मुझे बताया था कि १८ मई की दोपहर को श्री रामगोपाल जी शाल वाले श्री जगदेश सिंह जी सिद्धान्ती जी के पास गये और उनसे पूछा कि यह मार्ग क्यों बदला गया। श्री रामगोपाल जी ने कहा कि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है यदि इस शोभायात्रा का कार्य मुझे सौंप दिया जाये तो यह जलूस पूर्व घोषित मार्ग से जा सकता है। सिद्धान्ती जी ने कहा सभा अधिकारियों ने अब जो निर्णय कर लिया है जलूस उसी मार्ग से जायेगा। परिणाम स्वरूप शोभा यात्रा उस मार्ग से निकली जहां से कोई भी जलूस नहीं जाता। जी० बी० रोड़ जहां वैश्याएं ही वैश्याएं रहती थी और कम से कम एक मील लम्बा मार्ग है वहां से जलूस को निकाला गया। देहली के इतिहास में कदाचित् यह पहला ही अवसर था जब एक भव्य जलूस इस मार्ग से निकला हो। यह जलूस थोड़ी दूर खारी बावली में चलकर फिर फतहपुरी की ओर से स्टेशन की ओर मुड़ गया। फतहपुरी से स्टेशन और स्टेशन से नई सड़क तक यह निर्जन प्राय और बाजार शून्य मार्ग में चलता रहा। घण्टाघर पर एक द्वार वनाया गया था जिस पर कम से कम २००)खर्च हुए होंगे परन्तु जलूल का नेतृत्व करने वाले जलूस को उस द्वार से निकालने में भी असफल रहे। जलूस शक्ति और संगठन प्रदर्शित करने के लिए निकाला जाता है परन्तु यह जलूस उस समय निकल रहा था जब लोग

अपनी दुकानों को बन्द कर घर जाने की तैयारी कर रहे थे। मोर नाचा परन्तु जंगल में जिसे किसी ने नहीं देखा।

सब से अनोखी और मजेदार चीज इस जलूस में यह थी कि चौधरी देशराज आर्य संन्यासियों से भी ऊंचे आसन पर बैठे थे उस स्थान पर जो स्थान स्वामी ध्रुवानन्द जी के लिये निश्चित था। लोग पूछते थे कि क्या स्वामी जी भी गांधी टोपी पहनते हैं। चौधरी साहब के चरणों में सभा प्रधान पूर्णचन्द्र जी और स्वामी सत्य मुनि जी विराजमान थे। जिसे देख कर क्षोभ भी उत्पन्न होता था और लज्जा भी आती थी।

यह तो हुई सभा के अधिकारियों की अदूरदर्शिता की बात अब जलूस के सम्बन्ध में सुनिये। शोभा यात्रा वस्तुतः भव्य थी। जलूस तीन मील से कम लम्बा नहीं था। सिखों का जो जलूस कुछ समय पूर्व निकला था आर्यों के इस भव्य जलूस ने उसे मात कर दिया। लोगों में अपार उत्साह था। लोग गाना गाते हुये, चिम्टा बजाते हुये नाचते कूदते और नारे लगाते हुये बढ़ रहे थे। इस शोभायात्रा को देखकर जहां आर्य नर नारियों युवक और युवतियों के उत्साह का परिचय मिलता था वहां उनकी अपार श्रद्धा भी प्रकट होती थी। परन्तु यह सब कुछ तो ऋषि दयानन्द के तप और त्याग का ही परिणाम था कि इन नेताओं के प्रति अनास्था होते हुए भी आर्य नर नारी उत्साह भरे हृदय लेकर इस जलूस में शामिल हुए। यदि आर्य जगत् को उत्तम नेता मिल जाये तो आर्य समाज कुछ ही समय में बहुत आगे बढ़ सकता है। जो व्यक्ति, जो अधिकारी और नेता आर्य समाज को आगे ले जाने में असमर्थ हैं वे यदि स्वयं इस अधिकार को अन्य योग्य व्यक्तियों को सौंप दें तो अच्छा हो।

सम्मेलन की एक विशेषता और लिखकर लेख समाप्त करने मे पूर्व सभा द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक की आलोचना और कर दूं। स्वर्ण जयन्ति के अवसर पर एक पुस्तक छापी गई है "आर्य समाज परिचय।" मैं अभी सारी पुस्तक को नहीं पढ़ सका हूँ परन्तु यत्र तत्र पन्ने उलटने पर ही अनेक भूलें दृष्टिगोचर हुई।

५० पृष्ठ पर गायत्री मन्त्र छपा हुआ जिस का पता यजु ३०।२ दिया हुआ है। वस्तुतः यहां पता ३६।३ चाहिये। भूर्भुव स्वः व्याहृतियां ३६।३ में हीं हैं ३०।२ में नहीं। ऋग्वेद और सामवेद का नाम मात्र लिखा है पूरा पता नहीं दिया।

पृष्ठ ५१ पर असतोमासद्गमय—इत्यादि मन्त्र का पता यजु० १९।९ दिया है।

वर्त्तमान संहिताओं को हम ने खूब उलट पुलट कर देखा है हमें यह मन्त्र किसी भी वेद में नहीं मिला। यदि शास्त्री जा को कोई प्राचीन वेद मिला हो और उसमें इसका उल्लेख हो तो स्पष्ट कर अथवा आचाय विश्वश्रवा जी धर्मार्य सभा में इसका निर्णय करें।

पृष्ठ ५२ पर यस्य च्छायाऽमृतम् अशुद्ध पाठ छपा है शुद्ध पाठ यस्य छायाऽमृतम् है। पृष्ठ ५३ पर 'वयं राष्ट्रे जागृयाम' का पता यजु० ३।२३ दिया है जो सर्वथा अशुद्ध है। पृष्ठ ५६ पर श्री क्षेमकरण दास त्रिवेदी की पुस्तकों के आगे ऋग्वेदभाष्य (८-१०) मण्डल छपा हुआ है। यह लेखक की नई खोज है इस पर सार्वदेशिक को उन्हें पी० एच० डी० की उपाधि देनी चाहिये।

पृष्ठ ५८ पर स्वामी वेदानन्द जी के आगे सांख्य दर्शन का इतिहास भी लिखा हुआ है। यद्यपि इसके लेखक हैं श्री उदयवीर जी शास्त्री।

इनके अतिरिक्त भी कई अशुद्धियां हैं।

पृष्ठ ६२ पर आर्य समाज के प्रमुख वक्ता शास्त्रार्थ महारथी प्रचारकों में पं० रामचन्द्र जी देहलवी, व्यासदेव जी शास्त्री ठाकुर अमरसिंह जी, पं० प्रकाशवीर शास्त्री, पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी आदि अनेक नाम छोड़े हुये हैं।

पृष्ठ ६७ पर आर्य समाज की प्रमुख संस्थाएं और उनके आचार्यों के नाम दिये हुए हैं। इसी प्रसंग में पृष्ठ ६८ पर आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा के आगे श्रीमती सुशीला पण्डित जी नाम दिया हुआ है। ये अब से लगभग ४ वर्ष पूर्व यहां की आचार्य थी। वर्त्तमान आचार्य यशोदा बहन परमाल हैं।

ये अशुद्धियां तो केवल दिग्दर्शन मात्र हैं यदि सारी अशुद्धियों का वर्णन किया जाये तो श्री महेन्द्र प्रताप जी शास्त्री जो जाट कालेज के प्रिन्सिपल है और जिन्हें जाट होने के कारण ही यह महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया था उनकी विद्वत्ता की यदि अधिक समीक्षा की जाये तो उनके नाम के साथ चार चान्द लग सकते हैं। धन्य हो शास्त्री जी! जाट कालेज के प्रिंसिपल जो ठहरे इससे अधिक और आप से आशा भी क्या की जा सकती थी? इस पुस्तक में धन लगाकर सार्वदेशिक सभा के अधिकारियों ने धन का अपव्यय ही किया है।

इस सम्मेलन की एक और विशेषता थी और वह थी श्री वेणी भाई (बम्बई) का पीटा जाना। वेणी भाई को पीटने की योजना सुनिश्चित थी। उन्हें तार देकर बम्बई से बुलाया गया और यहां पहुँचने पर उनके कथनानुसार गुरुकुल झज्झर के ब्रह्मचारी सतीश और देवव्रत द्वारा उन्हें पिटवाया गया। क्या यही अतिथि सत्कार है? क्या यह आर्यों के लिये शोभनीय बात थी? इसी प्रकार चौ० देशराज की आज्ञा से श्री हरिराम आजाद को भी बुरी प्रकार पीटा गया। उनकी पसली पर भी चोट आई थी।

यह है आर्य महा सम्मेलन का आंखों देखा हाल "विद्यार्थी"

आर्य समाज में
तीव्र क्रांति का संचार कीजिये
राजनीति से परांगमुख होना आत्मघात समझो !

[लेखक श्री वैद्य अमरनाथ जी शास्त्री]

---

१. महर्षि स्वा० दयानन्द जी सरस्वती के आदेशानुसार 'राजार्य सभा' का संगठन कर धर्मानुसारिणी राजनीति का अवलम्बन अत्यावश्यक है।

२. अब तक आर्य समाज ने राजनीति का परित्याग कर बड़ी भूल की है। परिणाम सर्वथा विपरीत रहा, विवशतः कर्मठ आर्य सदस्य अन्यान्य संस्थाओं, दलों के अनुयायी बन गये, आर्य समाज केवल प्रस्ताव विलाप कारिणी संस्था रह गई।

३. 'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है,' इस षष्ट नियम के पालन करने में हम 'किंकर्त्तव्यविमूढ़' बने रहे। अब इसके प्रायश्चित का समय है। उठो। कर्त्तव्य साधनार्थ बद्ध परिकर हो जाओ।

४. सम्प्राप्त 'स्वराज्य' को 'सुराज्य' बनाना आर्य जनों का परम कर्त्तव्य है। कब तक औरों से सुधार प्रस्ताव समर्थन की आशा करते रहोगे। राजनैतिक निर्वाचनों में पूर्णतया भाग लेने के लिये सुयोग्य, जनहित चिन्तक, सेवाशील, सदाचारी, प्रतिनिधि खड़े करने का प्रबल प्रयत्न करो।

५. मेरठ के सप्तम् आर्य महा सम्मेलन के प्रस्ताव सं० ५ व ६ का सर्वथा संशोधन होना आवश्यक है। पृथक् नाम से राजनैतिक दल बनाने की अपेक्षा आर्य समाज को ही सामूहिक रूप से अग्रसर होना चाहिये।

६. यदि आर्य समाज के प्रभावशाली प्रतिनिधि प्रान्तीय विधान सभाओं और केन्द्रीय संसद में निर्वाचित सदस्य होते तो जन गणना में अखिल भूमण्डल की सार्वदेशिक सभा को विवश होकर आर्य समाज प्रवर्त्तक महर्षि के आदेश के विरुद्ध और ८५ वर्ष से चली आ रही आर्यत्व

वैदिक धर्म को भावना के विपरीत आर्य की अपेक्षा हिन्दु लिखाने की घोषणा न प्रसारित करनी पड़ती।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् के वैदिक घोष की अपेक्षा राज्यादेश से समस्या विशेष के कारण अब कृण्वन्तो हिन्दु सर्वम् अर्थात् वैधानिक रूप से १० वर्ष के लिये आर्य, हिन्दु शब्दाधिवाच्य हो गये।

७ अब आर्यों की जन गणना सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के द्वारा शीघ्र कराने का आयोजन होना चाहिये। (क्योंकि राजकीय जन-गणना में आर्यों की गिनती नहीं की गई, जोकि पहिले की जन गणनाओं के विरुद्ध व्यवस्था हुई)।

८. आर्य समाज की अभ्यन्तरीय स्थिति विकृत होती जा रही है। आर्य सदस्य नियमोपनियमों के विरुद्ध आचरण कर रहे हैं, सदाचार की भावना विलीन हो रही है। आर्य समाज अपने आदर्श से विपरीत पथ का अवलम्बन कर रहा है, समय रहते सुधार अत्यावश्यक है। केवल बाह्याडम्बरों से सन्तोष कल्याणकारी नहीं। सचेत होकर विचार कीजिये।

सूचना:—यदि आप इन विचारों से सहमत हैं तो निः संकोच अपना सुझाव परामर्श शीघ्र लिखिये और तत्परता से क्रान्ति आन्दोलन में भाग लीजिये, सहयोग दीजिये। मैं अनुभव करता हूँ कि राजनीति के पक्ष समर्थक आर्यजनों की पर्याप्त संख्या है, केवल उनके संगठन की आवश्यकता है।

[पृष्ठ ४३६ का शेष]

अन्तिम प्रस्ताव था पंजाब की भाषा समस्या के सम्बन्ध में जिसमें पंजाब की इस (भाषा) समस्या का हल राजनीतिक स्तर पर करने की बात कही गई तथा प्रस्ताविक महोदय ने आगामी महानिर्वाचन में कांग्रेस को हराने की बात कही। एक ओर प्रस्ताव होता है 'आर्य समाज राजनीति में भाग न ले' दूसरी ओर होता है चुनाव द्वारा भाषा समस्या के हल का कितनी विचित्रता है। 'माई हैड' में घर पर पिता जी का सर, स्कूल में मास्टर जी का सर, ठीक-ठीक चरितार्थ होती है न यह कहावत? हैं न हमारे नेता अजायब घर में रखने योग्य? प्रभु इन्हें सद्बुद्धि दे। कुंवर-सुखलाल जी के शब्दों में कहा जाय तो 'जतना स्वयं ही नेता है।' इन दोनों प्रस्तावों से तो स्पष्ट हो गया कि आर्य जगत का नेतृत्व किस कोटि के लोगों के हाथों में है। सर्वथा इच्छा के विरुद्ध होते हुए भी आर्य जनता के उद्बोधनार्थ समाचार पत्रों का आश्रय लेकर स्वविचारों को प्रसारित कर रहा हूँ। आर्य जन जागें तथा वेद और भगवान् दयानन्द के मिशन की रक्षा के लिए कटिबद्ध हों ॥ शमित्योम् ॥

,नवदम्पति को भेंट-देने योग्य अनुपम

★ उपहार ★

भारतीय स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण व चिरस्थायी बनाने के लिये आज भारत को कर्मवीर, बुद्धिमान् व शौर्य-सम्पन्न युवकों की आवश्यकता है। उस आवश्यकता की पूर्ति आपके हाथों में है।

क्या आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान समाज में सम्मान प्राप्त करे यदि हां! तो उसके लिए प्रयत्न करना आपका कर्त्तव्य है।

किस प्रकार ?

यह जानने तथा अनेक कर्त्तव्य से परिचित होने के लिए

इच्छानुसार संतानोत्पत्ति

यह पुस्तक मँगा कर अवश्य पढ़िए। पुस्तक पढ़ कर आप अनुभव करेंगे कि 'पुत्र या पुत्री, धर्मात्मा या पापी, शासक या चोर, जितेन्द्रिय या व्यभिचारी, गौर या श्याम वर्ण की" सन्तान का निर्माण तथा बर्थ कन्ट्रोल अपने ही हाथों में है।

इसकी महत्ता पढ़ने से ही विदित होगी

सजिल्द मूल्य २।।) डाक व्यय पृथक—

लेखक:—

वीरेन्द्र गुप्त

प्राप्ति स्थान—वीरेन्द्रनाथ अश्विनी कुमार

प्रकाशन मन्दिर, बाजार चौक, मुरादाबाद।

आर्य महासम्मेलन की झलकियां

[लेखक—श्री स्वामी वेदमुनि जी परिव्राजक]

—***—

नवम् सार्वदेशिक आर्य महा-सम्मेलन १६ से २१ मई तक देहली में था, यद्यपि न तो मैं सार्वदेशिक सभा द्वारा आमंत्रित ही था, न सम्मेलन के लिए किसी आर्य समाज से प्रतिनिधि ही था। किन्तु क्योंकि देश-विदेश के आर्य भाई-बहनों को इस अवसर पर एकत्रित होना था अतः एक आर्य संन्यासी होने के नाते अपने आर्य परिवार से मिलने के लिये आ उपस्थित हुआ।

सम्मेलन से एक दिन पूर्व १५ मई को ही मैं देहली में आ पहुंचा हुआ।

१६ मई को सम्मेलन स्थान पर विविध स्थानों से आये हुए प्रति-निधियों से भेंट हुई। वार्तालाप में यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि अनेक प्रतिनिधि आज ही लौट कर जा रहे हैं कारण ज्ञात करने पर पता चला कि कार्यकर्ताओं की नीतियों से क्षुब्ध होकर यह लोग लौट रहे हैं कई प्रतिनिधियों ने तो यहाँ तक कहा कि हम अत्यन्त दुःखी होकर यहां से लौट रहे हैं। उन्होंने कहा कि हमने सार्वदेशिक सभा के मन्त्री श्री रघु-वीर सिंह जी शास्त्री से वार्तालाप किया। प्रथम तो अनर्गल उत्तर मिले तथा तत्पश्चात् उत्तर मिलने ही बन्द हो गये। इस प्रकार कुछ प्रतिनिधि तो १६ की रात कुछ सत्रह की प्रातः तथा कुछ १८ को लौट गये।

इस महा-सम्मेलन के अन्तर्गत एक ओर तो गो कृष्यादि रक्षा सम्मेलन होता रहा तथा दूसरी ओर सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री चौधरी देश राज जी ने सम्मेलन क्षेत्र में गो रक्षक साहित्य बेचने तथा बांटने पर रोक लगा दी तथा इस कार्य को करने वालों को वहां से निकाल बाहर किया तथा कहा कि इस प्रकार के कार्यों से नेहरू जी रुष्ट होते हैं। इस सब का अर्थ है ऋषि दयानन्द से विद्रोह, उनकी गो करुणानिधि पुस्तक का अप-मान ऋषि एवं समस्त आर्य जगत् का ही अपमान है। भगवान् दयानन्द तो लिखते हैं "अन्यायी महा बलवान् चाहे राजा भी क्यों न हो उसके भी नाश का उपाय करे" और श्री देशराज जी कहते हैं कि इस प्रकार के कार्यों से नेहरू जी रुष्ट होते हैं। यह हैं नेहरू जी को प्रसन्न करने के लिये आर्य समाज एवं उसके सिद्धान्तों की बलि देने वाले हमारे नेता ! नेहरू

जी के गोहत्या विषयक विचारों का समर्थन करने वाले मनु द्वारा वर्णित आठ कसाइयों में से एक।

१६ मई को प्रातः सम्मेलन की यज्ञ शाला से सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के मंत्री श्री म० म० आचार्य विश्वश्रवा जी, राज पण्डित (यद्यपि राजा समाप्त हो चुके हैं) 'व्यास' ने कुछ संन्यासियों को बाहर निकाल दिया जिसके फल स्वरूप संन्यासियों में अत्यन्त रोष व्याप गया। यज्ञ के समाप्त होते ही सम्मेलन में आये हुए संन्यासियों की बैठक श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज आचार्य गुरुकुल चित्तौड़ की अध्यक्षता में हुई। इस बैठक में एक प्रस्ताव पास कर इस अशोभनीय व्यवहार के प्रति घोर विरोध प्रकट किया गया। ज्ञात हुआ श्री म. म. आचार्य राज पण्डित एवं व्यास को इसके लिये क्षमा मांगनी पड़ी, अन्यथा संन्यासी मण्डल सम्मेलन के प्रत्येक कार्यक्रम का बहिष्कार करने को समुद्यत था।

१६ मई को मध्याह्नोत्तर सम्मेलन प्रधान श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी सरस्वती की शोभा यात्रा निकाली गई। शोभा यात्रा का मार्ग दो बार परिवर्तित किया गया क्योंकि सरकार उन रास्तों से निकलने देने को तैयार न थी जो इन्होंने निश्चित किये थे, अन्ततोगत्वा तीसरा मार्ग जो सरकार ने चाहा दिया और हमारे वीर नेताओं ने चर्चिल की सेना की भांति वीरता पूर्वक पीछे हटते हुए उसे स्वीकार कर लिया। और इस प्रकार से शोभा यात्रा देहली के किसी भी प्रमुख बाजार से नहीं निकल सकी। १८ मई की रात्रि को बड़े गर्व से सम्मेलन के मंच से इस तृतीय मार्ग की घोषणा की गई यह कहते हुए कि सरकार ने हमें यह मार्ग दिया है। ज्ञात हुआ है कि श्री ला० रामगोपाल जी शाल वाले शोभा यात्रा का पूर्ण उत्तर दायित्व लेने को तैयार थे किन्तु वर्तमान वीर नेता तैयार नहीं हुए अन्यथा प्रथम मार्ग से ही मिन्टो रोड, कनाट प्लेस, थाम्सन रोड़ नई दिल्ली में ही शोभा यात्रा निकलती और पुरानी दिल्ली के चांदनी चौक आदि बाजारों से होती हुई गांधी मैदान में समाप्त होती।

शोभा यात्रा में भारी भीड़ थी। लाखों की संख्या में आर्य नर-नारी सम्मिलित हुए। यात्रा का समारोह किसी भी प्रकार से कम न था। आर्य-जनों का उत्साह दर्शनीय था। शोभा यात्रा के भजन एवं जय घोष अत्यंत उत्साह वर्धक थे, किन्तु हमारे नेताओं के बौद्धिक दिवालियेपन का परिचय यहां भी मिल रहा था। हमने देखा कि संन्यासियों के सिर के ऊपर श्री चौधरी देशराज जी विराजमान हैं। प्रधान जी की गाड़ी में सब से ऊपर आप ठीक संन्यासियों के सिर पर थे। होते क्यों न क्योंकि स्वागताध्यक्ष

न होते हुए भी आप अपने को बलात् स्वागताध्यक्ष बनाये बैठे थे। स्वागत तो सिर पर बैठ कर ही होता है, आधुनिक ढंग का स्वागत। इतनी विशाल शोभा यात्रा के लिये यह कलंक की बात थी।

संन्यासी मण्डल से अत्यन्त विनम्र शब्दों में मैं यह जानना चाहूँगा कि शोभा यात्रा में आर्य जगत् के प्रतिष्ठित संन्यासियों के सिर पर गृहस्थ को बैठाना क्या सन्यास आश्रम का सन्मान है यदि नहीं तो क्यों नहीं सन्यासियों में इस विषय की प्रतिक्रिया हुई। गृहस्थ भी वह जिस पर विदेशों में जाकर अभक्ष्य मद्य-मांसादि के सेवन के आरोप हैं। पता चला है कि आप पर इन आरोंपों के सम्बन्ध में केन्द्रीय आर्य सभा दिल्ली के प्रधान श्री लाला रामगोपाल जी शाल वाले को निर्णय देने के लिये अधिकार दे दिये गये हैं। प्रभु करे यह बात असत्य हो किन्तु यदि सत्य हो तो हमें आशा करनी चाहिये कि निर्णायक महोदय किसी भी स्थिति में सत्य और नैतिकता को हाथ से न जाने देंगे। क्या मैं आशा करूँ कि संन्यासी मण्डल जो यज्ञ शाला वाली घटना से इतना बिगड़ उठा था इस विषय पर भी कोई पग उठायेगा। होना तो चाहिये था कि २० मई को ही इस पर हलचल होती किन्तु अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। सार्वदेशिक सभाधिकारियों से पूछना चाहिये कि उन्होंने ऐसी भूल जानते हुए भी क्यों की? आर्य महा सम्मेलन की शोभा यात्रा में आर्य जगत् के पूज्य सन्यासियों के सिर पर एक साधारण गृहस्थ यह केवल सन्यासियों ही नहीं सारे आर्य जगत् को ही इस सम्बन्ध में रोष एवं विरोध प्रबल शब्दों में प्रगट करना चाहिये।

२१ मई को प्रातः काल पण्डाल में आर्य सम्मेलन का खुला अधिवेशन था। प्रस्ताव उपस्थित हुआ "आर्य समाज राजनीति में भाग न ले"। प्रस्ताव पर पक्ष में बोलने वाले कई व्यक्ति बोले, जब विरोध में बोलने वालों का नम्बर आया तो अभी एक ही सज्जन बोल पाये थे और दूसरे बोल रहे थे कि बिजली के बन्द होने से लाउड स्पीकर बेकार हो गया अतः अधिवेशन की कार्यवाही बीच में ही स्थगित हो गई। मध्याह्नोत्तर पण्डाल में लोग दस-दस, बीस-बीस की टोलियों में खड़े बातें कर रहे थे। सारा पण्डाल इस प्रकार की टोलियों से भरा हुआ था तथा राजनीति विषयक प्रस्ताव की ही सर्वत्र चर्चा थी। जनता प्रातः काल की सभा समाप्त हो जाने के विषय पर अत्यन्त क्षोभ प्रगट कर रही थी और यह शब्द स्पष्ट रूपेण कहे जा रहे थे कि बिजली जान बूझ कर बन्द की गई क्योंकि एक ही विरोधी के तर्कों से वर्तमान नेताओं के सिंहासन हिलने लगे थे।

इस अधिवेशन के स्थगन के पश्चात् श्री जगदेव जी सिद्धान्ती यह कहते सुने गये कि आज ग्रामीणों और शहरियों का मुकाबला है और इन शहर वालों से भली प्रकार निबटना है। किन्हीं से जाटों तथा गैर जाटों के मुकाबले की बात कहते थे तो किन्हीं से ग्रामीणों और शहरियों की। कुछ दिन पहले श्री ध्रुवानन्द जी महाराज को मैंने एक पत्र में लिखा था कि यह लोग आर्य समाजी बिल्कुल नहीं हैं। सोचता था कि यदि स्वामी जी अपने कानों से सिद्धान्ती जी के इन शब्दों को सुन लेते तो मेरे उस पत्र पर उन्हें विशेष विचार की आवश्यकता ही नहीं पड़ती तथा वह मान जाते कि यह लोग वास्तव में आर्य समाजी नहीं हैं।

रात्रि के अधिवेशन के समय सबने देखा कि समस्त स्वयं सेवकों के हाथों में लाठियां हैं जो पहले पांच दिनों में नहीं थी। मैं जब यज्ञ शाला की ओर होकर जनता के पीछे की ओर को जा रहा था तो किसी को कहते सुना कि श्री देशराज जी के कथनानुसार आज उनकी रिजर्व फोर्स आई है, मैं इस वाक्य का कोई अर्थ न लगा सका। जब मैं पीछे खड़ा था मुझे ज्ञात हुआ कि हरीराम आजाद नामक कोई व्यक्ति जो यहां पर सम्मेलन के प्रारम्भ से ही अत्यन्त तत्परता के साथ सेवा में संलग्न थे उनको श्री देशराज जी ने पिटवाया है। घटना स्थल पर जाकर देखा तो वहां पर श्री लाला रामगोपाल जी शाल वाले एवं श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री संसद सदस्य उपस्थित हैं। श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री वहां से तुरन्त हरी राम आजाद को पुलिस स्टेशन ले गये। जनता में जोश उभर रहा था तथा प्रकाशवीर शास्त्री अमर रहे के जय घोषों से वातावरण गूँज रहा था। यद्यपि यह घटना कुछ दूरी पर हुई किन्तु सभा स्थल भी इन जय घोषों से अछूता न रह सका। जनता खड़ी हो गई। ऊपर मंच से श्री स्वामी ध्रुवा नन्द जी महाराज एवं नीचे श्री ला० रामगोपाल जी के प्रयत्नों से जनता शान्त होकर बैठ गई। प्रातःकाल के खुले अधिवेशन के समय हरीराम आजाद ने ला० रामगोपाल जी को मंच पर बुलाने की मांग की थी। लाला जी पीछे दूर जनता में बैठे थे। चौधरी देशराज जी उन्हें मंच पर बैठाना नहीं चाहते थे अतः वह रुष्ट हो गये कारण कि इस मांग के परिणाम स्वरूप सम्मेलन प्रधान श्री ध्रुवानन्द जी ने उन्हें मंच पर बुला लिया। स्वामी जी को तो वह कुछ कहने का साहस रखते नहीं थे भले ही इस पर फुसफुसाते रहे, बेचारे हरीराम पर उनकी क्रोधाग्नि बरस पड़ी।

इसी समय पर बम्बई आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री वेणी भाई जी आर्य को भी पीटने के प्रयत्न हुए। उनके ऊपर आक्रमण भी किया

गया, उनके मुंह पर दायें नेत्र के पास चोट भी लगी। मारने वालों में गुरुकुल झज्जर के कुछ विद्यार्थियों के नाम भी लिये जा रहे थे जिन्हें श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी ने मंच से नाम लेकर पुकारा भी किन्तु उन्हें मारपीट के तुरन्त बाद ही वहां से भगा दिया गया था। यह भी सुनने में आ रहा है कि यही विद्यार्थी बम्बई भी श्री वेणी भाई को मारने के लिये भेजे गये थे किन्तु वहां सफलता नहीं मिल सकी। क्यों जी यह गुरुकुल है या कुरुकुल ?

इस घटना के पश्चात् प्रात: वाला यह प्रस्ताव कि "आर्य समाज राजनीति में भाग न ले" पुनः प्रस्तुत हुआ। प्रस्ताव का विरोध करने के लिये ला० रामगोपाल जी शाल वाले मंच पर आये। लाला जी के मंच पर आते ही जय घोषों का गुंजार एवं करतल ध्वनि प्रारम्भ हुई और उनका पूरा भाषण तालियों की गड़गड़ाहट एवं जय घोषों के मध्य ही सम्पन्न हुआ। उस समय का जनता का जोश अवर्णनीय है। और भी कई भाषण विरोध में हुए, प्रत्येक भाषण पर सारा रामलीला मैदान तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठता था। अब पक्ष में बोलने वालों का क्रम प्रारम्भ हुआ। श्री पंडित शिवचन्द्र जी ने महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश के छटे समुल्लास के प्रारम्भिक वाक्य को प्रस्तुत किया प्रस्ताव के पक्ष में। इस सारे उद्धरण में एक शब्द भी ऐसा नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि आर्य समाज राजनीति में भाग न ले। हां, भाग लेने के पक्ष में अवश्य उसको प्रस्तुत किया जा सकता है। मैं इस विषय पर श्री शिवचन्द्र जी जब चाहें शास्त्रार्थ के लिये तैयार हूं।

सार्वदेशिक सभा के मंत्री श्री रघुवीर सिंह जी भी प्रस्ताव के पक्ष में बोलने खड़े हुए। शास्त्री जी का भाषण क्या था ? आर्य समाज पर आक्रमण था। उन्होंने जी भर कर आर्य समाज को गालियां दीं। जनता सहन न कर सकी और सभा स्थल शर्म-शर्म की ध्वनि से गूंज उठा। इस समय प्रतिनिधि ही नहीं दर्शक भी क्षुब्ध हो उठे। स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज को जो मैं ने पत्र में निवेदन किया था इस अवसर पर श्री रघुवीर सिंह जी उसका मूर्तिमान रूप बने हुए थे। इधर लाठी धारी स्वयं सेवकों ने जनता को बल-पूर्वक दबाना चाहा जिससे जनता बिगड़ खड़ी हुई तथा जब तक श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज ने श्री आनन्द स्वामी जी महाराज को नीचे जनता के मध्य में नहीं भेजा जनता शान्त नहीं हुई।

शान्ति स्थापित होने पर पुनः रघुवीर सिंह जी शास्त्री ने अपना भाषण आरम्भ किया। जिन शब्दों पर जनता ने विरोध प्रदर्शित किया था वही शब्द पुन: कह कर उन्होंने अपनी बुद्धिमानी का परिचय दिया।

अब की बार जनता का क्षोभ सीमा पार चुका था। वही शर्म-शर्म की ध्वनि गूंज उठी। अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी जब शान्ति स्थापित न हो सकी तो प्रधान श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज ने प्रस्ताव ही स्थगित कर दिया। तब कहीं सम्मेलन की कार्यवाही आगे चल सकी।

एक बात हमारी समझ में अभी तक नहीं आई कि जब जनता की करतल ध्वनियों और उत्साह वर्धक जयघोषों को सुना जा सकता है तो विरोधी घोष क्यों कर्णं कुहेरों में दर्द करते हैं। सभाओं में होता ही यह है कि जब कोई जनता की रुचि की बात होती है तो लोग करतल ध्वनियों एवं जय घोषों से उसका स्वागत करते हैं जब जनता की रुचि तथा भावनाओं के विरुद्ध बात होती है तो विरोधी ध्वनियां उठा ही करती हैं। अन्य लोग भी तो प्रस्ताव के पक्ष में बोले उनका विरोध क्यों नहीं हुआ, कारण यही था कि उन्होंने आर्य ससाज को गालियां नहीं दीं। श्री शिवचन्द्र जी का विरोध हुआ किन्तु उठा कोई नहीं केवल दो बार शर्म-शर्म के घोष ही सुनाई दिये। घर में कोई कितना ही बड़ा हो किन्तु जनता के सामने मंच पर आकर ही व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं योग्यता का परिचय होता है। यदि विरोध को भी शान्ति पूर्वक सहन कर लिया जाता तो जनता दो चार बार विरोधात्मक घोष कर के बैठ जाती किन्तु बल पूर्वक लाठियों से दबाकर चुप कराने के परिणाम स्वरूप दो बार में पौन घण्टा तो समय नष्ट हुआ और अन्त में प्रस्ताव को स्थगित करना पड़ा।

जब दूसरी बार जनता शर्म विरोधी घोष लगा रही थी तब श्री-जगदेव जी सिद्धान्दी मंच के सामने ही नीचे खड़े कह रहे थे इनका इलाज डण्डा है डण्डा। लोगों ने स्पष्ट रूपेण यह शब्द उनके मुखारविन्द से सुने हैं। मंच में ऊपर दाईं ओर श्री चौधरी देशराज जी मंच के जंगले पर पैर रख कर आगे को झुके हुये हाथ हिला हिला कर स्वयं सेवकों को आदेश दे रहे थे लाठियों से मार मार कर ठीक कर दो।

क्या करें बेचारे बुद्धि किसी पंसारी के यहां तो मिलती नहीं जो तोला दो तोला ले लेते। प्रभु ने बड़ी की कृपा की कि इस अवसर पर आर्य समाज के दोनों तपोनिष्ठ सन्यासी पूज्यपाद स्वामी ध्रुवानन्द जी एवं आनन्द स्वामी जी महाराज उपस्थित थे अन्यथा इस प्रकार से जनता को लाठियों से पिटवाने की बात जनता के सामने ही खड़े होकर करना घोर आपत्ति को आमन्त्रण देना है। जब आप लाठियों से मार-मारकर जनता को ठीक करने की बात कह रहे थे तब रिजर्व-फोर्स वाली बात हमारी समझ में आई। [शेष पृष्ठ ४३२ पर]

साहित्य समालोचना

ईश्वर दर्शनः—लेखक श्री हिम्मत राय गुप्त। प्रकाशक स्वामी-शिवानन्द सरस्वती, शिवाश्रम, जस्साराम रोड़ हरिद्वार। ११२ पृष्ठ मूल्य ७५ नये पैसे।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है पुस्तक में ईश्वर सम्बन्धी चर्चा है। युक्तियों द्वारा तथा भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के उद्धरण देकर ईश्वर सिद्धि की गई है। साधारण पाठकों के लिए उपयोगी है। कागज और छपाई अति साधारण है।

निज जीवन वृत्त वनिका—लेखक श्री स्वा० ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड। प्रकाशक—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन (रामलीला मैदान) नई दिल्ली-१।

८० पृष्ठ मूल्य सजिल्द ७५ नये पैसे।

पूज्यपाद स्वामी ब्रह्ममुनि जी आर्य जगत् के प्रकाण्ड विद्वानों में से एक हैं। आप आर्य जगत् को ५४ अतिमहत्व पूर्ण एवं मौलिक ग्रन्थ प्रदान कर चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक में स्वामी जी ने अपना जीवन वृत्त लिखा है। युवकों के लिए यह पुस्तक पथ प्रदर्शन का कार्य करेगी। स्वामी जी ने कैसी कैसी यातनायें सहकर विद्या अध्ययन किया और फिर अपने परिश्रम से उन्होंने कितनी उन्नति की यह सारा वृत्तान्त पढ़ने योग्य है। पुस्तक नौ अध्यायों में विभक्त है। इस का अन्तिम अध्याय "अन्तिम निराशा, पश्चाताप और चेतावनी" आर्य जगत् के कर्णधारों, हितचिन्तकों नेताओं और आर्य समाज के अन्तरंग सदस्यों मन्त्री तथा प्रधानों को अवश्यमेव पढ़ना चाहिये।

पुस्तक बढ़िया कागज पर कलात्मक ढंग से छपी है। गैट अप सुन्दर है।

विरजानन्द प्रकाश

गुरु विरजानन्द जी का खोज पूर्ण जीवन

भीमसेन शास्त्री एम० ए० द्वारा लिखित अवश्य पढ़िये। मूल्य २)

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क देहली।

[अप्रैल के अङ्क से आ.ग]

व्याख्यान माला

धनगुणाः

ईशा वास्यामिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १ ॥

इस सृष्टि में जो कुछ भी चर, प्राणी, जंगम, संसार या प्रगतिशील है वह सब सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से व्याप्त है। उस त्याग किये हुए या परमेश्वर से दिये हुए पदार्थ से भोग सुख अनुभव कर किसी के भी धन लेने की चाह मत कर। अथवा वह धन किस का है ? किसी का भी नहीं। इस-लिये लालच मत कर ॥ १ ॥

धनं संचय काकुत्स्थ धनमूलमिदं जगत् ।
अन्तरं नैव पश्यामि निर्धनस्य मृतस्य च ॥ २ ॥

हे काकुत्स्थ ! तू धन का संचय कर क्योंकि धन ही इस जगत् का मूल कारण है। मैं निर्धन व्यक्ति में और मरे हुए व्यक्ति में कोई अन्तर नहीं देखता ॥ २ ॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
अतोऽर्थाय यतेतैव सर्वदा यत्नमास्थितः ॥ ३ ॥

इस धन का ही पुरुष दास होता है किन्तु धन किसी का दास नहीं होता। इसलिये सर्वदा यत्न करके धन की प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिये ॥ ३ ॥

अस्ति यावत्तु सधनस्तावत्सर्वैस्तु सेव्यते ।
निर्धनस्त्यज्यते भार्यापुत्राद्यैः सगुणोऽप्यतः ॥ ४ ॥

जब तक मनुष्य धनवान् रहता है तब तक सभी उस का सेवन करते हैं किन्तु जब निर्धन हो जाता है तो गुणवान होने पर भी उसे भार्या तथा पुत्र भी छोड़ देते हैं ॥ ४ ॥

धर्माय यशसेऽर्थाय आत्मने स्वजनाय च ।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥ ५ ॥

जो धर्म के लिये, यश के लिये, याचकों के लिये, अपने लिये तथा अपने आत्मीय जनों के लिये धन का पांच प्रकार विभाग करता है वह इस लोक तथा परलोक में सुखी रहता है ॥ ५ ॥

अर्थाद्धर्मश्च कामश्च स्वर्गश्चैव नराधिप ।
प्राणयात्राऽपि लोकस्य विना ह्यर्थं न सिध्यति ॥ ६ ॥

हे राजन् ! धन से ही धर्म, काम तथा स्वर्ग की प्राप्ति होती है। धन के बिना संसार में लोगों की प्राण यात्रा भी नहीं हो सकती ॥ ६ ॥

दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं संरोचते न दारिद्र्यम् ।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ॥ ७ ॥

दरिद्रता और मृत्यु इन दोनों में मृत्यु ही श्रेष्ठ है दरिद्रता नहीं। क्योंकि मृत्यु से तो थोड़ा क्लेश होता है और दरिद्रता से अनन्त दुःख होता है ॥ ७ ॥

शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्षिण्यं मधुरता कुले जन्म ।
न विराजन्ति हि सर्वे वित्तहीनस्य पुरुषस्य ॥ ८ ॥

शील, पवित्रता, सहनशीलता, दक्षता, मधुरता, तथा उच्च कुल में जन्म, ये सभी गुण वित्तहीन पुरुष में शोभा नहीं पाते ॥ ८ ॥

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ ९ ॥

जिसके पास धन है वही मनुष्य कुलीन माना जाता है। वही पंडित वही अनुभवी तथा विद्वान् माना जाता है। वही वक्ता तथा दर्शनीय माना जाता है क्योंकि यह सारे गुण कांचन (सुवर्ण) के आश्रम रहते है ॥९॥

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं द्रुमालयः पत्रफलाम्बुभोजनम् ।
तृणानि शय्या वसश्च्वल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥ १० ॥

व्याघ्र तथा सिंहों से सेवित वन में रहना, पेड़ का आश्रय करना, पत्र फल का ही भोजन करना, तिनकों पर सोना, और वल्कल के वस्त्र पहनना श्रेष्ठ है किन्तु बन्धुओं के बीच में धन हीन होकर रहना उचित नहीं इस रहने से तो उपर्युक्त विपत्तियां सहना श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

धनदोषाः

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ १ ॥

सत्य का मुख सुवर्णरूप ज्योतिर्मय ढकने से ढका हुआ है। हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के पोषक परमात्मन् ! उसको तू सत्यधर्म के दर्शन करने के लिये खोल दे जिससे इस वितैषणारूपी आवरण से दूर होकर इस ब्रह्म का रूप देख सकें ॥ १ ॥

निर्धनानां सदा दैवमनुकूलं हि जायते ।
धनिनां प्रतिकूलं तत्प्रायशो दृश्यते भुवि ॥ २ ॥

प्राय: संसार में देखा जाता है कि निर्धन मनुष्यों का भाग्य सदा अनुकूल रहता है और धनवानों का भाग्य सदा प्रतिकूल ही रहता है ॥२॥

धनिनां जीवितं यादृक् तादृगेव तवापि च ।
धनलाभाद्धि मैत्रेयि भविष्यति न संशय: ॥ ३ ॥

हे मैत्रेयी जिस प्रकार का धनिकों का जीवन है उसी प्रकार तेरा हो जायेगा। हे मैत्रेयी ! धन की अधिकता के कारण अमर पद नहीं मिलता ॥ ३ ॥

प्रायश्चित्ते राजदण्डे वैश्यानृत्ये च भारत ।
मद्यद्यूतपरस्त्रीषु धनं गच्छति पापिनाम् ॥ ४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ। पापियों का धन प्रायश्चित में राजदण्ड (जुर्माने) में और वेश्या के नाच और मद्य जुए तथा पर स्त्रीगमन में नष्ट होता है ॥ ४ ॥

द्रव्येण जायते काम: क्रोधो द्रव्येण जायते ।
द्रव्येण जायते लोभो मोहो द्रव्येण जायते ॥ ५ ॥

द्रव्य से ही काम की उत्पत्ति होती है द्रव्य से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। द्रव्य से ही लोभ की उत्पत्ति होती है और द्रव्य से ही मोह की उत्पत्ति होती है ॥ ५ ॥

लोभाविष्टो नरो वित्तमीक्षते न स चापदम् ।
दुग्धं पश्यति मार्जारो यथा न लगुडादिकम् ॥ ६ ॥

लोभ में फंसा हुआ मनुष्य धन को ही देखता है किन्तु उसके कारण होने वाली आपत्तियों को नहीं देखता। जैसे बिल्ली दूध को ही देखती है डण्डे को नहीं ॥ ६ ॥

अर्थार्थी यानी कष्टानि मूढोऽयं सहते जन: ।
शतांशेनापि मोक्षर्थी तानि चेन्मोक्षमाप्नुयात् ॥ ७ ॥

धन का संचय करने वाला व्यक्ति जितने भारी भारी कष्टों का सहन करता है। जितने कष्ट वह झूठा अर्थार्थी सहता है यदि उसके शतांश भाग के समान भी मोक्षार्थी कष्ट सहे तो मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ७ ॥

अर्थार्थी जीवलोकोऽयं श्मशानमपि सेवते ।
जनितारमपि त्यक्त्वा नि: स्वं गच्छति दूरत: ॥ ८ ॥

यह सारा ही संसार धन की कामना वाला है और इसी कामना में

ही श्मशान का सेवन करता है। अपने उत्पादक को छोड़कर स्वयंमेव दूर चला जाता है ॥ ८ ॥

धनस्य यस्य राजतो भयं न चास्ति चोरतः ।
मृतश्च यन्न मुञ्चति त्वमर्जयस्व तद्धनम् ॥ ९ ॥

जिस धन के लिये राजा का भय नहीं होता और जिस धन को चोरों से भी भय नहीं होता जो मरने पर साथ नहीं छोड़ता, उस धन का तू संचय किया कर ॥ ९ ॥

वरमसिधारा तरुतलवासो वरमिह भिक्षा वरमुपवासः ।
वरमपि घोरे नरके पतनं न च धनगर्वितबान्धवशरणम् ॥ १० ॥

तलवार की धार श्रेष्ठ है, पेड़ के नीचे वसना श्रेष्ठ है, भिक्षा करना श्रेष्ठ है उपवास करना भी श्रेष्ठ है, घोर नरक में पड़ जाना भी श्रेष्ठ है किन्तु धन से गर्वित भाइयों की शरण में रहना ठीक नहीं ॥ १० ॥

—:००:—

गृहस्थाश्रमगुणदोषौ

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ १ ॥

जिस प्रकार सब छोटी बड़ी नदियां सागर में ही स्थिति को प्राप्त होती हैं। उसी प्रकार सारे आश्रमोजन गृहस्थ से ही संस्थिति को प्राप्त होते गृहस्थ के आश्रित होते हैं ॥ १ ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ २ ॥

जिस प्रकार सारे जीव जन्तु वायु का आश्रय लेकर ही जीवित रहते हैं उसी प्रकार सारे आश्रमों वाले जन गृहस्थ का आश्रय लेकर ही रहते हैं ॥ २ ॥

अस्ति पुत्रो वशे यस्य भृत्यो भार्या तथैव च ।
अभावे सति संतोषः स्वर्गस्थोऽसौ महीतले ॥ ३ ॥

जिस मनुष्य के वश में अपना पुत्र, नौकर तथा भार्या रहती हैं। और जिसको धनाभाव में भी सन्तोष रहता है वह पृथ्वी पर भी स्वर्ग सुख भोगता है ॥ ३ ॥

अतिथिः पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति ।
नान्यस्तस्मात्परो धर्म इति प्राहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

जिस घर में जाकर अतिथि गृहस्थी द्वारा अच्छी तरह सत्कृत होकर लौटता है मनीषी विद्वान् लोगों ने गृहस्थियों के लिये इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं बतलाया है ॥ ४ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्वार्थमेव च ॥ ५ ॥

गृहस्थी को ब्राह्ममूहूर्त में उठना चाहिये और धर्म अर्थ का चिन्तन करना चाहिये । शरीर के क्लेशों को भी दूर करने का चिन्तन करे । और सुख के मूल वेदों का चिन्तन किया करे ॥ ५ ॥

सुविप्रपादोदककर्दमानि सुवेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि ।
स्वाहास्वधाकारनिरन्तराणि स्वानन्दतुल्यानि गृहाणि तानि ॥ ६ ॥

जिस घर में श्रेष्ठ विद्वानों के पांव धुलाने के कारण कीचड़ रहता हो । वेद शास्त्र के मन्त्रों की ध्वनि का जहां गर्जन होता हो और जहां यज्ञ की आहुति के साथ स्वाहा शब्द का उच्चारण होता हो वह घर स्वर्गीय आनन्द के देने वाले होते हैं ॥ ६ ॥

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥ ७ ॥

रागी मनुष्य वन में रह कर भी दोष करते रहते हैं किन्तु जो घर में रह कर भी पांचों इन्द्रियों पर निग्रह रखता है वह तपस्वी है । जो मनुष्य सदा श्रेष्ठ प्रशंसनीय कर्म ही करता है उस निवृत्तरागी पुरुष के लिये तो घर भी तपोवन ही है ॥ ७ ॥

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता न दुर्भाषिणी
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापराः सेवकाः ।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे साधोः
संगमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः ॥ ८ ॥

वह गृहस्थाश्रम धन्य है जिस में आनन्दयुक्त कुल हो, बुद्धिमान् पुत्र हों, भार्या सदा मधुर भाषिणी हो, अच्छे मित्र हों, अच्छा धन हो, अपनी पत्नी में ही रति हो, और सेवक आज्ञापालक हों । अतिथियों की तथा शिव की पूजा होती हो, प्रतिदिन जहां मिष्टानपान हो और जिस में नित्य साधुओं का सत्संग होता है ॥ ८ ॥

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥ ९ ॥

जिसके घर में माता नहीं है और भार्या अप्रियवादिनी हो ऐसे मनुष्य को बन में चले जाना चाहिये क्योंकि उसके लिये वन तथा घर समान ही हैं ॥ ६ ॥

यत्र नास्ति दधिमन्थनघोषो यत्र नो लघुलघूनि शिशूनि ।
यत्र नास्ति गुरुगौरवपूजा तानि किं वत गृहाणि वनानि ॥ १० ॥

जिस घर में दधिमन्थन का घोष न होता हो। और जिस घर में छोटे छोटे बच्चे न हों और जिस घर में गुरु के गौरव की पूजा न होती हो। दुःख है कि वह घर घर नहीं हैं किन्तु वह घर वन ही है ॥ १० ॥

न विप्रपादोदकपङ्किलानि न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि ।
स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥ ११ ॥

जिस घर में ब्राह्मणों के चरण धोने से कीचड़ न हो जाता हो तथा वेद शास्त्रों की ध्वनि की गर्जना न होती हो और आहुतियुक्त स्वाहा शब्द का उच्चारण नहीं होता वह घर शमशान के तुल्य है ॥ ११ ॥

क्रोशन्तिः शिशवः सवारि सदनं पङ्कावृतञ्चाङ्गणं
शय्या दंशवती च रूक्षमशनं धूमेन पूर्णं गृहम् ।
भार्या निष्ठुरभाषणी प्रभुरपि क्रोधेन पूर्णः
सदा स्नानं शीतलवारिणा हि सततं धिग्धिग्गृहस्थाश्रमम् ॥ १२ ॥

जहां बच्चे रोते रहते हैं, और घर में जल पड़ा रहता है कीचड़ से युक्त आंगन रहता है, और खटमलों से युक्त शय्या रहती है, रूखा भोजन हो और धुवें से घर भरा रहता हो, भार्या अप्रियवादिनी हो, और सदा शीतल जल से स्नान होता हो ऐसे गृहस्थाश्रम को बार बार धिक्कार है ॥ १२ ॥

—❀❀❀—

सन्तोषः

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥ १ ॥

जिनका चित्त शान्त है और सन्तोष रूपी अमृत से सदा तृप्त रहता है उन मनुष्यों को जो सुख मिलता है वैसा सुख इधर उधर घूमने वाले धन के लोभियों को कहां मिलता है ॥ १ ॥

अन्तो नास्ति पिपासायाः संतोषः परमं सुखम् ।
तस्मात्सन्तोषमेवेह परं पश्यन्ति पण्डिताः ॥ २ ॥

इस तृष्णारूपी पिपासा का तो कहीं अन्त ही नहीं है सन्तोष ही परम सुखदायक है इसीलिये पण्डित लोग सन्तोष को ही श्रेष्ठ मानते हैं ॥ २ ॥

सन्तोषं परमस्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ ३ ॥

सुखार्थी जन का कर्तव्य है कि वह सन्तोष को ही श्रेष्ठ मानकर उस को धारण करे क्योंकि सन्तोष ही सुख का मूल है और असन्तोष ही दुःख का मूल है ॥ ३ ॥

यस्त्विमां वसुधां कृत्स्नां प्रशासेदखिलां नृपः ।
तुल्याश्मकाञ्चनो यश्च स कृतार्थो न पार्थिवः ॥ ४ ॥

कोई राजा इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर भी यदि शासन करता हो और और जिसके पास लोहे के तुल्य भी सोना क्यों न हो फिर भी वह राजा कृतार्थ नहीं माना ॥ ४ ॥

यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते ।
तत्प्रशाम्यत्यसन्तोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥ ५ ॥

जो सन्तोषी ब्राह्मण है उसकी सब इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं और तेज बढ़ता है । किन्तु असन्तोष करने से इसके विपरीत शीघ्र ही सब नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

सन्तुष्टः को न शक्नोति फलमूलैश्च वर्तितुम् ।
सर्वाणीन्द्रियलौल्येन सङ्कटान्यवगाहते ॥ ६ ॥

सन्तोषी मनुष्य तो फल मूल खाकर भी अपना निर्वाह सुख पूर्वक कर सकता है किन्तु इन्द्रियों की चंचलता से सभी संकट भोगने पड़ते हैं ॥ ६ ॥

अर्थी करोति दैन्यं लब्धार्थो गर्वपरितोषम् ।
नष्टधनश्च स शोकं सुखमास्ते निःस्पृहः पुरुषः ॥ ७ ॥

धन को चाहने वाला मनुष्य दीनता करता है । और जो धन प्राप्त कर लेता है वह घमण्ड करने लगता है । और जिसका धन नष्ट हो जाता है वह शोक करता है किन्तु निस्पृहजन सुखी रहता है ॥ ७ ॥

सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
कन्दैः फलैर्मुनिवराः क्षपयन्ति कालं सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥ ८ ॥

सांप पवन का ही पान करते हैं किन्तु वह निर्बल नहीं होते। सूखे तिनके खाकर भी वन के हाथी बलवान् बन जाते हैं। कन्द और फलों को खाकर ही मुनि लोग समययापन करते हैं। क्योंकि सन्तोष ही पुरुष का परम निधान है ॥ ८ ॥

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वञ्च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।
स हि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥ ९ ॥

हम तो इन वल्कल के वस्त्रों में ही सन्तुष्ट है और तू लक्ष्मी से किन्तु सन्तुष्टि दोनों की समान ही है विशेषता कोई नहीं है। क्योंकि दरिद्र वही माना जाता है जिसकी तृष्णा बड़ी है मन के सन्तुष्ट होने पर न कोई भगवान् रहता है न दरिद्र ॥ ९ ॥

तृष्णा

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी स्मृता ।
अधर्मबहुला चैव घोरा पापानुबन्धिनी ॥ १ ॥

तृष्णा ही सब से पापनी है यह नित्य ही दुःख देने वाली मानी गई है और यह अधर्म कराने वाली है तथा पापों के बन्धन में बांधने वाली भी तृष्णा ही है ॥ १ ॥

यथैव शृङ्गं गोः काले वर्धमानस्य वर्धते ।
तथैव तृष्णा वित्तेन वर्धमानेन वर्धते ॥ २ ॥

जिस प्रकार गौ का शृङ्ग ज्यों ज्यों समय बढ़ता (बीतता) जाता है त्यों त्यों बढ़ता जाता है। उसी प्रकार ज्यों ज्यों धन बढ़ता जाता है त्यों त्यों तृष्णा बढ़ती जाती है ॥ २ ॥

आशा नाम मनुष्याणां काचिदाश्चर्यशृङ्खला ।
यथा बद्धाः प्रधावन्ति मुक्तास्तिष्ठन्ति पंगुवत् ॥ ३ ॥

मनुष्यों के लिये आशा नाम की यह कोई आश्चर्यमुक्त शृंखला ही है जिस में वद्ध होने से मनुष्य इधर उधर भागते फिरते हैं और इससे मुक्त होने पर पंगु के समान निश्चल रहते हैं ॥ ३ ॥

समाज मन्दिर तथा स्कूल कालेजों को सजाइये

प्रत्येक का साइज २०×३०

महर्षि दयानन्द का रंगीन चित्र मूल्य १।)

दो नवीन चित्र

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

मुनिवर गुरुदत्त विद्यार्थी

महर्षि दयानन्द

गुरु विरजानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द

महात्मा हंसराज

परिडत लेखराम

प्रत्येक चित्र का मूल्य १)

महात्मा आनन्द स्वामी जी की नई पुस्तक

उपनिषदों का सन्देश

पृष्ठ संख्या २०४ मूल्य १।)

* स्वामी जी की अन्य पुस्तकें *

तत्त्वज्ञान	३)
प्रभु दर्शन	२।।)
प्रभु भक्ति	१।।)
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त और भगवान्	१)
आनन्द गायत्री कथा	।।≡)।
भगवान् शंकर और दयानन्द	।।)
एक ही रास्ता	।।।-)
सत्यनारायण व्रत कथा	।।=)

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क देहली

हमारे आगामी विशेषाङ्क

❀ नित्यानन्द व्याख्यान माला बृहद् विशेषांक

❀ ब्रह्मकुमारी अङ्क

❀ योगाङ्क

❀ विष्णुपुराणालोचनाङ्क

❀ दयानन्द अङ्क

जुलाई के प्रथम सप्ताह तक तैयार होगा

★ श्रीमद्दयानन्द प्रकाश ★

लेखकः—श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

महर्षि दयानन्द का सुप्रसिद्ध जीवन चरित्र

❀ इतने मोटे अक्षरों में ❀

महर्षि का यह जीवन चरित्र सब जीवनियों से अधिक छपने के बाद भीइ सकी मांग बनी हुई है। इसका कारण यह जीवन चरित्र बहुत ही मधुर तथा ललित भाषा में लिखा हुआ है। प्रायः गुरुकुलों के पाठ्यक्रम में यह बच्चों को भी पढ़ाया जाता रहा है। आपके पास न हो तो आज ही अपना आर्डर बुक कराइये।

बड़े साइज के ६०० पृष्ठ। मजबूत जिल्द। बढ़िया एण्टिक कागज फिर भी मूल्य केवल १२)। १०) भेज कर अगाऊ ग्राहक बन जाइये। अगाऊ ग्राहकों को डाक खर्च माफ।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली में छपवाया।

वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

दृढ़ सङ्कल्प

संकल्प की शक्ति महान् है। दृढ़ संकल्प से दुर्गम पर्वतों पर चढ़ाई को जा सकती है, गम्भीर एवं उत्ताल तरंगों वाले समुद्र का मन्थन किया जा सकता है। इतना ही नहीं दृढ़ संकल्प से कठिन से कठिन कार्य अति सरलता एवं सुगमता से किया जा सकता है। ऋषि के सेनानियो! संकल्प कीजिये कि इस वर्ष वेदप्रकाश के ५००० ग्राहक बनाने ही हैं। आर्यों की संख्या एक करोड़ से कम तो किसी भी दशा में नहीं है आप संकल्प कीजिये कि वेद प्रकाश को घर-घर में पहुँचाना है।

—❀—

आदरी सहसम्पादक

ब्र० जगदीशचन्द्र

विद्यार्थी

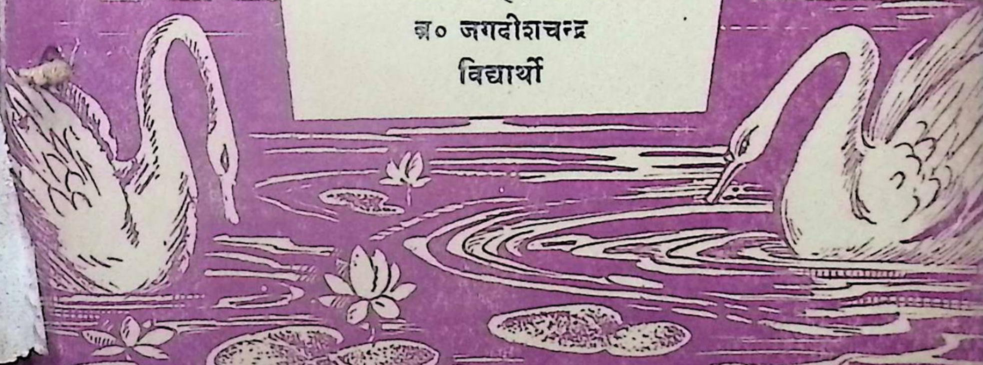

गोविन्दराम हासानन्द स्मृति ग्रन्थमाला

के स्थाई ग्राहक बनिये

वैदिक सत्साहित्य के प्रचारार्थ श्री गोविन्दराम हासानन्द जी ने अपने ३५ वर्ष अर्पित किये। उनके कार्यों से आर्य जगत् पूर्ण रूपेण परिचित है। उनकी स्मृति में एक स्मृति ग्रन्थमाला आरम्भ की गई है। इसका उद्देश्य जहां उनकी स्मृति बनाए रखना है वहां यह वैदिक साहित्य का प्रकाशन भी है।

यह योजना आरम्भ हो गई है। अधिक से अधिक संख्या में इसके ग्राहक बनिये। **नियमावलि आज हो कार्ड लिख कर मंगा लीजिये।**

इसके अन्तर्गत यजुर्वेद मूल, गुरुदत्त लेखावलि तथा चारों वेदों के शतक प्रकाशित हो चुके हैं।

ऋग्वेद—यजुर्वेद—सामवेद—अथर्ववेद शतकम्

यजुर्वेद—ऋग्वेद शतक में महर्षि दयानन्द के भाष्य से १०० चुने मन्त्रों का संग्रह है सामवेद शतकम् में पं० तुलसीराम स्वामी के भाष्य से १०० मन्त्र तथा अथर्ववेद शतकम् पं० क्षेमकरण दास त्रिवेदी कृत भाष्य से १०० मन्त्र चुने हैं। प्रत्येक का मूल्य १)

श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक लिखते हैं

"शतकों में मन्त्रों का चुनाव बहुत योग्यता से किया है इनके स्वाध्याय से जीवन की कई समस्याओं का समाधान हो सकता है। वेद-प्रचार के लिए ऐसे सुन्दर संग्रह विशेष लाभदायक हो सकते हैं। इन का घर घर प्रचार होना चाहिए पुरस्कार और भेंट उपहार देने के लिए भी संग्रह बहुत उपयोगी है।"

महात्मा आनन्द भिक्षुजी महाराज—आपने यह शुभ कार्य करके आर्य जनता को अनुग्रहित किया है।

पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ—अत्यन्त सुन्दर सुमनोहर आकर्षक रूप में मुद्रित हुए हैं। वस्तुतः ऐसे सस्ते आकर्षक साहित्य से ही आर्य समाज का प्रचार होगा।

पं० वासुदेव शरण अग्रवाल:—सौ सौ मन्त्रों का चुनाव बहुत योग्यता से किया है।

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय—मन्त्र बहुत अच्छे हैं इससे वेदप्रचार में विशेष सहायता मिलेगी। मेरा आशीर्वाद है।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, देहली।

मुद्रक प्रकाशक विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली में छपवाया।

॥ ओ३म् ॥

वेद प्रकाश

संस्थापकः—स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द जी

वर्ष—६ : आषाढ़ २०१८ वि० : जुलाई १९६१ : वार्षिक मूल्य ३)
अंक—१२ : दयानन्दाब्द १३६ : आषाढ़ १८८२ : विदेशों से ६ शिलिंग

स्त्री को उपदेश

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ १४६ ॥
(अथर्व० १४।१।२२)

(इह इव स्तं) यहां ही तुम दोनों रहो। (मा वि यौष्टं) अलग विभक्त मत होओ। पुत्र और (नप्तृभिः) नातियों के साथ (क्रीडन्तौ) खेलते हुए (स्वस्तकौ मोदमानौ) अपने उत्तम घर में आनन्दित होते हुए (विश्वं आयुः) सब आयु (वि अश्नुतं) प्राप्त करो।

स्त्रीपुरुष एकत्रित रहें। कभी विभक्त न हों अर्थात् विवाह सम्बन्ध तोड़कर एक दूसरे को त्याग न दें। अपने घर में सुख अनुभव करने योग्य परिस्थिति बना कर अपने बालबच्चों के साथ आनन्द से रहते हुए ही सम्पूर्ण आयु प्राप्त करके दीर्घ आयु तक जीवित रहें ।

सम्पादकीय टिप्पणियां

वेद प्रकाश के नौ वर्ष

इस अंक के साथ 'वेद प्रकाश' सफलता पूर्वक अपने जीवन के नौ वर्ष पूर्ण कर रहा है। "नित्यानन्द व्याख्यान माला" बृहद् विशेषांक से वेद प्रकाश दसवें वर्ष में पदार्पण करेगा। पिछले ९ वर्ष में वेद प्रकाश ने क्या किया है यह विज्ञ पाठकों को भली भांति ज्ञात है। हमने अत्यल्प मूल्य में दयानन्द ग्रन्थ संग्रह, वाल्मीकिय रामायण, बृहदारण्यक उपनिषद् कथा माला, सृष्टि का इतिहास, महर्षि से पूर्व का भारत, गुरुदत्त लेखावली आदि दुर्लभ पुस्तकें पाठकों तक पहुंचाई हैं। नवम वर्ष में, यद्यपि अंक छोटे थे परन्तु राधा स्वामी मतालोचन, आर्य समाज अंक, और आर्य महा सम्मेलन समीक्षा अंक छापे जिन की भूरि भूरि प्रशंसा हुई है। आगामी वर्ष में हम अपने पाठकों को ५ विशेषांक देंगे ऐसा हमारा निश्चय है। हम वेद प्रकाश पत्रिका को श्रेष्ठतम बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं और करेंगे परन्तु—

आप का भी कुछ कर्तव्य है:—

आज 'कल्याण' मासिक की बड़ी धूम है। यह सवा लाख से भी अधिक छपता है। आर्य जगत् के नेता तो पता नहीं सोचते हैं या नहीं, परन्तु मैं और मेरी जैसी विचार धारा वाले अनेक व्यक्ति यह सोचते हैं कि आर्य सिद्धान्तों का प्रचारक कोई पत्र ऐसा होना चाहिये जो इस स्तर का हो। कार्य कठिन कुछ नहीं है। मेरी योजना के अनुसार 'वेद प्रकाश' केवल तीन वर्ष में 'कल्याण' जैसा व्यापक पत्र बन सकता है। इस वर्ष के लिये मैं आप से इतना ही निवेदन करूंगा कि वेद प्रकाश का प्रत्येक सदस्य 'वेद प्रकाश' में छपे हुए कार्ड पर अपने मित्रों, सम्बन्धियों अथवा स्कूल कालिज की लायब्रेरियों के नाम और पते लिखकर तथा उन से तीन तीन रुपये लेकर हमें १५) का मनी आर्डर भेजें। यदि वेद प्रकाश परिवार का प्रत्येक सदस्य इस कार्य में मेरा सहयोग दे तो इस वर्ष ही 'वेद प्रकाश' की सदस्य संख्या ५ सहस्र हो जायेगी। यदि इस वर्ष ५ सहस्र सदस्य हो जायें तो 'वेद प्रकाश' की पृष्ठ संख्या में वृद्धि के अतिरिक्त न्यूज प्रिंट की बजाये यह बढ़िया सफेद कागज पर छपना प्रारम्भ हो जायेगा ऐसा मैं अपने पाठकों को विश्वास दिलाता हूँ।

पाठक गण! अब बातें करने का समय गया। अब तो कुछ करके दिखाने का समय है। लंगर लंगोट कस लीजिये और कार्य क्षेत्र में कूद

जाइये। ५ ग्राहक बनाना कोई कठिन कार्य नहीं है। महर्षि के द्वारा प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्तों और मन्तव्यों को घर घर पहुँचाने के लिये कुछ न कुछ त्याग और बलिदान तो करना ही पड़ेगा।

जितनी ग्राहक संख्या बढ़ेगी पत्र उतना ही श्रेष्ठ बनेगा। साप्ताहिक हिन्दुस्तान अथवा धर्मयुग आदि पत्रों में जो लेख छपते हैं उन के लेखकों को पारिश्रमिक दिया जाता है आर्य समाज के जितने भी पत्र निकलते हैं वे विद्वानों को पारिश्रमिक नहीं दे सकते। यदि आर्य विद्वानों को भी कुछ पारिश्रमिक दिया जाये तो हम जहां अपने विद्वानों का मान करेंगे वहां पत्र का स्तर भी निस्संदेह उठेगा ही। बन्धुओ! क्या आप नहीं चाहते कि आर्य विद्वानों का मान और सम्मान हो। वेद प्रकाश की ग्राहक संख्या ५ सहस्र होते ही हम विद्वानो को परिश्रमिक देना भी प्रारम्भ कर देंगे।

ग्राहक संख्या बढ़ने पर वेद प्रकाश के विशेषांक और भी अधिक प्रामाणिक और उपयोगी बन सकेंगे। पाठकों की विशेष मांग और आग्रह पर हम इस वर्ष अक्टूबर में 'ब्रह्म कुमारी अंक' दे रहे हैं। इस अंक की सामग्री संग्रह के लिये कम से कम एक मास के दौरे और २५०) की आवश्यकता है। पूना और बम्बई जाकर ओम् मण्डली का इतिहास प्राप्त करना है। एक बार आबू पर्वत पर भी जाना होगा और भी अनेक स्थानों तथा इनके अड्डों पर जाने से ही सामग्री एकत्रित हो सकेगी इस कार्य के लिये धन की आवश्यकता तो है ही। इनका साहित्य भी खरीदना पड़ेगा। 'वेदप्रकाश' पत्र द्वारा इतनी आय नहीं होती कि एक अंक के लिये ही २५०) खर्च किया जा सके। ये कार्य तो तभी हो सकते हैं जब 'वेद प्रकाश' की सदस्य संख्या पर्याप्त मात्र में बढ़े। पाठक गण कह सकते हैं कि इस काम के लिये चन्दा किया जा सकता है। परन्तु पत्र संचालकों को चन्दा इकट्ठा करना न शोभा देता है और न यह पत्रकारिता का धर्म है। इस का तो एक ही उपाय है और वह है 'वेद प्रकाश' की ग्राहक संख्या में वृद्धि। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि वेद प्रकाश के सदस्य मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान देकर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए इस शुभ कार्य में सहयोग देंगे।

ग्राहकों से यह भी निवेदन है कि अपना मनीआर्डर भेजते समय कूपन पर अपना पूरा पता तथा ग्राहक नम्बर लिखना न भूलें।

क्षमा याचना:—

आर्य महासम्मेलन समीक्षाङ्क को लेकर कुछ लोगों ने जो गुट बन्दी में सम्मिलित हैं मुझे धमकी भरे पत्र लिखे हैं और क्षमा मांगने के लिये लिखा है। अलग अलग सभी पत्रों का उत्तर देना कठिन होता है अतः

'वेद प्रकाश' के द्वारा एक बार पुनः मैं पूर्ण शक्ति के साथ कह देना चाहता हूं कि मैंने जो कुछ लिखा है जहां तक मेरी जानकारी है वह सत्य है उस में एक भी बात असत्य नहीं हैं न मैंने बातों को तोड़ मरोड़कर लिखा है अतः क्षमा मांगने का प्रश्न पैदा ही नहीं होता। मेरी गलती होती तो मैं तुरन्त क्षमा मांग लेता परन्तु जब मैंने गलती की ही नहीं तो क्षमा किस बात की ? रही भविष्य की बात कि आगे इस प्रकार के लेख न लिखूं उस के लिये मैं यह कहना चाहता हूँ कि मैं आर्य समाज के सिद्धान्तों को अकाट्य अभेद्य, अक्लेद्य और अछेद्य मानता हूँ मैं जीवन पर्यन्त आर्य समाज के सिद्धान्तों का मण्डन करता रहूँगा परन्तु व्यक्तिगत रूप में जो लोग आर्य समाज की पीठ में छुरा घोंपेंगे चाहे वह चक्रवर्ती सम्राट् ही क्यों न हो हम निरन्तर उन की समालोचना करते रहेंगे।

कुछ व्यक्तियों का ऐसा विचार है कि अपने नाम को चमकाने के लिये यह लेख लिखा था। सोचने वाले जो चाहें सोच सकते हैं और जैसा चाहें अर्थ लगा सकते हैं परन्तु मैंने यह लेख पाठकों तक वास्तविकता पहुँचाने के लिये और महर्षि दयानन्द के निम्न शब्दों से प्रेरित होकर लिखा था:—

"मनुष्य उसी को कहना कि मनन शील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् भी हो तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे।"

हार्दिक बधाई:—

२५ जून को सार्वदेशिक सभा का निर्वाचन हुआ। प्रधान पद के लिये तीन नाम आये। स्वामी ध्रुवानन्द जी, श्री पूर्णचन्द जी और श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री। शास्त्री जी ने स्वामी जी के पक्ष में अपना नाम वापस ले लिया परन्तु श्री पूर्ण चन्द जी ने कहा कि "मेरे सामने बाधाएं हैं कठिनाइयां हैं अतः मैं नाम वापस नहीं ले सकता।" परिणाम स्वरूप मत गणना हुई और स्वामी जी बहुमत से प्रधान चुन लिये गये।

स्वामी जी के चुनाव के पश्चात् शेष मन्त्री मण्डल के चुनाव का अधिकार स्वामी जी को सौंप दिया गया स्वामी जी ने दल बन्दी को तोड़ कर निष्पक्ष मन्त्रीमण्डल का निर्माण किया इस पर 'वेदप्रकाश' उन्हें हार्दिक बधाई देता है और आशा करता है कि वे अपने सत्प्रयत्नों से आर्य समाज में आई इस दल बन्दी को दूर करेंगे।

मन्त्रिमण्डल इस प्रकार है:—

प्रधान.—स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज, उपप्रधान सर्वश्री प्रतापसिंह शूरजी, डा० डी० राम, मेहरचन्द जी धीमान, मन्त्री श्री बाबु कालीचरण जी आर्य, उपमन्त्री श्री क्षितीज जी वेदालंकार तथा श्रीमती शकुन्तला गोयल पुस्तकाध्यक्ष श्री रघुवीरसिंह जी शास्त्री।

जब चित्र ने घृणा से मुख फेर लिया:—

आर्य महा सम्मेलन की भव्य शोभा यात्रा वेदप्रकाश कार्यालय के सामने से होकर निकलनी थी अत: श्री विजयकुमार जी ने अपनी दुकान के समक्ष एक ओर शीतल जल की प्याऊ लगवा दी और ऊपर एक शामयाना तनवा दिया। शामयाने के नीचे आर्य नेताओं और महापुरुषों के चित्र थे। चित्रों का मुख घण्टा घर की ओर था जिस तरफ से जलूस आना था। जलूस आने से कुछ देर पहले ऋषि दयानन्द का चित्र पलट गया और उस का मुख दूसरी ओर हो गया। जलूस में सम्मिलित नर नारी उस उलटे चित्र को देखते थे तो कौतुहल होता था। अनेक व्यक्तियों ने जिन्होंने ओम् ध्वज हाथ में उठाये हुए थे, ध्वज से उस चित्र को उलटने का प्रयत्न किया परन्तु चित्र नहीं घूमा और नहीं घूमा। जब सारा जलूस निकल गया और अन्तिम ट्रक में बैठने वाले एक व्यक्ति ने उसे हिलाया तो चित्र पलट गया और उस का मुख पुन: घण्टा घर की ओर हो गया। श्री पं० सुरेन्द्र जी शर्मा इस दृश्य को टकटकी लगा कर बड़े ध्यान पूर्वक देख रहे थे। जब उन्होंने मेरा ध्यान उस ओर आकर्षित किया तो मेरा ध्यान सत्यार्थ प्रकाश की इन पंक्तियों पर गया—

"प्रश्न—मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है? उत्तर—विद्यमान रहता है। प्रश्न—कहां रहता है? उत्तर—ब्रह्म में। प्रश्न—ब्रह्म कहां है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है? उत्तर—जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्त जीव अव्याहत गति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं, विज्ञान आनन्द पूर्वक सर्वत्र विचरता है।"

सत्यार्थ प्रकाश नवम समुल्लास २८ वीं आवृति पृष्ठ १४८

इसकी व्याख्या करते हुए इसी समुल्लास में ऋषिवर फिर लिखते हैं:—

"वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वछन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के साथ मिलता, सृष्टि विद्या को क्रम से

देखता हुआ सब लोक लोकान्तरों में अर्थात् जितने ये लोक दीखते हैं और नहीं दीखते उन सब में घूमता है।" वही पृष्ठ १५७

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि जिस समय जलूस निकल रहा था तो स्वामी जी महाराज की मुक्त आत्मा देहली नगरी में ही विद्यमान थी और जब उसने इस भव्य किन्तु आर्यत्वहीन जलूस को निर्जन मार्गों से निकलते देखा तो उन्हें एक वेदना हुई और महर्षि के चित्र ने भी मानो उस वेदना को प्रकट करने के लिए अपना मुख फेर लिया। —विद्यार्थी

पाठकों के उद्गार:—

सम्मेलन के सम्बन्ध में हमने जो कुछ लिखा था मेरे अकेले के ही ऐसे विचार नहीं हैं हमारे पास जो अनेक पत्र आये हैं उनसे पाठकों को पता लगेगा कि जनता के क्या विचार हैं अनेक पत्रों में से कुछ एक के मुख्य अंश यहां दिये जाते हैं—

आपने कोई भी बात असत्य नहीं लिखी। यही नहीं आपने तो और भी घटनाएं छोड़ दी हैं। —श्री रामसिंह जी एम० ए० लखनऊ।

आपने अत्यन्त स्पष्ट वादिता से काम लिया है। वस्तुतः सम्मेलन के आयोजकों ने अपने पत्रों में उसकी सफलता के ढोल पीटने शुरू कर दिये हैं। आपने तो कमाल की समीक्षा लिखी है।

—श्री भवानी लाल जी भारतीय एम० ए०

आपकी पत्रिका वेद प्रकाश प्राप्त हुई पढ़ी देखी और रह-रह कर विचार किया कि मेरे ही विचारों के अनुरूप यह कौन व्यक्ति कमर कस कर निर्भीकता से भगवान् दयानन्द की इस आर्य समाज पर दया कर उसके उद्धार हेतु कटिबद्ध हुआ है। —श्री बनवारी लाल जी आर्य

आपने वेद प्रकाश के आर्य समाज समीक्षांक में जिस योग्यता एवं सुस्पष्ट रूप से आर्य समाज के नेता व अधिकारीगणों का वास्तविक दिग्दर्शन कराया है वह अत्यन्त उपयुक्त है।......इस लेख को लिख कर आपने ऋषि के उद्देश्यानुसार मानवता का परिचय दिया है।

—श्री तुकाराम आर्य, गुलबर्गा

इस प्रकार के लेख, वक्तव्य सद्भावना पूर्वक लिखते रहें जिससे कि आर्य जनता को उद्बोधन मिले। —श्री वैद्य अमरनाथ शास्त्री

आर्य महा सम्मेलन समीक्षांक पढ़कर यही कहना पड़ेगा कि आप जैसे ऋषि भक्तों की ही आज आवश्यकता है। —श्री वेदमित्र ठाकुर भोलाव

आपका धैर्य प्रशंसनीय है आप दयानन्द के सच्चा निडर सिपाही हैं।

—शान्तिप्रिय हैदराबाद।

स्वामी नित्यानन्द जी का व्यक्तित्व

इस लघु लेख में स्वामी नित्यानन्द जी के जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी न कह कर उनके व्याख्यानों के सम्बन्ध में ही कुछ प्रकाश डालना है।

स्वामी जी संस्कृत और अङ्ग्ल भाषा के असाधारण विद्वान् थे। आप के भाषण इतने रोचक मनोहर और विद्वत्ता पूर्ण होते थे कि उन्हें सुनकर कट्टर विरोधी भी स्वामी जी का लोहा मान कर उन की प्रशंसा के गीत गाते थे। हैदराबाद दक्षिण में स्वामी जी के अनेक विषयों पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए। इसी व्याख्यान माला के अन्तर्गत एक दिन मद्रास के प्रसिद्ध पौराणिक श्री कृष्ण आयंगर जी सभापति बनाये गये। स्वामी जी के व्याख्यान को सुनकर वे हर्ष विभोर एवं पुलकित हो गये और अपने सभापति पद से बोलते हुए उन्होंने कहा—

"मैं सुनता था कि हजारों में एक पण्डित होता है किन्तु श्री ब्रह्मचारी जी तो लाखों में एक हैं।"

इसी प्रकार १४ सितम्बर १८९४ को 'मनुष्य जन्म की सार्थकता' विषय पर उनके भाषण को सुनकर सरोजनी नायडू के पिता डा० अघोर नाथ चटोपाध्याय ने कहा—

"ब्रह्मचारी जी महाराज का उपदेश इतना सरल सुबोध और सारगर्भित है कि मैं उसकी वास्तविक सराहना करने को उपयुक्त शब्द नहीं पा रहा हूँ।"

बम्बई के पत्रों ने तो स्वामी जी के व्याख्यानों और उनके अगाध पाण्डित्य से प्रभावित होकर उनके कार्टून भी निकाले थे १४ अगस्त १८९४ के 'हिन्दी पंच' ने स्वामी जी का एक चतुर्भुजाकार कार्टून प्रकाशित किया था। इस कार्टून में मुख मण्डल के चारों ओर सूर्य की किरणें चमक रही थीं। एक हाथ में वेद, दूसरे में मनुस्मृति और तीसरे में तर्कशास्त्र आदि ग्रन्थ दिये गये थे। कार्टून के नीचे लिखा था—

बम्बई के आर्यों की पूजा की मूर्ति

स्वामी नित्यानन्द जी महाराज

उपर्युक्त उद्धरणों से यह सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वामी जी कितने विद्वान् थे। इन्हीं स्वामी जी महाराज के व्याख्यानों का संकलन हम अगस्त में 'वेद प्रकाश' वृहद् विशेषांक के रूप में पाठकों की भेंट कर रहे हैं। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है 'वेद प्रकाश' के पाठक इस अलभ्य ग्रन्थ से लाभान्वित होंगे। विद्यार्थी

श्रावणीपर्व प्रचारार्थ पर आर्य विद्वानों के ट्रैक्ट मंगावें

मूल्य प्रति -), ४) सैकड़ा

मनुष्य बन
गायत्री माता
ईश्वर सिद्धि
४ आस्तिक ना० सम्वाद
५ पितृश्राद्ध विचार
६ सुख का साधन
७. ईश्वरोपासना
८ कल्याणी बन
९ आर्यों का आदि देश
० धर्म और अधर्म
१ स्वामी श्रद्धानन्द
२ तत्त्ववेत्ता दयानन्द
३ पण्डित लेखराम
४ सीता माता
१५ गो माता
१६ दयानन्द दिग्विजय
१७ चोटी का महत्त्व
१८ गुरु विरजानन्द
१९ मांस खाना छोड़ दो
२० मर्यादा पुरुषोत्तम राम
२१ देश सुधार-होली
२२ मूर्ति पूजा विचार
२३ भक्ति के लाभ
२४ आर्यसमाज के उद्देश्य
२५ वेद माता
२६ श्रद्धा माता
२७ धरती माता
२८ धर्म की रक्षा करो

२९ वैदिक सन्ध्या
३० हवन मन्त्र
३१ वेदभाष्य का महत्त्व
३२ गोपाल दयानन्द
३३ शक्तिवाद की रूपरेखा
३४ वैदिक भक्तिवाद
३५ अंग्रेजी शिक्षा से हानि
३६ सत्य की महिमा
३७ आ. स. उन्नति के साधन
३८ श्यामाप्रसाद मुकर्जी
३९ वैदिक काल में बन्दूक
४० पतिव्रत धर्म
४१ ब्राह्मण समाज मूर्तिपूजा
४२ ईश्वरोपासक दयानन्द
४३ ईश्वरावतार
४४ कर्मयोगी कृष्ण
४५ ईसाइयों का षड्यन्त्र
४६ सामाजिक व्यवहार
४७ शिक्षा का उद्देश्य
४८ ब्रह्मचर्य
४९ वर्णव्यवस्था
५० कर्मव्यवस्था
५१ वेद ज्ञान
५२ तुलसीरामायण आ. स.
५३ सत्य की खोज
५४ मुर्दा क्यों जलावें
५५ दयानन्द का उद्देश्य
५६ दयानन्द का लक्ष्य

५७ ब्राह्मण समाज मृतक श्राद्ध
५८ श्रेय और प्रेय
५९ सच्ची पूजा
६० झांसी वाली रानी
६१ महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त
६२ जीवन की समस्यायों का समाधान
६३ देवताओं की कहानी
६४ रोटी और कपड़ा
६५ धूम्रपान
६६ सिनेमा और हम
६७ दयानन्द कौन
६८ कृण्वंतः स्वयमार्यम्
६९ चाय भयंकर विष
७० मुझे मेरा धर्म क्यों प्यारा है
७१ ईश्वर सब जगह है
७२ ईश्वर में अविश्वास क्यों
७३ चरित्र निर्माण
७४ यज्ञोपवीत महत्व
७५ सूर्य और चन्द्र ग्रहण
७६ नास्तिकों को सन्देश
७७ वैदिक धर्म ही क्यों
७८ विद्यार्थी और सदाचार
७९ दयानन्द की महानता
८० आर्य क्यों बने ?
८१ श्राद्धमीमांसा

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क देहली ।

आर्यं समाज आत्मनिरीक्षण करें

[लेखक—दिलीप विद्यालंकार]

—:oo:—

वस्तुतः हमारे उत्सव एवं सम्मेलन हमारे संगठन, उत्साह एवं प्रगति के सूचक हैं, हमारी शक्ति के प्रतिबिम्ब हैं। इसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस प्रकार के धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्मेलन मानव समाज में नई चेतना और उत्साह की एक लहर फैला देते हैं। विश्व कल्याण एवं विश्व शांति के लिये कटिबद्ध आर्य समाज का महासम्मेलन अभी २ पिछले मास समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। उसमें उपस्थित आम जनता के असीम उत्साह को देखकर जितनी प्रसन्नता हुई उससे अधिक नेताओं के पारस्परिक असङ्गठन एवं कलह को देख कर दु:ख हुआ। जिस सांस्कृतिक संगठन का (आर्य समाज का) विश्वभर की सामाजिक संस्थाएं लोहा मानती हैं, जिसके प्रभाव व शक्ति से देश के राजनैतिक दल भी घबराते हैं, उसकी आज यह अवस्था ? सचमुच "इस घर को आग लग गई, घर के चिराग से"।

जो आर्य समाज विश्व का संगठन करने की बात करता है, कांग्रेस के परिष्कार की योजना बनाता है, जो आर्य समाज हिन्दू जाति के असंगठन पर आंसू गिराता है वह आर्यसमाज आज खोखला हो रहा है। हमारे सम्मेलन और हमारे उपदेश मानव जाति का कल्याण करेंगे विश्व को शान्ति का सन्देश देंगे पर नगर २ तथा गांव २ में आर्य समाजों में जो फूट का विष फैल रहा है उसकी चिकित्सा हमारे पास नहीं है ? विश्व शान्ति एवं विश्व कल्याण का मन्त्रदाता आर्य समाज आज जन-दृष्टि में हास्यास्पद बन रहा है। आर्यं समाज की कार्यशक्ति तथा धनशक्ति निर्माण की अपेक्षा परस्पर संहार में लग रही है हां, आर्यों को निराश होने की आवश्यकता नहीं है। इसका निदान हमारे पास ही हैं। हम आत्म निरीक्षण करें और निष्पक्ष भाव से तद्वत् आचरण करें। यह स्पष्ट है कि यदि हम चाहते हैं कि सामान्य लोग संगठित हों, नैतिक बल से युक्त हों और निस्वार्थ सेवी हों तो सर्वप्रथम समाज के नेताओं को भी वैसा ही बनना पड़ेगा।

महाभारत में एक स्थान पर कहा है कि धर्म शास्त्रों के चक्कर में न पड़कर सामान्य व्यक्ति के लिये कर्त्तव्य जानने का एक यह भी मार्ग है कि "महा जनो येन गतः स पन्थाः" अर्थात् सामान्य मनुष्य अपने से ऊंचे दर्जे के मनुष्यों को जो कुछ करते देखता है, उसी को धर्म मानकर वैसा ही करने लगना है। गीता में ठीक ही कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥गीता ३।२१॥

आज आर्य जगत् में नेतृत्व का प्रश्न वस्तुतः अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आर्य समाज का सर्व सम्मत नेता कौन ? इस प्रश्न का उत्तर देना बड़ा ही कठिन है। एक समय था हमारे अन्दर चोटी के सर्वमान्य नेता थे। परन्तु आज हमारा नेतृत्व सस्ता एवं दलबन्दी-प्रधान हो गया है। तपस्वी, कर्मठ एवं सत्यनिष्ठ व्यक्तियों के स्थान में चुनावों में धांधलेबाजी कर सकने वाले, जिनका जीवन प्रभावशून्य है, वे भी आय समाज का नेतृत्व ग्रहण करने की आकांक्षा कर आर्यसमाज के महत्व एवं गौरव को घटा रहे हैं।

यह सर्वविदित है कि महर्षि ने समाज का संगठन निर्वाचन पद्धति पर किया था। परन्तु आज हमारे निर्वाचन में धार्मिकता तथा सिद्धान्तवाद को कोई स्थान नहीं रहा है। यही कारण है कि आज (इस अवस्था में भी) अनेकों आर्यसमाजी विद्वान् और वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध दूरदर्शी आर्य यह सोचकर मौन हैं कि—"दर्दु रा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि शोभनम्।"

इतना ही नहीं आज हमारे प्रचार में पहले जैसा प्रभाव नहीं प्रतीत होता है आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानन्द ने आज से ८५ वर्ष पूर्व की थी। इन दशाब्दिओं में आर्य समाज के सामान्य सदस्य एवं क्रियात्मक सदस्यों की संख्या में क्या सन्तोष जनक वृद्धि हुई है ? अवश्य हुई है, इसमें कोई विवाद नहीं है। किन्तु वृद्धि की उस गति में आज पर्याप्त शिथिलता (मन्दता) आ गई है इ १ प्रत्येक आर्य अनुभव करता है। आर्य-समाज की ओर पहले समय में जिस प्रकार नवयुवक आकृष्ट होते थे, वह स्थिति आज नहीं रही। यदि नवयुवक हमारे समाज की ओर आकृष्ट नहीं होते तो वर्त्तमान वृद्ध महानुभानों की अनुपस्थिति में आर्यसमाज समाप्त हो जायेगा। यह भी सर्व विदित है कि आर्य समाज में विद्वत्ता का स्तर भी निरन्तर गिरता जा रहा है। वर्तमान पीढ़ी के विद्वानों की विद्वत्ता में भी (अपवाद को छोड़कर) पुराने विद्वानों के समान शास्त्रविषयक मौलिक ज्ञान का अभाव है। स्वाध्याय और प्रवचन की प्रवृत्ति हममें से लुप्त होती जा रही है। निर्वाचनों में विजयी होने का बाहरी आडम्बर प्रबल होता जा रहा है।

यह अवस्था है आज आर्य समाज की। इसका निराकरण हमारे पास ही है। हमें केवल छिद्रान्वेषी न बन कर गुणग्राही बनना होगा। ईर्ष्या और द्वेष को छोड़ कर संगठित होना होगा और प्रतिदिन पाठ किये जाने वाले सन्ध्या के उस मन्त्र का (योस्मान् द्वेष्टि........) गम्भीरतापूर्वक मनन करना होगा। यह स्मरण रखना होगा कि वही व्यक्ति दूसरे को संगठन का उपदेश दे सकता है जो स्वयं संगठित हो।

ये सब बातें दोष-दर्शन के उद्देश्य से नहीं किन्तु वर्त्तमान अवस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर आर्य जनों को आत्मनिरीक्षणार्थ जागृत करने के हेतु लिखी गई हैं। आशा है आर्य समाज के विद्वान् एवं प्रेमी इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे।

यज्ञ चिकित्सा

(YAJ NOPATHY)

[लेखकः—डाक्टर सोभराज के० आर्य]

पहले लेख में आप ने पढ़ा कि मैं यज्ञ चिकित्सा को और सब तरीकों (Systems) से रोगों को सदा के लिये नाश करने का सर्वोत्तम तरीका क्यों मानता हूं। अब हमें ये देखना है कि रोग होते क्यों हैं और उनको नष्ट करने में यज्ञ चिकित्सा क्या सहायता प्रदान करती है।

वेद जो हमारे प्राचीन सभी सत्य विद्याओं की पुस्तक और ईश्वरीय ज्ञान है, उनमें रोग उत्पत्ति के तीन कारण वर्णन किये गये हैं।

(१) **शरीर में आंतरिक विष**

(२) **क्रिमि तथा जीवाणु** (Germs)

(३) **त्रिदोष (वात-पित्त-कफ)**

यदि हम इन तीन कारणों (CAUSES) से बचे रहें तो हमें कोई भी रोग नहीं सतायेंगे।

शरीर में आंतरिक विषः—यह शरीर में हर समय उत्पन्न होता रहता है क्योंकि हम सारे दिन कुछ न कुछ करते रहते हैं जिससे हमारे शरीर के जीवाणुओं (CELLS) में टूट फूट होती रहती है वह टूटे। हुए जीवाणु बाहर निकलने चाहिये। दूसरे टूट फूट के भरने और बढ़ोतरी के लिये जो हम भोजन करते हैं उनमें से जो अंश शरीर के अन्दर ख़प सकते हैं वह रक्त हड्डी मांस आदि बन जाते हैं शेष जो मल रह जाता है वह भी बाहर निकलना चाहिए। यदि ये दोनों टूटे फूटे अंश और मल पूर्णतः बाहर नहीं निकलते तो शरीर के अन्दर इकट्ठे होते रहते हैं और समय पाकर विकार पैदा होता है। जो रोग का कारण बन जाता है।

शरीर से विष तीन मार्गों से बाहर निकलता है।

(१) मलः—हम जो भोजन इत्यादि करते हैं वह कई रसों से मिलता हुआ आमाशय में पहुँचते ही एक तरल पदार्थ बन जाता है जिसको **"केलोस"** कहते हैं बाकी जो ठोस पदार्थ रह जाता है वह आंतों द्वारा मल के रूप में निकल जाता है। इसी कारण हमारी आंतें बहुत मुलायम और चिकनी होती है जिससे वह ठोस पदार्थ गुजरते समय कोई कष्ट नहीं होता और मल का विकास भली प्रकार होता रहता है। यदि अप्राकृतिक भोजन जैसे मांस, अण्डे, चाय, शराब, तम्बाकु आदि के खाने से हमारी आंतों में

खुरदरापन और शक्ति आ जाती है तो मल का निकास ठीक न होने के कारण अन्दर सड़ता रहता है जिससे एक तो कब्ज दूसरे वायु (GAS) उत्पन्न होने लगती है और जब वह ऊपर चढ़ती है और जिस अंग पर उसका प्रभाव पड़ता है वह अंग रोगी बन जाता है। प्रकृति रोग के द्वारा उस मल को शरीर से बाहर निकालती है।

(२) मूत्रः—आमाशय (Stomach) में भोजन से बना हुआ तरल पदार्थ **"केलोस"** जब जिगर (LIVER) में पहुँचता है तो उनको **"केमोस"** कहते हैं। यहां इन तरल पदार्थों के चार भाग होते हैं।

(क) झाग (EFFERVE SCENCE) की भांति जो सब से ऊपर रहता है जिसको **"सफिरा"** कहते हैं। इसका स्वभाव अग्नि की भांति गरम-शुष्क (HOT-DRY) होता है।

(ख) "रक्त" जो बीच में रहता है जिसका स्वभाव वायु की तरह गर्म तर (HOT-WET) होता है।

(ग) "सौदा" जो तले में रहता है जिसका स्वभाव मिट्टी की तरह सर्द शुष्क (COLD-DRY) होता है।

(घ) "बलगम" (कफ) जो ठीक नहीं पचता है जिसका स्वभाव पानी की तरह सर्द तर (COLD-WET) है।

इन चारों के अतिरिक्त जो शेष रह जाता है वह मूत्र के रूप में गुर्दों (KIDNEY) में से होता हुआ मसाने (BLADDER) में इकट्ठा होकर बाहर निकल जाता है यदि इसका निकास ठीक नहीं होता तो रोग उत्पन्न हो जाता है।

(३) (SWEAT):—जिगर (LIVER) में से बने हुए रस नाड़ियों के द्वारा शरीर में फैल जाते हैं और अंगों में पहुंचते ही फिर उनमें उफान आता जाता है और प्रत्येक अंग अपना आवश्यक भाग उसमें से ले लेता है जो शेष रहता है वह पसीने के रूप में त्वचा के रोम छिद्रों द्वारा बाहर निकल जाता है। यदि हमारी त्वचा साफ नहीं होगी तो रोम छिद्र बन्द होने के कारण पसीने के निकास में बाधा पड़ेगी जिसके कारण शरीर के अन्दर का विष नहीं निकल सकेगा जो रोग का रूप ले लेगा।

इन तीन मार्गों से आंतरिक विष यदि भली प्रकार बाहर निकलता रहे तो किसी भी रोग के होने की सम्भावना नहीं रहेगी। इस कारण **महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती** ने अपने **"सत्यार्थ प्रकाश"** में लिखा है कि मनुष्य को **यम** और **नियमों** का पालन करना चाहिये अर्थात् हमें वैर और विरोध त्याग कर सत्य मानना कहना और उस पर चलना चाहिये। काम इन्द्रियांवश में करके मन वचन और कर्म से चोरी का त्याग करना चाहिये,

कभी भी अभिमानी और लालची नहीं होना चाहिये। इन यमों का पालन करते हुये हमें शरीर से मल इत्यादि त्याग करके शुद्धता प्राप्त कर धीरज से कष्टों का सहन करते हुये पुरुषार्थी बन कर हानि-लाभ दुःख-सुख का ध्यान न करते हुये। हमें धर्म ग्रन्थ पढ़ना और पढ़ाना चाहिये तथा अपनी आत्मा को विशेष प्रार्थना तथा "हवन यज्ञ" द्वारा ईश्वर के आधीन करना चाहिये। जब हम इन बातों पर चलने लगेंगे तो हमारा वात संस्थान (NERVOUS SYSTEM) जाग्रत होगा जिससे आंतरिक विष का बराबर निकास होता रहेगा और हमारी रोग निवारक शक्ति (IMMUNITY) बढ़ जायेंगी।

आंतरिक विष के निकास में रुकावट क्यों होती हैं।

(१) जब हम प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर विषय भोग और अप्राकृतिक भोजन जैसे, मांस, अंडे, तम्बाकु, चाय, मदिरा आदि का प्रयोग करते हैं तो हमारा वात संस्थान (NERVOUS SYSTEM) कमजोर पड़ जाता है जिससे विष का निकास ठीक नहीं होता।

(२) विदेशी औषधियां और टीके हमारे शरीर से रोग को निकालने के स्थान पर रोग को दबा कर और रोगों को उत्पन्न करते हैं। और वात संस्थान को ऐसा निर्बल कर देते हैं कि कई रोग जैसे छाती की खरखराहट, दमा, हृदय शूल (CARDIAC OPPRESSION) और हृदय की धड़कन (PALPITATION) जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं फिर और कोई औषधी उन पर प्रभाव नहीं करती और रोगी सदा के लिये रोग युक्त रहता है। अतः हमें इन कारणों से बचना चाहिये और **यम नियमों** का पालन करते हुये नीचे लिखी **"हवन सामग्री"** से **"हवन यज्ञ"** करके लम्बे-लम्बे सांस लेने चाहिएं इससे हमारी वात संस्थान जाग्रत रहेगी और पहला कारण आंतरिक विष बराबर निकलता रहेगा।

हवन सामग्रीः—

सतावरी, अगर, तगर, चन्दन श्वेत, पुष्प गुलाब, गूगल, जटामासी, छार छरेला, प्रत्येक दो दो भाग।

बड़ी इलायची, जौ, तिल प्रत्येक एक भाग केसर एक चौथाई भाग।

इन सब वस्तुओं को कूट कर रख देना चाहिये और प्रतिदिन प्रातः तथा सांय आम, ढाक, प्लास तथा पीपल की सूखी लकड़ी जलाकर उसमें ऊपर बताई हुई हवन सामग्री में से थोड़ा सा भाग लेकर देसी घी तथा देसी खांड मिश्रण कर आहुति देना चाहिये। [चेचक और जुकाम के लिये सामग्री वेदप्रकाश कार्यालय से मुफ्त, अपना पता लिखा टिकट लगा लिफाफा भेज कर मंगा सकते हैं।] इसके बाद ऊपर से दूध तथा संतुलित भोजन (BALANCED IET) करना चाहिये।

॥ ओ३म् ॥

पं० माधवाचार्य की एक सहस्र रुपये की शर्त की भ्रांति

[विश्वनाथ आर्योपदेशक धर्मशिक्षक डी. ए. वी. नारंग इन्टर कालिज घुघली, गोरखपुर]

पं० माधवाचार्य दोबार यहां घुघली में आये। उनके व्याख्यान सुने वार्त्तालाप और शास्त्रार्थ भी हुआ। इनके व्याख्यान आदि का पौराणिक जनता पर बड़ा प्रभाव होता है। इसके तीन कारण हैं—(१) आर्य समाज और पौराणिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अत्यन्त भ्रान्ति, (२) आर्य समाज और महर्षि दयानन्द पर घृणित व्यंग पूर्ण कटाक्ष, (३) अभिनय पूर्वक भाषण। कुत्तों के लड़ने का दृष्टान्त दिया तो साष्टांग दण्डवत् प्रणाम की बात कही तो टांगे पसार दीं। साम्प्रदायिक राजनैतिक कोई भी व्याख्याता हो, उसके अभिनय में थीएटर के विदूषक के पार्ट का सा दृश्य होता है, अतः जनता मुग्ध होकर श्रवण करती है। हमारे एक व्याख्याता स्त्रियों के शोकातुर रूप के छाती पीटने का दृश्य उपस्थित करते, तो स्वयं उसी प्रकार सिर छाती और जंघा पर हाथ मारने लगते, तो लोग हंसते हुए लोट पोट हो जाते।

परन्तु विद्वान् इन बातों को अच्छा नहीं समझते। सनातन धर्म की इस सभा (२१-२२-२३ अप्रैल ६१) के सभाध्यक्ष श्री बालवोध शास्त्री लेबर आफिसर थे। उन्होंने मेरी उपस्थिति में यहां के एक पौराणिक पंडित से कहा कि मैं आर्य समाज के अधिक निकट हूँ और पं० माधवाचार्य जी यद्यपि एक विद्वान पुरुष हैं; परन्तु उनके कटाक्षों को मैं उचित नहीं समझता।

पंडित माधवाचार्य की भ्रान्तियां लिखने के लिए तो एक पुस्तक चाहिए। आपकी शर्त का मिथ्यात्व सिद्ध करने से पूर्व एक उदाहरण दिया जाता है।

उदीर्ष्वं० ऋ० १०-१८-८ पर सायण भाष्य का अर्थ हैं। हे नारी तू इस मृत पति के पास लेटी है। इस पति के समीप से उठ और जीवन को उपलक्ष्य करके आ। पाणिग्रहण करने वाले पुनर्विवाह के इच्छुक इस पति की भार्या बन।

पति के मृत्यु समय शोकातुर स्त्री को तत्काल पुनर्विवाह की प्रेरणा महर्षि दयानन्द को घृणित और लज्जा युक्त प्रतीत हुई अतः आपने उपशेषे (तू लेट रही है) को क्रिया पद न मान कर संज्ञापद कह निम्न अर्थ किया।

हे विधवे तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (शेषे) बाकी पुरुषों में से जीते हुए दूसरे पति को प्राप्त कर। सत्या० समु० ४॥

इस अर्थ के अनुसार जैसा कि स्मृतिकारों का मत है मृत पति के छै मास, १ वर्ष पश्चात् पुनर्विवाह अथवा नियोग के लिए कहा जा सकता है।

जब मैंने पं० माधवाचार्य का इधर ध्यान दिलाया तो उत्तर दिया कि कवि कालीदास के कथनानुसार एक पतिव्रता स्त्री की यही इच्छा होती है कि अगले जन्म में भी मेरा यही भर्त्ता हो। सायण के पुनर्विवाह का यही अर्थ है। परन्तु अगले जन्म की बात न मन्त्र में है न सायण भाष्य में अगले जन्म में पति पत्नी ने अपने कर्मों का फल भोगना है। न जाने उनका कहां २ किस २ योनि में जन्म हो। वादी तोष न्याय से यदि यह मान लिया जावें, तो अगले जन्म का विवाह पुनर्विवाह नहीं कहलाता। इन बातों का उत्तर आपके पास नहीं था। शोक है कि इस मिथ्या धारणा से सहस्रों विधवा विधर्मियों के चुंगल में जाती हैं। वैश्या और व्यभिचारणी बनती हैं परन्तु इन्हें तो खीर हलवा चाहिये जाति जाये भाड़ में !

मैंने कहा सत्यार्थप्रकाश में लिखे मन्त्रार्थ में इस शब्द से आपने सायण का घृणित अर्थ महर्षि दयानन्द पर थोपने के लिए मूर्ख एम० ए० बी० ए० अध्यापकों का हाथ खड़ा कराया, परन्तु इस (एतत्) तो भूतकालिक व्यक्ति के लिये भी प्रयुक्त होता है। यथा महाभारत में।

आत्मनः सप्तमो राजानिर्ययौ गजसाह्वयात्। पौरैरनुगतो दूरंसर्वैरन्तः पुरैस्तथा। न चैनमशकत् कश्चिन्निवर्तस्वेति भावितुम्।

पं० माधवाचार्य ने इसका उत्तर दिया कि "एनम्" यहां अन्वादेश है। अब इन से पूछा जावे कि क्या अन्वादेश में कुछ और अर्थ ही जाता है? यहां तो केवल रूप में थोड़ा सा अन्तर होता है। "पुनरूपादान मन्वा देशः" परन्तु संस्कृत न जानने वाले श्रोता तो कहते होंगे। न जाने कितना विद्वत्ता पूर्ण उत्तर दिया गया। यद्यपि अन्वादेश के बिना भी शतशः प्रमाण मिलते हैं यथा सहदेव के लिये कहा। **आत्मनः सदृशं प्राज्ञं नैषोऽमन्यत कंचन।**

अब यहाँ पर एक सहस्र रुपये की शरत पर विचार किया जाता है, जिसकी घुघली की उत्सव पर भी घोषणा की गई। कि स्वामी दयानन्द ने

[शेष पृष्ठ ४६५ पर]

वैदिक धर्म का विस्तृत क्षेत्र

[लेखक—विद्यार्थी भारतेन्दु "विमल" व्याकरणोपाध्याय
आर्ष गुरुकुल एटा]

—❀❀❀—

जब हम किसी भी मत की ओर दृष्टिपात करते हैं व उसके सिद्धान्तों का अवलोकन करते हैं तो उसके मूल में अत्यधिक संकुचित भावनाओं का समावेश हुआ पाते हैं। कारण यह है कि विश्व के सम्पूर्ण मत मतान्तर किन्हीं तुच्छ व्यक्तियों के विचारों की ग्रन्थि बद्ध पोटली हैं। किन्तु किंचित् विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ऐसा होना स्वाभाविक है, यतोहि मत एवं तदवलम्बी व्यक्ति यदि विशाल क्षेत्र बनाते तो धर्म और मतों में विशेषता क्या थी ? धर्म एवं मत के मध्य जो विभिन्नता है वह इन सरल-सुबोध शब्दों में विस्पष्ट है कि धर्म वह है जो कि ईश्वर की आज्ञा है एवं सार्वभौम है तथा जिसका कोई विरोधी न हो। किन्तु तद्विपरीत सिद्धान्त ही मतों में दृष्टिगोचर होते हैं जो कि समय २ पर किन्हीं व्यक्ति विशेषों द्वारा अपना गुरुडमवाद प्रचलित करने के लिये प्रवर्तित होते हैं। वैदिक धर्म सर्वत्र अपना विशाल क्षेत्र रखता है। वेद में जहां कहीं भी विनय है वह सारे विश्व के कल्याणार्थ हैं एवं सामूहिक रूपेण है। अन्यत्र भी हमारे सभी सिद्धान्त एवं विनय सामूहिक रूप से एवं विश्व कल्याणार्थ ही दृष्टिगोचर होंगें। यथा—"धियो यो नः प्रचोदयात्" अर्थात् "हमारी बुद्धियों को सत्प्रेरणा करे" यहां भी नः बहुवचन में प्रयुक्त हैं, "शन्नोअस्तुद्विपदेशं चतुष्पदे" अर्थात् हम दो पैर वालों के लिये एवं चार पैर वालों अर्थात् पशुओं में लिये ईश्वर कल्याण करे; "अन्नस्य नो देहि" हम सब को अन्न का दान कर, और भी जहां इस प्रकार प्रार्थना की गई है सर्वत्र सामूहिक-रूप ही दृष्टिगोचर होता है। किन्तु अन्य मतों को देखने से यह पता चलता है कि उनका निर्माण केवल मात्र विश्व में क्रान्ति का प्रसार करने के लिए एवं दूसरों को पीड़ा देने के लिये हुआ है। कुरान केवल मुसलमानों के लिये है, हम लोग उसकी दृष्टि में काफिर हैं। बाइबिल में भी यीशु मसीह ने यह सन्देश प्रसारित किया है कि मैं पुत्र को पिता से, पिता को पुत्र से, माता को बेटी से, बेटी को माता से पृथक् कराने के लिये आया हूँ न कि विश्व में शान्ति स्थापित करने। कहां तक बतलावें सर्वत्र यही लीला है किन्तु ईश्वर वेद में कहता है कि—"इमां वाचं कल्याणी मावदानी जनेभ्यः

शूद्राय चार्याय च स्वायं चारणायच'' अर्थात् ''मैं इस कल्याणमयी वेदवाणी का उपदेश विश्व के मानवमात्र के लिये करता हूं''। अन्यत्र भी ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'' कहा है न कि ''कृण्वन्तो स्वमार्यम् या ''कृण्वन्तो देशमार्यम्'' नहीं कहा।

कहां तक तुलना करें ? जहां कि अन्यत्र यह प्रार्थना है सुवह की रोटी सुबह और शाम की रोटी शाम दे वहां वैदिक प्रार्थना है ''सर्वे भवन्तु सुखिन:''। आधुनिक काल में भी आर्य समाज अपने विस्तृत विशाल उद्देश्यों को लेकर विश्व कल्याणार्थ अग्रसर हो रहा है। आर्य समाज का सिद्धान्त आज भी विश्वकल्याणार्थ है। आर्य समाज का छठा नियम है संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। इसी प्रकार नवाँ नियम है ''प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये''। किञ्चित् विचार कीजिये जिस संस्था का गौण नहीं अपितु मुख्य उद्देश्य ही संसार का उपकार करना है उसकी समता विश्व के तुच्छ मतमतान्तर क्या कर सकेंगे। कभी न कभी वह दिन अवश्य आयेगा जब कि सारा संसार हमारी संस्कृति एवं सत्य वेदोक्त सार्वभौम वैदिक धर्म को अपनायेगा और इसी में विश्व कल्याण निहित है॥

[शेष पृष्ठ ४६३ का]

प्रह्लाद की कथा में भागवत के नाम से लिखा है नारायण ने उस खम्वे पर छोटी २ चींटियों की पंक्ति चलाई। यह चीटियों का चलाना जो भागवत् से निकाल दे, उसे एक सहस्र रुपया दिया जायेगा। हमारा उत्तर यह है कि भागवत १८००० श्लोकों का कहा गया है। परन्तु आजकल मिलने वाले भागवत के पुस्तको में जैसा कि क्षेमराज कृष्णदास वोम्वे वालों ने लिखा है। १६००८ श्लोक और उवाच १२६७ मिलते हैं। अत: पूरा भागवत ला दो तब आप ऐसी चुनोति दे सकते हैं। यह तो ऐसा ही है कि किसी ने एक सेठ के पास एक सहस्र रुपया जमानत रखा। बही पर लिख दिया गया। वर्ष के पीछे जब रुपया मांगा, तो सेठ ने वह वरक बही से निकाल दिया और उसे कहा इस बही पर कहीं लिखा दिखा दो तो रुपया ले लो ?

परन्तु एक जिज्ञासु पूछ सकता है कि इस बात का क्या प्रमाण है कि छूटे हुए श्लोकों में यह कथा थी। इसका उत्तर यह है कि अकबर के समय फैजी ने फारसी में भागवत का अनुवाद किया था। जो नवल किशोर प्रेस १८७० ई० लखनऊ में छपी है। उसमें यह कथा वर्त्तमान है।

यह कथा सर्वसाधारण को भी स्मरण है परन्तु भागवत में लिखने से रह गई।

आध्यात्मवाद बनाम भौतिकवाद

[लेखक—प्राध्यापक बा० विष्णुदयाल, एम० ए०]

—×❀×—

मेरे विकासवाद विषयक लेख उसी समय से आर्य समाज की पत्रिकाओं में छपने लगे थे जब डार्विन की प्रसिद्ध पुस्तक "उप जातियों की उत्पत्ति" की शती मनाई जा रही थी। प्रथम लेख "वैदिक डाइजेस्ट" में प्रकाशित हुआ, दूसरा "वेद वाणी" के वेदांक में और तीसरा "वैदिक धर्म" के लेख को "आर्य्य मित्र" ने उद्धृत किया।

मुझे सन्तोष हुआ जब मैंने देखा कि कुछ लेखक विकासवाद पर लिखने लगे। "आर्य्य मित्र" में एक लेखक का लेख प्रकाशित हुआ और "वैदिक धर्म" में दूसरे का

वर्तमान लेख को बहुत से पाठक उपसंहार समझ कर ही पढ़ेंगे।

कुछ प्रसिद्ध इतिहासकारों ने समय समय पर माना है कि डार्विन-वाद ने मानव को ऊंचा स्थान नहीं दिया है। उनमें से एक ने लिखा :—

"Darwinism which teaches the descent of man from monkeys, gave a great impetus to the free thinking and materialism of the present day. This theory has been the cause of much evil and unhappiness. To a certain degree man has lost respect of himself."†

उत्तम रीति से श्री कृष्णदत्तने अपने लेख में जो 'वैदिक धर्म' के मार्च अंक में दिया गया है, दर्शाते हैं कि मानव के साथ कैसे डार्विन ने अन्याय किया।

"यह समझ कर कि मानव आज का वानरों का अपत्य है, मनुष्य को अपनी महत्ता से पराङ्मुख होना पड़ा है। वेद ने मानव को प्रभु के अमृत पुत्र रूप में सम्बोधन किया है।"

कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जन्मशती के इस वर्ष में कहना चाहिए कि इस ऋषिपुत्र ने वेद का श्रेष्ठ होना सिद्ध किया जिस से विकास-वाद को इस शताब्दी में धक्का लगा। नोबल पुरस्कार गुरुदेव को क्या मिला, वह वेद और उपनिषद् को प्राप्त हुआ। फ्रांस में इसीलिये १९२५ के

†Hormsworth, "History of the World", Vol I, P. 292.

बाद उनके विरुद्ध आवाज बुलन्द की गई थी, यह पूछा गया था कि क्या अब से भूमध्य महासागर कि या यूरपीय विचारधारा विलुप्त होगी और भारतीय विचार प्रधान होंगे ?

विकासवादियों की कल्पना का मूल्य क्या है, यह श्रीकृष्णदत्त के लेख के निम्नांश से ज्ञात होगा :

पक्षियों से स्तनधारियों की उत्पत्ति—बड़ी विलक्षण कल्पना है विकासवाद की। उड़ने की वृत्ति आज मनुष्य की हो रही है। विमान विद्या में वह वर्णनातीत त्वरा से प्रगति करता हुआ आप चन्द्रलोक में पहुंच कर पाप-निदाध से संतप्त आकुल पृथिवी के लिए चन्द्रमा की सुखोदर्क शीतलता का अनुलेप उसके व्रणों पर करने का अध्ययन करने लगा है। फिर भला पक्षी उड़ने के अपने नैसर्गिक अधिकार का उत्सर्ग किस पर उपकार करने के लिये करते हैं ?"

दिनांक १२ अप्रैल को तो यूरी गगारिन नामक रूसी ने अन्तरिक्ष की यात्रा कर डाली।

अध्यात्मवादी भौतिकवादी विकासवाद को स्वीकार न करेंगे।

प्रसन्नता होती है जब देखा जाता है कि भौतिकवाद से लोग ऊबने लग गये हैं। ईसाइयत में सन्तोष प्रदान करने की शक्ति न पाकर विलायती भारतीय अध्यात्मवाद की शरण में आ रहे हैं। अभी विलायत में एक पुस्तक पढ़ी जा रही है जिसमें पुनर्जन्म की चर्चा की गई है। ग्रन्थकार अमेरिकी मानस शास्त्री डा० स्टीवन्सन के मत को स्वीकार करते हैं। इसी अमेरिकी विद्वान् से इन पंक्तियों के लेखक की चिट्ठी पत्री होती रहती है।

मौके को हाथ आते देख उससे लाभ उठाना चाहिये। लोगों की दिलचस्पी अध्यात्मवाद से हो तो पश्चिम और पूर्व विकासवाद पर मिल कर प्रहार कर सकते हैं।

पिछले दिनों में जो "वेद वाणी" में विकासवाद विषयक लम्बा लेख निकला था उसकी एक प्रकार से विलायती पत्र "गार्डियन" ने पुष्टि की थी जब यह लिखा था:—

"Darwin seemed to be saying that evolution was the result of the struggle for survival; that the victorious species not only won, but deserved to win—for was it not, by definitions the fittest ? If this were true of nature, why not ef society ? The ruthless entrepreneur, who carved his way to the top, not

only became rich; he deserved to become rich—and he owed nothing to the unfit weak lings on whom he had trampled. This applied to the out side world, too. If the British conquered India this was, in itself, proof that they deserved to conquer it; it meant that they were fitter than the Indians. The Guardian, 25 Nov.59. "

भारत के एक—दो चिन्तकों को भी सूझा कि विकासवादने किसी दृष्टि विशेष से द्वितीय विश्वयुद्ध कराया। श्री आत्माराम शाह, दर्शनविभाग, सी० एम० पी० डिग्री कालिज इलाहबाद ने लिखा है।

"विकासवाद के सिद्धान्तों से प्रभावित सब से प्रसिद्ध दार्शनिक नीत्शे है। उसने करुणा. बन्धुता, प्रेम आदि के पुरातन मूल्यों का अवमूल्यन कर के जीवन-संघर्ष में विजय श्री प्रदान करने वाले क्रूर एवं निर्मम गुणों का विकसित करने पर बल दिया। नात्सी और फासिस्ट आन्दोलनों का मूलाधार विकासवादी दर्शन है।"❀

भौतिकवाद की ओर अग्रसर होने वाले स्वतन्त्र भारत में डार्विन के असंख्य प्रशंसक हैं। वे धर्म से स्वयं विमुख होते जा रहे हैं, लाखों को ईसाई बनते देख कर चुप हैं और भौतिकवाद को अभिशाप समझने के लिये तैयार नहीं हैं। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री ए० सी० बुके ने यह भविष्यवाणी १९४१ में की थी कि यदि बापू जी के चल बसने पर उनके प्रति जनता जो में भक्ति है वह उनके उत्तराधिकारी श्री नेहरू तथा अन्यों को प्राप्त हो तो हिन्दू धर्म की दशा वही होगी जो तुर्किस्तान वालों के धर्म की हुई अर्थात् हिन्दू धर्म की क्षति होगी।$

पांच लाख हिन्दुओं का जो हर साल ईसाई करण हो रहा है प्रत्येक को इस भविष्यवाणी पर ध्यान देने को प्रेरित करता रहेगा।

❀हिन्दी साहित्य कोश (ज्ञान मण्डल)

$ Not a few of the younger generation of Indians have already been captured by the doctrines of Marx...As long as Gandhi is able to influnce the Nationalists, Hinduism may remain dominant. But should Nehru and others like him replace the Mahatma in the affections of his fellow-countrymen there might be as radical a change in India as there has already been in Turkestan.

A. C. Beuquet, Comparative Religion, 1941

एक समय था जब डा० राधाकृष्णन् कहा करते थे कि विकासवाद का आश्रय लेकर कुछ लोग हिंसक बनते हैं।† इन दिनों में उन्हें इस नाशकारीवाद के बारे में कुछ करना चाहिये था।

इस समय तक किसी न किसी तरह वेद जीवित रहे। क्या ठीक जब भारत आजाद हो गया जो ज्ञान विलुप्त न हुआ था वह उस पुण्यभूमि में ठहर न पावेगा ? क्या ऐसा दिन देखने में आवे जब वेदों का कोई नामलेवा भारत में शेष न रहेगा तो लोग डार्विन के भारतीय अनुयायियों को कोसेंगे नहीं ?

वेद वाणी सुनाने के इच्छुक एक शती पुराने डार्विनवाद से संतुष्ट नहीं हो सकते। इस विचार को मान कर ही लोग स्वीकार करना नहीं चाहते कि वेद केवल ४-५ हजार वर्ष पुराने नहीं हैं। डार्विन ने कहा था कि भाषा शनैः शनैः प्रकट हुई। जो उन्हें सत्य का प्रचारक मान कर ही एक-एक शब्द लिखते हैं वे कैसे मंजूर करें कि मानव के आगमन काल में सुन्दर भाषा में सर्वोच्च विचार व्यक्त किये गये थे ?

जब कभी किसी ने महाभारत की तुलना रामायण से की और यह देखा कि कला की दृष्टि से रामायण महाभारत से श्रेष्ठतर है तो डार्विनवाद का ख्याल करके यही लिखा गया कि महाभारत रामायण से अपेक्षाकृत प्राचीनतर है।

वे कैसे मानें कि भारत पतनोन्मुख हुआ था. अतः श्रेष्ठतम ग्रन्थ सर्वप्रथम मिले और जाते जाते अपेक्षाकृत कम श्रेष्ठ ग्रन्थ प्राप्त होने लगे ?

भारतीयों को डार्विनवाद का सच्चा अर्थ समझना चाहिए। अभी तक इस विचारधारा से भारत को ही सर्वाधिक क्षति पहुंचाई गई। अद्भुत साहित्य के युग के विषय में भ्रान्तियां फैलाई गईं। पिछले दिनों सर्वश्रेष्ठ फ्रेन्च पत्रिका "पेरिस मैत्र" ने बताया कि रामायण हज.र साल ही पुरानी है।‡ इसी देश की प्रजा को कमजोर समझा गया और सदियों तक गुलाम बनाकर दुतकारा गया।

---

†The advocates of the use of force adopt a crude version of the Darwinian struggle for existence. They overlook the fundamental distinction between the animal and the human worlds... —Dr. Satvepalli Radhakrishnan

‡ B. Bissoondoyal, Hindu Scriptures, p. 113 (Macmillan Ltd.)

[शेष पृष्ठ ४७१ पर]

दयानन्द ऋषिराज

[लेखक—कुंवर जोरावरसिंह आर्योपदेशक]

आज देश के कण कण में से, आती यह आवाज।
युग निर्माता है इस युग का, दयानन्द ऋषिराज ॥

—×—

जिसमें न हो विरोध किसी का धर्म वही कहलाता है
पशु पक्षी मानव सब से जो करना प्रेम सिखाता है
प्रेम भावना नहीं, किन्तु जो घृणा भाव फैलाता है
वह अधर्म है उसे जगत में धर्म कौन बतलाता है,
निर्भयता के साथ लगाई उसने यह आवाज।
युग निर्माता है० ॥

चमत्कार की बुद्धि विरुद्ध असंगत बातें बिसराओ,
गप्पों दम्भों पाखंडों से मत जनता को भरमाओ,
जिसने जन्म लिया है जग में उसे न ईश्वर बतलाओ,
धर्म और ईश्वर का सच्चा स्वरूप जग को समझाओ,
कहां ढूंढते ? ईश्वर मन मन्दिर में रहा विराज।
युग निर्माता है० ॥

सम्प्रदाय की जात पांत की दीवारों को तोड़ो,
भेदभाव की ऊंच नीच की बुरी रूढ़ियां छोड़ो,
प्रान्त प्रान्त के महा संकुचित झगड़ों का सिर फोड़ो,
मानवता के नाते से तुम दिल को दिल से जोड़ो,
उसके स्वर में मानवता यों बोल रही है आज।
युग निर्माता है० ॥

आर्यों की सन्तान सकल जग एक रक्त का नाता है,
आदि सृष्टि जिस जगह हुई वह भारत सबकी माता है,
सब से पहला ज्ञान वेद है यह इतिहास बताता है,
भाषाओं की जननी संस्कृत जग जिसके गुण गाता है,
सब का पूर्वज और गुरु भारत सब का सरताज।
युग निर्माता है० ॥

जिस घर में जिस देश के अन्दर पूजी जाती है नारी,
वहां देवता निवास करते आती सुख सम्पति सारी,
यज्ञ और यज्ञोपवीत की है समान वह अधिकारी,
घर की रानी है शोभा है पति सुत भ्राता की प्यारी,
पैरों की जूती न कभी भी है वह सिर की लाज।
युग निर्माता है० ॥
वैदिक धर्म सभ्यता संस्कृति सबका फिर उद्धार किया,
दीन अछूतों दुखी अनाथों विधवाओं को प्यार किया,
गुरुकुल खोले गौरक्षा का चारों ओर सुधार किया,
मान राष्ट्रभाषा हिन्दी को उसका प्रबल प्रचार किया,
सब प्रकार से उसने रक्खी देश जाति की लाज।
युग निर्माता है० ॥
उठो आर्य वीरो! पहले तो अपना स्वयं सुधार करो,
फिर एटम पर खड़े हुए इस मानव का उद्धार करो,
भारत मां का वेद धर्म का जग में जयजयकार करो,
अपने गुरु ऋषि दयानन्द के स्वप्नों को साकार करो,
इस धरती पर चलो सजाओ स्वर्ग लोक का साज।
युग निर्माता है० ॥

[शेष पृष्ठ ४६९ का]

डार्विनवाद से प्रोत्साहन पाकर जब भौतिकवाद भारत में अनर्थ करने लगा ब्रह्मचारियों और संयमियों के देश में परिवार संयोजन प्रजा पर थोपा गया और स्त्री को जो देवी नाम से पुकारी जाती है, यन्त्र❀ बना कर के छोड़ा गया। भारत ही भौतिकवादी बने तो संसार में कौन सा देश लोगों को परमात्मा की ओर ले जाने का बीड़ा उठायेगा? पश्चिम का अध्यात्मवाद से दिलचस्पी लेने का आरम्भ करना और भारत का भौतिकवाद में उत्तरोत्तर आकर्षण पाते जाना शोभा नहीं देता।

❀ It is unfortunate that there are many among us who are cold blooded libertines who unscrupulously use women as instruments of their lust. They are human animals, the slaves of Sense.

S. Radhakriahnan, Rabindranath Tagore

★ भुक्तानुचरणम् ★

[लेखक—वैद्य प्रभावसिंह वर्मा 'मित्र' आर्य, आयुर्वेद शास्त्री,
ब्रह्म औषधालय शाहपुर, जिला इटावा]

आज बहुत से मनुष्य भोजन के महत्व को नहीं जानने, अतः उन्हें भोजन द्वारा ही कष्ट रूपी सागर में गोते लगाने पड़ते हैं। अस्तु, प्रत्येक आर्य व्यक्ति को भोजन के महत्व को जानने की विशेष आवश्यकता है; भोजन तत्व के सम्बन्ध में श्री सुश्रुताचार्य का मत इस प्रकार है।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदास्याऽस्थि ततो मज्जा मज्जया शुक्र सम्भवः ॥

मनुष्य जो भोजन करता है वह प्रथम मुंह में जाकर पेट में पचने लगता है, पचकर रस बनता है रस का पांच दिन तक पाचन होकर रक्त, रक्त का भी पांच दिन तक पाचन होकर मांस बनता; माँस का भी पांच दिन बाद मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा तथा मज्जा का पांच दिन तक पाचन होकर मुख्य तत्व शुक्र (वीर्य) बन जाता है। यह वीर्य कभी नहीं पचता। पुनः वीर्य ओजस रूप धारण कर शरीर में चमकने लगता है।

अस्तु रस से लेकर वीर्य बनने में पांच के योग से बराबर तीस दिन लगते हैं, ऐसा आर्यों का सिद्धान्त है। आर्य वैज्ञानिकों ने निश्चय किया है कि ४० सेर अन्नप्राशन करने से १ सेर रुधिर बनता है १ सेर रुधिर से १ तोला वीर्य की उत्पत्ति होती है।

प्रत्येक आर्य को सदाचारी, ब्रह्मचारी एवं अल्पाहारी बन कर रहना चाहिये, अधिक भोजन करने वाले अपनी आयु का एक २ दिन कम करके अकाल में ही काल के मुंह में जाते हैं ऐसा मनु महाराज का कथन है।

अनारोग्यं अनायुष्यं अस्वर्ग्यं चाऽति भोजनम् ।
अपुण्यं लोक विद्विष्टं तस्मात्तत्परि वर्जयेत् ॥

अति भुक्ता रोग युक्ता, नरक में पहुँचने वाला, पापी और लोक में निन्दित होने वाला है। अतः बुद्धिमान् अधिक भोजन करना त्याग दें। वेदों का एक अपूर्व सिद्धान्त है कि आहार, निन्द्रा, भय, मैथुन, क्रोध, कलह आदि बातें बढ़ाने से बढ़ती और घटाने से घट भी जाती हैं। मनुष्य जैसा भोजन करता है वैसा ही बन जाता है। तदर्थ नित्य नियमित समय पर

सात्विक अल्पाहार करना चाहिये। जिससे बुद्धि शुद्ध हो जावे। इस पर छन्दोग्य उपनिषद् का वचन है—

आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतः।
स्मृति लब्धे सर्वग्रन्थीनां विप्र मोक्षः॥

अर्थात् आहार शुद्धि से सत्व शुद्धि होती है, सत्व शुद्धि से बुद्धि निर्मल व ध्रुव बन जाती है, फिर पवित्र निश्चल बुद्धि से मुक्ति सुगमता से प्राप्त होती है। मुक्ति होने की एक प्रथम श्रेणी यह भोजन भी है, क्यों कि भगवान् बुद्ध का भी कहना है कि, एक बार अल्पाहार करने वाला महात्मा है, दो बार सम्हल कर खाने वाला बुद्धिमान् व भाग्यवान् है, इससे अधिक अटकल रूप से खाने वाला मनुष्य महामूर्ख, अभागा तथा पशु का भी पशु है। अतः नित्य नियमित अल्पाहार करके आर्य सिद्धान्तों के निम्न अनूठे नियमों पर परियटक रहना चाहिए।

भुक्त्यन्ते भ्रमणं शस्तं, शयनं वा अनिद्रया।
न शस्तं लेखनं चैव, पठनं सूक्ष्म चिन्तनम् ॥१॥

अर्थात्—भोजन के पश्चात् धीरे २ टहलना चाहिये, बाद में शैय्या पर लेटकर कुछ देर आराम अवश्य करना चाहिए किन्तु सोना नहीं चाहिए, भोजन के पश्चात् लिखना पढ़ना तथा सूक्ष्म विचार नहीं करना चाहिए।

धावनं मैथुन हेयं, हेय खेदा वहा क्रिया।
कठोरं चासनं त्याज्यं, त्याज्या चिन्ता विशेषतः ॥२॥

भोजन के पश्चात् दौड़ना व मैथुन नहीं करना चाहिए, तथा न ऐसा काम करना चाहिए, न ऐसी बात भी विचारनी व करनी चाहिए, जिससे खेद व शोक हो। भोजन के पश्चात् कठोर आसन पर न लेटे और विशेष चिन्ता भी न करनी चाहिए।

तथा स्नानं निषिद्धं स्यात्, पातुपही न भूरिकम्।
विधेया सर्वपलेन, स्वात्मचित्त प्रसन्नता ॥३॥

भोजन के अन्त में स्नान नहीं करना चाहिये और न अधिक जलपान ही करना चाहिये। जिस प्रकार हो सके अपने मन को सदैव प्रसन्न ही रखना चाहिए। इसी प्रकार माधवाचार्य ने भी कहा है—

भुक्त्वा शतपदं गच्छेद्वामपार्श्वेन संविशेत्।
शब्दरूपरसस्पर्शा गन्धाश्च मनसः प्रियान्॥ माधव०॥

भोजन करने के पश्चात् सौ पग घूमे और बाईं करवट लेट जावें, तो शब्द, रूप, रस, स्पर्श, सुगन्ध अपने मन को प्रिय बन जाते हैं, इस प्रकार करने से अन्न भली प्रकार पच जाता है॥ इति॥

आर्य समाज का राजनीति से सम्बन्ध

[लेखक—श्री पं० जयदत्त शास्त्री, लखनऊ]

आर्य समाज में उसके जन्म काल से ही यह विवाद चला आ रहा है कि वह राजनैतिक कार्यों में भाग ले या न ले ? इस विषय में अनेक वार सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं द्वारा समय समय पर विचार किया जाता रहा। परन्तु बहुमत इसी पक्ष में रहा क्योंकि आर्य समाज एक धार्मिक संस्था है, अतः उसे राजनीति में प्रत्यक्षतः भाग नहीं लेना चाहिये। आज भी इस विषय में आर्य समाज में दो प्रकार की विचारधारायें चल रही हैं। एक तो वे लोग हैं जो चाहते हैं कि आर्य-समाज को राजनीति में भाग लेना नहीं चाहिये और दूसरे वे हैं जो यह चाहते हैं कि आर्य समाज को राजनीति से पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। अपितु अन्य राजनैतिक दलों की भांति नहीं तो किसी विशिष्टता के साथ समुचित रूप से उसमें अवश्य भाग लेना चाहिये।

इस विषय में हमारा कहना है कि जब 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' यह आर्यों का धर्म प्रचार का मुख्य मन्त्र है, तो प्रजा के पालन एवं सुख दुःख के साक्षी शासन में प्रवेश किये बिना और उससे पृथक् रहकर यह महान् उद्देश्य कैसे पूरा हो सकता है ? लोग प्रश्न करेंगे कि आर्य समाज ने अभी तक जो बहुत कुछ कार्य किये हैं, क्या शासन में प्रविष्ट होकर ही किये हैं। हम भी मानते हैं कि आर्य समाज की मानव समाज के लिये की गई सेवायें अभूतपूर्व हैं। तथापि स्वराज्य प्राप्त होने के अनन्तर इस बात की भी निरंतर आवश्यकता बनी रही है कि जो महाशय लोकहितैषी, एवं उदारचरित होने के साथ साथ भारतीय संस्कृति के रक्षक तथा अनुगामी हों वे राष्ट्र की बागडोर हाथ में लें। यहां यह बात स्पष्ट कर देना उचित होगा कि आर्य समाज कोई साम्प्रदायिक संस्था नहीं है। यह तो लुप्तप्राय सार्वभौम वेद धर्म का सर्वत्र भूमण्डल में प्रचार करने वाली संस्था है, जिस को महर्षि-दयानन्द सरस्वती ने स्थापित किया है। परन्तु आर्य समाज राजनीति में भाग लेकर यदि दलबन्दी के दूषित और संकुचित क्षेत्र में पड़ता है तो वह अवश्य ही आत्मगौरव को खो बैठेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं और यह उसकी मूर्खता ही होगी क्योंकि इसका दृष्टिकोण बहुत विशाल है जैसा कि आर्य समाज के छठे नियम में बतलाया गया है। तो, किस रूप में राजनीति

में इसके लिए भाग लेना उचित है ? यह एक सामयिक प्रश्न है। हमें यह कहना है कि आर्यसमाज के अभ्यान्तर जो मनीषी, मेधावी और चरित्रवान् व्यक्ति हैं उन्हें भी देश के नवनिर्माण में अवश्यमेव सहयोग देना चाहिये। किन्तु यह सहयोग किस प्रकार का हो इसके उपाय स्वयं महर्षि के आशयानुकूल स्थापित करने योग्य 'आर्य-राज-सभा' ही बतला सकती है। महान् लोकोपकारक महर्षि दयानन्द श्रुति एवं स्मृति दोनों की ही मान्यताओं को आधार मानते हुये सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं कि राजा और प्रजा अथवा शासक और शास्य दोनों को चाहिये कि तीन प्रकार की सभाओं का निर्माण करें। शिक्षा और विद्या की रक्षा, अभिवृद्धि तथा व्यवस्था हेतु विद्यासभा, धर्म की रक्षा, अभिवृद्धि तथा उसकी व्यवस्था के हेतु धर्मसभा, और राजकार्यों के संचालनार्थ राजसभा की स्थापना होनी चाहिये। हमारी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य-धर्म-सभा और आर्य-विद्या-सभा की स्थापना तो की किन्तु 'आर्य-राज-सभा' की अभी तक स्थापना नहीं की। आर्य समाज जहां और प्रकार के समाज कल्याण के कार्यों को सदा अग्रसर रहा है उसे इस कार्य में भी पीछे नहीं हटना चाहिये कि इस प्रकार का उद्योग किया जाय कि राज्यों की विधान सभाओं, विधान परिषदों और केन्द्र की लोक सभा तथा राज्य परिषद् के सदस्य जहां तक सम्भव हो ऐसे ही लोग चुने जांय जो विभिन्न विषयों के विद्वान् होने के साथ साथ चरित्रवान् हों, धर्मात्मा हों और भारतीय वैदिक संस्कृति और सभ्यता के प्रति श्रद्धा रखते हों। हम तो कहेंगे कि जब उपर्युक्त सभाओं में इस प्रकार के श्रेष्ठ, दूसरे शब्दों में आर्य जनों का बाहुल्य होगा तो राष्ट्र प्रत्येक निर्माण के कार्य में सफल होगा। नेता या राज्य के धर्मात्मा रहते प्रजा अधर्मात्मा नहीं हो सकती और जब इस प्रकार अधर्मका ह्रास और धर्म की अभिवृद्धि होती चली जायेगी तो स्वतः ही देश में दुःख का क्षय और सुख की वृद्धि हो जायेगी और तभी पुरातन राजधर्मवेत्ताओं के यह वचन सार्थक होंगे :

यतो धर्मस्ततो जयः।

राज्ञि धर्मणि धर्मिष्ठा पापे पापरताः सदा।
राजानमनुवर्त्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा॥

आज के शासन की त्रुटियों की यत्र तत्र बड़ी आलोचनाएं सुनी जाती हैं। शासन के पास सब प्रकार का प्रबन्ध होते हुए भी भ्रष्टाचार, अन्याय तथा प्रजा में व्याप्त विद्या या धनधान्यरूपी दारिद्र्यादि क्लेश का दमन वह नहीं कर पा रहा है। यह क्यों ? इसके अनेक कारण हो सकते

हैं जिन पर 'आर्य-राज-सभा' अच्छी प्रकार विचार कर सकती है और अपने मूल्यवान सुझाव प्रान्तीय एवं केन्द्रीय शासनों के पास क्रियान्वयन के लिये भेज सकती है। हां, इतनी बात ध्यान में रखनी होगी कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का 'राज-सभा' विभाग ही ऐसे कार्यों को निबटाये कहीं ऐसा न हो जाय कि अन्य दो सभायें भी इसकी दासी व अनुगामिनी बन जाये और अपने निजी कर्तव्यों का परित्यागकर, राज-सभा में ही आत्मसात् हो जायें। क्योंकि जब तीनों सभायें अपने अपने कर्तव्यों का पालन करती हुई मिल कर चलेंगी तभी आर्य राष्ट्र का निर्माण और आर्य धर्म का विश्व में प्रचार करने में समर्थ हो सकेंगी। जैसा कि कहा भी गया है :

> **यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यंचौ चरतः सह।**
> **तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना ॥ यजु० ॥**

यह बात भी बड़े महत्व की है कि राष्ट्र को निर्माण एवं उत्पादन सम्बन्धी कार्यों द्वारा समृद्धशाली करने के अतिरिक्त उसे आन्तरिक और बाह्य उपद्रवों, आक्रमणों आदि से बचाना भी शासन का मुख्य कर्तव्य होता है। दुरात्माओं को समुचित दण्ड देकर उनके दुःस्वभाव को छुड़वाने और अशान्ति तथा उपद्रवों के निग्रह के लिये शासन की दण्डनीति में शिथिलता नहीं होनी चाहिये, क्योंकि यदि दण्ड शिथिल पड़ जाता है अथवा उसका यथावत् प्रयोग न होकर अन्यथा प्रयोग होने लगता है तो राष्ट्र विपत्तियों से नहीं बच सकता। इसीलिये तो भगवान् मनु ने कहा है :

> **दंडः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।**
> **दंडः सुप्तेषु जागर्ति दंडं धर्मं विदुर्बुधाः ॥**
>
> **समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रंजयतिप्रजाः।**
> **असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥**

और यह दण्ड जैसे तैसे आदमियों के हाथ में नहीं दिया जा सकता। मूर्ख अविद्वान् और विषयासक्त के पास यह योग्यता नहीं कि वह दण्ड का ठीक ठीक उपयोग कर सके। अतएव पुनः कहा कि,

> **सो सहायेन मूढ़ेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।**
> **न शक्यो नर्यायतो नतु सक्तेन विषयेषु च ॥**
>
> **शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा।**
> **प्रणेतु शक्यते दंडः सुसहायेन धीमना ॥**
>
> **सेनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वमेव च।**
> **सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥**

अर्थात् जो अन्तः बहिः पवित्र हैं, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी हैं, शास्त्रोक्त विधान के अनुसार चलने वाला है, बुद्धिमान् है श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त तथा वेदादि शास्त्रों का ज्ञाता है वही इस दंड को धारण कर सकता है। क्या ही सुन्दर आदर्श है। विचारशील जन विचार करें क्या आज इन बातों का समावेश वर्त्तमान् शासन पद्धति में पाया जाता है। यदि नहीं तो कैसे इन बातों का समारोपण स्वतन्त्र देश के भाग्य विधाताओं महान् लोकनायकों के मन मन्दिरों में किया जाय, इसका भी उपाय आर्य समाज बतला सकता है। अतएव हम तो समझते हैं कि यदि आर्यसमाज ने अपना अस्तित्व बनाये रखना है और प्रगति की ओर बढ़ता है तो अविलम्ब ही राजार्य सभा को संगठित कर स्वकार्यारम्भ कर देना चाहिए। इस सम्बन्ध में वेद प्रकाश (दिल्ली से प्रकाशित) मासिक पत्र के आर्य महासम्मेलन समीक्षा अंक ११ (वर्ष ९) में प्रकाशित श्री वैद्य अमरनाथ शास्त्री के सुझाव भी विचारणीय है। अतः क्या हम आशा करें कि सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा इस सम्बन्ध में पुनर्विचार कर आर्य राज सभा की अविलम्ब स्थापना करेगी? ॥ शुभंभूयात् ॥

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

लेखकः—श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

महर्षि दयानन्द का सुप्रसिद्ध जीवन चरित्र

❀ इतने मोटे अक्षरों में ❀

महर्षि का यह जीवन चरित्र सब जीवनियों से अधिक छपने के बाद भी इसकी मांग बनी हुई है। इसका कारण यह प्रमाणिक जीवन चरित्र बहुत ही मधुर तथा ललित भाषा में लिखा हुआ है। प्रायः गुरुकुलों के पाठ्यक्रम में यह बच्चों को भी पढ़ाया जाता रहा है। आपके पास न हो तो आज ही अपना आर्डर बुक कराइये।

बड़े साइज के ६०० पृष्ठ। मजबूत जिल्द। बढ़िया एण्टिक कागज फिर भी मूल्य केवल १२)। ३१ जुलाई तक १०) भेजकर प्रति सुरक्षित करालें। डाक खर्च हम देंगे।

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क देहली

वेद प्रकाश के पिछले विशेषाङ्कों पर विद्वानों की सम्मतियां

सृष्टि का इतिहास

लेखक श्री लेखराम जी आर्य पथिक

पं० लेखराम जी की प्रसिद्ध पुस्तक कुलियात मुसाफिर का एक अंश। मूल्य २)

श्री पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार

उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी की सम्मति।

"पं लेखराम जी ने भिन्न २ सृष्टि संवतों पर बहुत गहराई में जाकर खोज की है और वर्तमान पुरातत्ववेत्ताओं को इस खोज से बहुत सहायता मिल सकती है। इस सम्बन्ध में यह आश्चर्य की बात है कि भूगर्भ शास्त्र का सहारा लिए बिना भारतीय विद्वान् सृष्टि के उसी संवत् पर कैसे पहुंचे थे जिस पर वर्तमान विज्ञान पहुंचाता है।"

आर्य मित्र साप्ताहिक लिखता है।

वेद मन्त्रों के आधार पर सृष्टि की आयु तथा संसार की अन्य व्यवस्था का प्रमाणिक वर्णन इसमें किया गया है। सृष्टि के इतिहास सम्बन्धी यह पुस्तक प्रमाणिक है। सृष्टि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को इस पुस्तक का अवलोकन करना चाहिए।

बृहदारण्यक उपनिषद् कथा माला

लेखक : श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी

बृहदारण्यक उपनिषद शतपथ ब्राह्मण का भाग है। सर्वसाधारण के लिए उपयोगी बनाने के लिए इसमें से वह स्थल जिसका आध्यात्मिकता से सम्बन्ध नहीं है तथा उन स्थलों को जो दोहराई गई है निकाल दिया गया है। इस प्रकार इसकी १६ कथाओं को सरल रीति से प्रस्तुत कर लेखक ने इसे स्वाध्याय प्रिय लोगों के लिए उपयोगी एवं लाभप्रद बना दिया है। मूल्य ३)

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए० लिखते हैं।

बृहदारण्यक--उपनिषद्--कथामाला स्वामी ब्रह्ममुनि रचित बहुत सुन्दर और उपयोगी पुस्तक है जनता के पढ़ने और सुनने योग्य तथा असाधारण विद्वानों के मनन और मीमांसा योग्य। आध्यात्मिक भूखवालों के लिये यह स्वादिष्ट और पुष्टिकर भोजन है।

शास्त्रार्थ महारथी पं० अमरसिंह जी

कथायें श्री स्वामी जी ने बहुत ही सुन्दर रीति से लिखी है मेरी हार्दिक कामना है कि यह पुस्तक प्रत्येक घर में पहुंचे।

महर्षि से पूर्व का भारत

लेखक : मास्टर श्री आत्माराम जी अमृतसरी

मूल्य २)

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी की सम्मति

इसका प्राक्कथन पं० युधिष्ठिर मीमांसक की लेखनी से लिखा गया है। इसमें (१) भारत के इतिहास में अवैदिक समय। (२) मूर्तिपूजा के खण्डन कर्ता स्वामी शंकराचार्य। (३) पौराणिक अमावस्य की घोर रात्रि। (४) महात्मा आत्माराम अमृतसरी का जीवन चरित्र, ये विषय पढ़ने योग्य हैं।

गुरुकुल पत्रिका हरिद्वार लिखता है

इस पुस्तक में वैदिक काल की सभ्यता का महत्व दर्शाते हुए वेदों की शिक्षाओं को सार्वभौम सिद्ध किया गया। वेद में विविध विद्याओं का भी अतिसंक्षेप से प्रतीक देकर निर्देश किया गया है। वाममार्ग शैव शाक्तमत, वैष्णव, जैन और बौद्धमत अद्वैतवाद इत्यादि का संक्षेप से वर्णन करते हुए सुयोग्य लेखक ने बताया है कि इसके प्रचार से क्या-क्या हानियां हुई। हम इसका यथेष्ठ प्रचार चाहते हैं।

गुरुदत्तलेखावलि

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए०

यह पुस्तक उनके अंग्रेजी लेखों का अनुवाद है। अनुवादक रिसर्च स्कालर पं० भगवद्दत जी तथा पं० सन्तराम बी० ए० हैं। मूल्य २)

पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड गुरुकुल कांगड़ी लिखते हैं।

आधूनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए तथा अन्य सभी शिक्षित वर्ग के लिए यह गुरुदत्त लेखावलि नितान्त उपयुक्त है।

आर्यमित्र साप्ताहिक लिखता है

महर्षि दयानन्द के पश्चात् आर्य० समाज की ओर से पश्चिमीय विद्वानों को विद्वता पूर्ण एवं युक्तियुक्त उत्तर देने का जो कार्य पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ने किया वह सदैव स्मरणीय रहेगा। उनकी रचनाओं का अध्ययन करना प्रत्येक आर्य के लिए उपयोगी और आवश्यक है।

प० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार

आज आर्य समाज की घटतीकला है : इस युग में युवकों, विशेषतः कालेज व विज्ञान की नई शिक्षा से कुसंस्कार ग्रहण कर रहे युवकों के लिए इसका विशेष महत्व है। वेदप्रकाश का प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है।

चारों विशेषांक बड़े महत्व के हैं यदि आपके पास ये नहीं तो आज ही ६) भेज कर मंगा लीजिये। ६) मनिआर्डर के साथ आने वाले आर्डरों पर डाक खर्च हम देंगे।

व्यवस्थापक वेदप्रकाश

४४०८ नई सड़क, देहली।

महात्मा आनन्द स्वामी जी
की नई पुस्तक
उपनिषदों का सन्देश

पृष्ठ संख्या २०४ मूल्य १)२५

महात्मा जी की अन्य पुस्तकें

प्रभुदर्शन	२)५०
तत्वज्ञान	३)
प्रभुभक्ति	१)५०
आनन्दगायत्री कथा	)७०
एक ही रास्ता	)८०
मानव जीवन गाथा	१)
भक्त और भगवान्	१)
भगवान् शंकर और दयानन्द	)५०
सत्यनारायण व्रतकथा	)६२

यजुर्वेद--संहिता

भूमिका लेखक:—

श्री पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक

इस संस्करण की विशेषतायें

(१) यजुर्वेद मूल के इस संस्करण में स्वर सहित मूल मन्त्र, ऋषि देवता, छन्द आदिका निर्देश तथा मन्त्रानुक्रमणिका आदि सभी विशेषताएं हैं। जो कि अन्यत्र प्रकाशित किसी एक संस्करण में मिलनी दुर्लभ हैं।

(२) श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक की विद्वतापूर्ण भूमिका। इसमें उन्होंने जहां यजुर्वेद का इतिहास बताया है वहां यजुर्वेद का परिचय भी दिया है।

(३) अन्यत्र प्रकाशित मूल यजुर्वेद का मूल्य जहां ४)–४॥) रुपये है वहां इस सजिल्द संस्करण का मूल्य केवल २॥) ही है।

शास्त्रार्थ महारथी

श्री पं. रामचन्द्र देहलवी की

दो सनातन सत्ताएं

अगस्त तक छप कर तैयार होगी।

मूल्य १)

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, देहली।

वेदप्रकाश के सम्बन्ध में

वेदप्रकाश गत नौ वर्षों से निरन्तर प्रकाशित होता आ रहा है। इसका प्रकाशन आरम्भ निम्न उद्देश्यों के कारण हुआ—

(१) वैदिक संस्कृति का प्रचार करना।
(२) अनुपलब्ध व मौलिक वैदिक साहित्य का प्रकाशन करना।
(.) वैदिक धर्म पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देना।
(४) पाखण्डों व गुरुडम का उन्मूलन करना।

वेदप्रकाश के नियम

❀ वार्षिक मूल्य ३)। ❀ प्रतिमास ५ तारीख को भेजा जाताहै। १५ ता० तक न मिलने पर यदि पाठक पत्र लिखे तो दूसरी प्रति भेज दी जाती है। ❀ वर्ष श्रावणी अगस्त से आरम्भ होता है। ग्राहक अगस्त से जौलाई तक के लिये ही बनाये जाते हैं।

वेदप्रकाश के इस वर्ष के विशेषांक

प्रतिवर्ष वेदप्रकाश का एक बृहद् विशेषांक श्रावणी पर प्रकाशित किया जाता है जिसकी पृष्ठ संख्या १६० से २०० तक होती है। बृहद् विशेषांक के अतिरिक्त तीन चार विशिष्ठ अङ्क प्रकाशित होते हैं। जिनकी पृष्ठ संख्या तो साधारण अङ्क के जितनी ही होती है पर एक ही विषय के लेख होने से उनका स्थाई महत्व होता है।

इस वर्ष का बृहद् विशेषांक:—वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला।

इस वर्ष के विशिष्ठ अंक;—ब्रह्मकुमारी आलोचनांक, योगांक विष्णु पुराण आलोचनांक: तथा दयानन्द अंक।

आप स्वयं ग्राहक बनें तथा अपने मित्रों, सम्बन्धियों को बनाएं।

❀ ओ३म् ❀

ता०.........

व्यवस्थापक जी।

आपकी सेवा में.......ग्राहकों की नामावली भेज रहा हूँ। इन ग्राहकों का वार्षिक मूल्य मनीआर्डर नं०......ता०.........द्वारा भेजा जा रहा है। नियमित रूप से 'वेद प्रकाश' इन्हें भेजते रहिए।

१.
२.
३.
४.
५.

स्वाध्यायोपयोगी पुस्तकें

उपनिषद आर्य भाष्य	६)
बाल्मीकि रामायण	१२)
श्रीमद्दयानन्द ग्रंथ संग्रह	४॥)
बहनों की बातें	१।)
दर्शनानन्द ग्रंथ संग्रह दो भाग	५)
वेद परिचय	।=)
महर्षि दयानन्द (इन्द्र) जी	२)
दयानन्द चित्रावलो	२॥)
आर्षयोग प्रदीपिका	३॥)
आर्य समाज क्या है	॥।)
ब्रह्मचर्य जीवन	।=)
नास्तिकवाद	॥)
आ. स. के नियमों की व्याख्या	॥)
गो रक्षा परम कर्तव्य	॥)
सामाजिक पद्धति	।=)

स्त्री उपयोगी पुस्तकें

विवाह और विवाहित जीवन	२॥)
वैदिक गृहस्थाश्रम	५)
स्त्रियों का स्वास्थ्य रोग	३)

प्रत्येक का साइज २०×३०

महर्षि दयानन्द का रंगीन चित्र मूल्य १।)

महर्षि दयानन्द सादा	१)
गुरु विरजानन्द	१)
स्वामी श्रद्धानन्द	१)
महात्मा हंसराज	१)
पण्डित लेखराम	१)
पं० गुरुदत्त विद्यार्थ	१)
स्वामी दर्शनानन्द	१)

महर्षि दयानन्द घटना चित्र साइज १५×२० ॥)

मोटोज सा. ११×१४ मूल्य प्रत्येक ।)

ओ३म्, स्वागतम

नमस्ते गायत्रीमन्त्र

Postage will be paid by addressee

BUSINESS REPLY CARD

No Postage necessary if posted in INDIA

DELHI G. P. O.

Permit No. 1535

GOVINDRAM HASANAND

VEDPRAKASH MONTHLY

4408, NAI SARAK,

DELHI.